साथी हाथ बढ़ाना

साथी हाथ बढ़ाना

(एकांकी-संग्रह)

लेखिका

डॉ० सोमा वीरा



1971

आत्माराम एंड संस

दिल्ली. नई दिल्ली. चंडीगढ़. जयपुर. लखनऊ.

SATHI HATH BADHANA

by

Dr. Soma Vira, M.A., Ph.D.

प्रकाशक :
रामलाल पुरी, संचालक—
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ :
हौज़ खास, नई दिल्ली
धमानी मार्केट, जयपुर
17, अशोक मार्ग, लखनऊ
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चंडीगढ़

मूल्य :

12.00

मुद्रक :
रूपक प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा,
दिल्ली-32

प्रकाशकीय

'साथी हाथ बढ़ाना' डॉ० सोमावीरा का नवीनतम एकांकी-संग्रह है। इसमें उनके अत्यन्त सशक्त ग्यारह लोकप्रिय एकांकी संग्रहीत हैं। आपके हाथों में, यह संग्रह सौंपकर, हमें अत्यन्त हर्ष होता है।

डॉ० सोमावीरा के लेखन की एक विशेषता है और वह है, नारी के अन्तर्मन को सर्वथा नूतन रूप में उभार पाने का उनका आडम्बरहीन सक्षम प्रयास।...'धारा और किनारे', 'यमुना के तीर', 'हीरक हार' और 'साथी हाथ बढ़ाना' इस संग्रह के ऐसे ही पुष्प हैं, जो कि डॉ० सोमावीरा के उपर्युक्त गुण के अच्छे परिचायक हैं।

'मान-मर्दन' कृष्ण-जन्म की पृष्ठभूमि को लेकर रचा गया एकांकी है और 'आहुति' की कथा-वस्तु महाकवि बाण के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हर्षचरित' में वर्णित राज्यश्री और सम्राट् हर्षवर्धन के जीवन की एक छोटी-सी घटना पर आधारित है।

'साथी हाथ बढ़ाना' में पाठक के हृदय को सहज ढंग से गुदगुदाने वाले एकांकी भी संग्रहीत हैं—'सबकी छुट्टी' और 'निन्यानबे का चक्कर' इसी कोटि के एकांकी कहे जा सकते हैं।...'सबकी छुट्टी' में छुट्टी के दिन, पारिवारिक व्यस्तताओं के बीच रह-रहकर मच पड़ने वाली हाय-तौबा का सफल चित्रण हुआ है और 'निन्यानबे का चक्कर' के माध्यम से लेखिका ने उस समाज पर तीखा व्यंग्य किया है, जहाँ धन की 'फिजूलखर्ची' एक आम बात होती है।

'काली परछाइयाँ' और 'आंचल का छोर' एकांकी भी सफल बन

पड़े हैं।

नारी एक होकर भी अनेक रूपों में अपने जीवन को गति प्रदान करती है। माँ के रूप में अपनी सन्तान के प्रति, बहिन के रूप में अपने भाई-बहिनों के प्रति एवं पत्नी के रूप में अपने पति के प्रति वह पूर्ण उत्तरदायी है। सम्बन्धों के सन्दर्भ में प्रत्येक की इच्छाओं-प्रसन्नताओं का एक साथ निर्वाह कर पाना ही उसकी महानता है—'माँ, बहिन और पत्नी' एक ऐसा ही सफल एकांकी है।

विस्तार-भय से, अन्त में—'साथी हाथ बढ़ाना' में संकलित सभी एकांकी, अपने-अपने कथा-शिल्प, भाषा शैली, चुस्त संवाद और कुशल मंच-निर्देशन की कसौटी पर एकदम खरे उतरते हैं।···इस प्रकार कहा जा सकता है कि ये सभी एकांकी मंच पर अभिनीत किये जाने पर निश्चय ही लोकप्रिय सिद्ध होंगे।

क्रम

धारा और किनारे

पात्र :

कमल : एक सप्तवर्षीय शिशु
निशा : कमल की माँ
प्रताप : कमल का पिता
बालक : एक ग्यारह वर्षीय बालक
नारी : बालक की माँ
पुलिस कान्स्टेबिल, दूधवाला

पात्र-परिचय

कमल

सप्तवर्षीय बालक, हठीला और नटखट, पिता की एकमात्र सन्तान होने के कारण, उसको विशेष रूप से प्रिय है। सदा पिता के संग रहने, सोने, खाने व खेलने के कारण, पिता का वियोग उसे सह्य नहीं होता। उसके कहीं चले जाने पर, वह उसको दिन-रात याद किया करता है। परन्तु इस बार न जाने क्यों, उसके मन में न जाने कैसा अव्यक्त सा भय समा गया है, कि वह सोते-सोते भी भयावने सपने देख-देखकर जाग उठता है।

निशा

कमल की माँ : सभ्य, सुसंस्कृत, एम० ए० पास। आयु लगभग सत्ताईस वर्ष है। इकहरी, सुडौल देह, सुन्दर वस्त्राभूषण पहनने की शौकीन है। अत्यन्त आधुनिक होते हुए भी उसके मानस में प्राचीनता की छाप, अर्थात् पुरुष के सहारे खड़े होने की भावना है। उसने प्रेम विवाह किया था। आज भी उसके मन में पति के प्रति असीम अनुराग है। फिर भी आज उसका मन डाँवाँ-डोल है। वह समझ नहीं पाती कि पति या पुत्र, किस की रक्षा के लिए, वह किस की बलि दे दे।

प्रताप

कमल का पिता, इस नगर का धनी-मानी युवक। आयु लगभग तीस वर्ष। वह कौन है, कहाँ का रहनेवाला है, यह कोई नहीं जानता। उसके हँसमुख, विनोदी स्वभावके कारण, सभी प्रथम दृष्टि में उसके प्रति आकर्षित हो जाते हैं। पत्नी से उसे असीम प्रेम है, फिर भी वह प्रायः दिनों, हफ्तों के लिए, घर छोड़कर गायब हो जाता है, उसका व्यापार ही कुछ ऐसा है।

बालक

वह साधारण मध्यवर्गीय घराने की सन्तान है। माता से उसने राणा

प्रताप और शिवाजीकी कहानियाँ सुनी हैं। विद्यालय में अध्यापकों से सच्चाई और सदाचार का उच्च पाठ सीखा है। उसके निर्भीक मन में साहस और शौर्य कूट-कटकर भरा है। आयु उसकी लगभग ग्यारह वर्ष है।

नारी

बालक की माता, साधारण मध्यवर्गीय घराने की कुशल व चतुर गृहिणी है। बात करने का ढंग उसे भली भाँति आता है। विद्या उसने अधिक नहीं पाई, फिर भी उस में अपनी रक्षा स्वयं कर सकने की सामर्थ्य है, भयानक से भयानक परिस्थितिमें भी वह धैर्य नहीं खोती, न पुरुष के सहारे की कामना ही करती है। उसका कोमल हृदय दया व ममता का स्रोत है, जो पल भर में ही पिघलकर पानी बन जाता है। उसकी आयु लगभग तीस वर्ष है।

कान्स्टेबिल

अपने कार्य में कुशल, चतुर, निर्भीक व निडर है। उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान है, और उसे पूर्ण करने के लिए वह सदा सन्नद्ध रहता है। दिन या रात की परवाह किये बिना, सदानागरिकों की रक्षा के लिए समुद्यत, वह योग्य, सजग प्रहरी है।

[इन पात्रों के जीवन की ये घटनाएँ, चन्दा-तारों की चमकीली अँधियारी में, प्रताप के दुमंज़िले मकान के ऊपरी शयन कक्ष में, तथा किसी सद्‌गृहस्थ के शयन कक्ष में अपनी झलक दिखा जाती हैं।]

धारा और किनारे

स्थान : गली के दुमंज़िले मकान का ऊपरी शयनकक्ष।

समय : अर्धरात्रि।

[तेज़ हवा, बादलों की गरज और बिजली की कड़क, पलंग पर सोया शिशु और जागती एकाकिनी नारी।]

निशा : (हौले-हौले)···कितनी घनी कालिमा, कैसी घनीभूत अँधियारी—फिर भी मेरे मन के अँधियारे के आगे कितनी हीन, कितनी तुच्छ···क्यों न हो···इस कालिमा में भी उज्ज्वलता है। इस अँधियारे में भी प्रकाश की किरणें हैं···अगणित तारों की ज्योतिर्मय ज्वाला, इस चौथ के चन्दा को भी लजाती है···फिर पूनो आयेगी···फिर पूर्ण चन्द्र उदय होगा···फिर धरती गायेगी, बसन्त रास रचायेगा ··दूर किसी अमराई में कोयल कूक उठेगी···उसके मधुर स्वर में अपनी सुध-बुध बिसरा, जगती विभोर हो उठेगी···परन्तु मैं···केवल मैं ही ? हाँ केवल मैं। चन्द्र को आकंठ ग्रसकर भी राहु पुनः मुक्त कर देता है, किन्तु मेरी मुक्ति का कोई उपाय नहीं। मेरा जीवन-राहु मुझे सदा-सर्वदा के लिए ग्रस चुका है। बस ! केवल मृत्यु ही शेष है···मृत्यु··· केवल मृत्यु···विश्व की समस्त योजनाएँ, सारे कार्य, इसी गति से चलते रहेंगे···बढ़ते रहेंगे···एक मेरे न होने से कहीं कुछ अन्तर न पड़ेगा···तनिक भी नहीं··· तो···तो फिर···(आह भरते हुए), फिर भी इस जग की ममता त्यागना कितना कठिन है···कितना दुष्कर

···असाध्य···कितना क्लेश···कितनी पीड़ा···कितनी व्यथा है इस जीवन में···

[एकाएक चीख मारकर कमल रो उठता है।]

निशा : (चौंककर, व्यग्र भाव से)—कमल मेरे शिशु, मेरे लाल ! क्या है मेरे चाँद ?

कमल : (रुदन भरी वाणी)···पापा···पापा···छोड़ दो, छोड़ दो···कहाँ ले जा रहे हो मेरे पापा को···छोड़ दो··· छोड़ दो।

निशा : कहाँ कमल ? कुछ भी तो नहीं, सो जा शिशु, सो जा लाल।

कमल : (अधीरतापूर्वक)···माँ···माँ, वह देखो माँ ! सिपाही मेरे पापा को पकड़े लिए जा रहे हैं। छुड़ा लो माँ। उन्हें छुड़ा लो।

निशा : (शान्त भाव से)···मेरे नन्हे, मेरे लाल क्यों घबरा रहा है तू ! देख न। मैं तो बैठी हूँ तेरे पास। कमल, आँखें खोल मेरे लाल।

कमल : (सिसककर)···मैंने सपना देखा माँ !

निशा : (भूली सी, खोयी सी)···सपना, मैं भी कभी सपने देखा करती थी। डर गया तू ? बावरा कहीं का। सो जा लाल। भूल जा तू भी अपने सपने को।

कमल : नहीं माँ, नहीं, नहीं। कैसे भूलूँ मैं ? लड़के भी तो कहते थे···तेरे पापा डाकू हैं, हत्यारे हैं। माँ···क्या यह सच है ?

निशा : सब झूठ है मेरे नन्हे, झब झूठ है। कितनी बार तो समझा चुकी हूँ मैं तुझे; तेरे पिता तो व्यापार करते थे। उन्होंने कभी नहीं सताया किसी को।

कमल : सपने में मैंने देखा माँ कि सिपाही मेरे पापा को पकड़े

लिये जा रहे हैं, उनके हाथों में रस्सी बँधी है। छोटे-छोटे बच्चे ताली बजाते-बजाते उनके पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं।

निशा : स्वप्न कभी सच नहीं होते शिशु, उन पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

कमल : लड़के कहते थे—तेरे पापा जेल में बन्द हैं। बताओ माँ, मेरे पापा कहाँ हैं ? बताओ न। मैं उनसे पूछूँगा··· क्या वे सच में चोर हैं ? बोलो माँ, बोलो न। तुम बोलती क्यों नहीं। चुपके-चुपके रोती हो ? माँ !

निशा : कैसा हठी लड़का है। कहा तो कि तेरे पापा विलायत गये थे, व्यापार करने। राह में जहाज़ डूब गया। दुर्भाग्य हमारा कि वे भी न रहे। काश···(रोती है।)

कमल : तू तो फिर रोने लगी ! क्या यह सच है ?

निशा : और नहीं तो क्या ? मैंने कभी झूठ बोला है तुझसे ? अब सो जा। मैं तुझे लोरी सुनाती हूँ।

कमल : नहीं माँ, कहानी।

निशा : अच्छा सुन। एक दिन नटखट कान्हा ने क्या किया। छींके पर से सारा माखन लूट लिया। यशोदा मैया ने देखा, तो रस्सी ले चलीं मोहन के हाथ बाँधने। माँ को आते देख, नटखट नागर भोला मुख बना बोल उठा :

मैया, मैं नहीं माखन खायो :
भोर भई ग्वालन के संग मधुबन मोहिं पठायो,
मैया मैं नहीं माखन खायो। (गुनगुनाती है)

निशा : सो गया, कितना हठी है ! परन्तु इसका भी क्या दोष ? यह तो सोते-सोते सपना देखता है। मैंने तो जागते-जागते सपना देखा था। कितना सुन्दर था वह सपना··· कितने मनमोहक थे वे बीते दिन···

[संगीत के स्वर में नारी-पुरुष की सम्मिलित

खिलखिलाहट उभर आती है।]

निशा : श्-श्-चुप ! इतना हँसना अच्छा नहीं होता !

प्रताप : वेगगामी झरने, घुमड़ते मेघ, कल्लोल करती नदियाँ··· इनका प्रवाह रुक सका है कभी ?

निशा : नहीं तो। क्यों ?

प्रताप : हमारा यह आमोद भी ऐसा ही चिर-नूतन है निशे, यह कभी न···।

निशा : हटो, यह क्या, बात, अधूरी ही छोड़ मेरा मुख क्यों बन्द कर दिया जी।

प्रताप : वह देखो, उस अधखिली कली को छोड़, यह भौंरा तुम्हारे खिले मुख की ओर उड़ चला था न, इसीसे···।

निशा : हटो, जाओ, बड़े नटखट हो तुम !

[दोनों की हँसी पृष्ठ-संगीत में डूब जाती है]

निशा : मेरे लाल, तू धरती पर इतना बड़ा सौभाग्य लेकर नहीं आया कि माता-पिता की स्नेहच्छाया में पल सके। आज की रात, नहीं केवल तीन घण्टे और, मैं तेरा यह भोला मुख निहार सकूँगी। तुझे प्यार कर सकूँगी। तुझे फिर ···फिर···सवेरे की ट्रेन से ही गंगाराम आ पहुँचेगा। तू उसे खूब पहचानता है। कितनी बार उसे घोड़ा बनाकर उसकी पीठ पर सवारी गाँठी है तूने। तुझे लेकर तीन बजे की ट्रेन से ही लौट जायेगा वह। तुझे उसके हाथ सौंपते मुझे कोई भय नहीं। तनिक भी झिझक नहीं। उसने तो तेरी माँ को भी गोद खिलाया है, शिशु! माँ को लिखा था मैंने कि मैं लम्बी यात्रा पर जा रही हूँ। तुझे संग नहीं ले जाना चाहती। परन्तु उन्हें नहीं मालूम··· वे नहीं जानतीं कि ट्रेन में तेरा पैर पड़ते ही मेरी यह यात्रा समाप्त हो जायेगी। कितनी कठिन···किन्तु

कितनी सरल यात्रा···जीवन का क्लेश, पीड़ा और व्यथा की टेढ़ी-तिरछी पगडंडियों को पीछे छोड़ते, मंजिल की गोद में, जहाँ जीवन मृत्यु के आगे घुटने टेक देता है। उसी मंजिल को लक्ष्य बाँधकर मैं जा रही हूँ, शिशु यह पिस्तौल···इसकी एक ही गोली···नहीं···आत्म-हत्या···नहीं···नहीं, किन्तु जीवन की यह असह्य पीड़ा ···ठीक ही तो है। इस पिस्तौल की एक ही गोली, मेरी इस अपूर्व यात्रा के लिए पाथेय बनेगी।

[दो क्षण मौन, खिड़की पर कुछ आहट, प्रताप धम्म से कक्ष में आ कूदता है। निशा एकदम चीख उठती है।]

प्रताप : (हौले से)···डरो मत···मैं हूँ, तुम्हारा प्रताप···अरे तुम्हारे हाथ में पिस्तौल···!

निशा : तुम ! नहीं, नहीं, यह कैसे सम्भव है !

प्रताप : (धीमे से हँसकर) मैं ही हूँ निशा···चार वर्ष के लिए कठिन कारावास दंडित अपराधी का एकाएक आ जाना आश्चर्यजनक अवश्य है, परन्तु असम्भव कदापि नहीं। बस प्रभु की दया रहे, और मेरे साथी बने रहें। जेल की दीवारें अलंघ्य नहीं।

निशा : तो क्या तुम जेल से भाग कर आये हो ?

प्रताप : हाँ निशा, तुम्हारे लिए···मैं तुम्हें···।

निशा : (क्रुद्ध हो)···मेरा नाम न लो, जब तुमने चालीस हजार का ग़बन किया, चालबाज़ी से किसी निरपराध को फँसा, स्वयं बेदाग बच निकले, तब मैं कहाँ थी ? पाप के उस धन से व्यापार प्रारम्भ कर तुम धनवान तो बने, परन्तु तुमने सब कुछ मेरे माता-पिता से, मुझसे छिपाया। मुझ से छल किया। और तुम्हारे छल को

प्रेम समझ, मैं तुम्हारी हो गई। तुमसे विवाह···।

प्रताप : यह सब किसने कहा तुमसे, यह झूठ है, निशि।

निशा : झूठ ! उफ ! निशा आज वह पहले वाली भोली निशा नहीं जो तुम्हारे झूठ को भी सच समझ ले। बैंक में अटूट धन रहते हुए भी, कितने डाके डलवाये तुमने ? कितने निरीह बालकों को अनाथ बना डाला ? यही तो था न तुम्हारा व्यापार, जिसके लिए तुम्हें दूर-दूर जाना पड़ता था, क्या यह सब झूठ है ? बोलो ! बोलो ! तुमने यह सब क्यों किया प्रताप ? किसलिए ? ऐसा क्या लोभ था कि···(रोती है)

प्रताप : निशा ! होश की बातें करो।

निशा : होश में ही हूं प्रताप। दुःख तो केवल इतना है कि पहले ही होश क्यों नहीं आया। कटघरे में तुम्हें खड़ा देखने से पूर्व, पुलिस की शहादतें सुनने से पहले ही, मैं क्यों न समझ सकी, कि मनुष्य के रूप में. तुम कितने बड़े निशाचर हो।

प्रताप : (कुछ हँसकर) तुम सच ही कुछ पगला गई हो निशि। क्या तुम नहीं जानतीं कि निरपराध मनुष्य भी कभी-कभी ऐसे चक्कर में फँस जाता है कि उसे जेल की हवा खानी पड़ जाती है।

निशा : (व्यंग्य से) ···तो तुम निरापराध हो ?

प्रताप : (अधीर स्वर में)···क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं ? न हो, पर एक न एक दिन मैं तुम्हें विश्वास दिला ही दूँगा। किन्तु निशि, अब समय नहीं। चलो, मेरे साथ भाग चलो। मैं तुम्हें लेने आया हूँ।

निशा : नहीं, नहीं, मैं तुम्हारे साथ कहीं नहीं जा सकती।

प्रताप : पगली···अरे जेल फाँदकर भागा हूँ। तीन नगरों की

पुलिस मेरे शरीर पर अपना अधिकार जमा लेने को पागल हो उठी है। कुछ थोड़ा बहुत सामान साथ लेकर कुछ दिन के लिये कहीं जा छिपने में ही कल्याण है।

निशा : यह तुम्हारा भ्रम है प्रताप। मेरा कल्याण इसी में है कि अभी पुलिस स्टेशन टेलीफोन कर तुम्हें पकड़वा दूँ।

प्रताप : निशि-निशि, लगता है अकस्मात मुझे देख तुम कुछ घबरा गई हो। तुम नहीं जानतीं कि तुम क्या कह रही हो!

निशा : तुम गलत समझे हो प्रताप। तुम जेल से भागकर आये हो। मुझे अभी पुलिस को बुलाना ही होगा।

प्रताप : (क्रोध से) निशा! नारी जाति के लिये कलंक हो तुम। युग-युग तक ललनाएँ तुम्हारे नाम पर थूकेंगी। अपने निर्दोष पति को सूली पर लटकवाना? यही है तुम्हारा चरित्र, तुम्हारा आदर्श?

निशा : (कम्पित स्वर में) मेरे आदर्श की बात न पूछो। मैं तो केवल एक शापित, दुर्दशाग्रस्त अभागिन नारी हूँ। मैं कौन हूँ तुम्हें बचाने या न बचाने वाली, किसी दिन तुम्हें···।

प्रताप : निशि, मेरी प्रेयसी, सुनो।

निशा : किसी दिन तुम्हें फाँसी पर लटकना ही होगा, जिससे कि तुम सधवाओं की माँग का सिन्दूर न लूट सको। जिससे तुम निरीह बालकों को अनाथ न बना सको। जिससे कि अज्ञानी, अनुभवहीन नवयुवकों को अपना अन्ध अनुयायी बना···।

प्रताप : निशा, निशा, मेरी निशा क्या हो गया है तुम्हें! क्या तुम प्रताप को भूल गई हो? अपने प्रेमी प्रताप को, जो अपने हाथों तुम्हारे जूड़े में रजनी-गन्धा के फूल सजा

दिया करता था। जिसकी बाँहों में झूल, तुमने अनेकों बार स्वर्ग-सुख को भी ठुकरा देने की कामना प्रगट की थी। जो तुम्हारा पति है, तुम्हारे पुत्र का पिता।

निशा : बस, बस, प्रताप बस करो। इसी अभिशाप को तो मैं भूल नहीं पाती। इसी के कारण···इसी के कारण तो···।

प्रताप : (विस्मय से) क्या ?

निशा : कुछ नहीं प्रताप, कुछ नहीं, क्योंकि मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, तुम्हारे पुत्र की माँ हूँ, इसीलिए आज इतना अवसर देती हूँ तुम्हें कि जहाँ जी चाहे भाग कर, अपना यह मुख छिपा लो।

प्रताप : (हतबुद्धि हो) निशे !

निशा : (अनुनय भरे स्वर में) तुम सच मानो प्रताप। इसी में हमारा सबका कल्याण है। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारा बेटा चोर का बेटा कहलाये ? कि वह दुनिया में कहीं मुख न दिखा सके अपना ? कि उस नन्हे से बालक के सम्पूर्ण जीवन की आकांक्षाएँ, इस अभिशाप तले दब, कुचल कर रह जायें। बोलो प्रताप ?

प्रताप : (क्रोध से)···हुँ ! तो यह है मेरा दुश्मन ? इसके कारण तुम मुझे इतनी जली-कटी सुना रही हो ? मेरा साथ देने से अस्वीकार कर रही हो ? हूँ···किन्तु यदि यह मर जाये तब ?

निशा : छि: प्रताप: अपने ही पुत्र के विषय में इतने कटु अप-शब्द ! मरें उसके दुश्मन। भगवान उसकी रक्षा करें। उसका बाल भी बाँका न हो कभी।

प्रताप : (व्यंग्य से) अपने को तुम बहुत बुद्धिमती समझती हो न ? बहुत चतुर ? किन्तु वास्तव में तुम बड़ी नादान

हो, निरी नादान। तुम नहीं जानतीं कि इसके जीवन का अन्त अभी हो सकता है। अभी, इसी क्षण तुम्हारी इसी पिस्तौल से।

निशा : नहीं, नहीं, ठहरो, सुनो, तुम ऐसा कदापि नहीं कर सकते।

प्रताप : हट जाओ, छोड़ दो मेरा हाथ।

[गोली चलने की ध्वनि। निशा की चीख। दूर कहीं पुलिस की सीटी]

निशा : (फूट-फूटकर रोते हुए) कमल, कमल, मेरे शिशु हाय मेरे लाल ! मेरे प्राण ! हाय ! यह तुमने क्या किया प्रताप ? अपने ही माणिक को, अपने ही रक्त से निर्मित इस काया को, तुमने यूँ खड़े-खड़े गोली मार दी ? इस निर्ममता से उस अबोध का वध कर डाला ? क्या किया था उसने तुम्हारा ? तुम इतने अधम हो···इतने पशु··· (रोती है)

प्रताप : (उसे झकझोर कर) उठो, खड़ी हो, झूठ-मूठ का यह प्रलाप तुम्हें शोभा नहीं देता। बोलो। अब भी तुम मेरे संग चलने को तैयार हो या नहीं ?

निशा : (सिसकते हुए) तुम अभी तक खड़े हो ! तुम्हारा यह हाथ कटकर नहीं गिर गया। यह छत तुम्हारे सिर पर नहीं गिर पड़ी। तुम्हारे पैरों तले से धरती खिसक नहीं गई। तुम···!

प्रताप : यह रुदन बन्द करो निशा, बन्द करो, पागल न बनो। भारतीय नारी के कर्तव्य क्या तुम भूल गईं ? पति से ही पुत्र है ? क्या यह अब भी नहीं समझ सकीं ? मेरा आदेश मानना तुम्हारा कर्तव्य है, निशि···क्या यह भी मुझे ही स्मरण दिलाना होगा।

निशा : तुम्हारा आदेश···मेरा कर्तव्य···भारतीय नारी···हा-हा-हा···तुम ठीक कहते हो, प्रताप ! भारतीय ललना पति के शव के संग, चिता में हँसते-हँसते जल मरती थी। मैंने जीवित पति के संग भी नहीं जलना चाहा ? इसीलिए यह अमानुषिक दंड ? भारतीय नारी··· जीवित लपटें देह को झुलसायें, किन्तु मुख से उफ़ तक न निकले···महान् आदर्श···हा···हा···हा···

प्रताप : (क्रुद्ध हो) निशा-निशा···!

निशा : सुन रही हूँ, सुन रही हूँ। मैं बहरी नहीं हूँ। प्रताप। मैं चलूँगी। मैं चलूँगी तुम्हारे साथ। परन्तु इतना समय तो दो मुझे कि इस अभागे का शव धरती की गोद में छिपा सकूँ।

प्रताप : ठहरो निशा, सुनो।

निशा : नहीं ठहरने का अवकाश नहीं। सुनने का समय नहीं। चलने को तैयारी करनी है न ? उससे पहले ही···नहीं तो बन्द मकान में से दुर्गन्ध उड़ेगी, तो पड़ोसियों को सन्देह होगा। ठहरो तुम इसी कमरे में। मैं नीचे बाग में गड्ढा खोद आऊँ।

प्रताप : निशि,निशि, एक बार उसे देख तो लो निशि, गोली···।

निशा : उसकी छाती को पार कर गईहै। मैं जाती हूँ। कमरे में ताला लगाये जाती हूँ। बाहर से, जिससे कि यदि पुलिस आ भी जाये तो तुम्हें पा न सके। खिड़की भी बन्द कर लो। आधी-रात कक्ष आलोकित देख कहीं···

प्रताप : गोली उसके पैर की ओर गई होगी, ठहरो, किसी डाक्टर को···।

निशा : आज तक दुनिया को धोखा देते आये हो। आज यह कहकर अपने को भी धोखा मत दो। तुम स्वयं नहीं

जानते कि आज तुमने कितना बड़ा अनर्थ कर डाला है ! कि आज तुमने, अपने स्वयं निर्मित इस खिलौने को कैसी निर्दयता से कुचल डाला है।

प्रताप : तब क्या वास्तव में ही···वास्तव में ही·· ।

निशा : (रोकर) हाँ, प्रताप, हाँ ! अब भी सोचो। अब भी सम्भलो। जो पीड़ा आज मेरे हृदय को मथ रही है, वह तुमने कितनी निस्सहाय माओं को दी है। जो व्यथा आज तुम्हारे हृदय में तड़प रही है, तुम्हारे कारण वह कितने अभागे पिताओं को सहनी पड़ी है··· (रोती है)।

प्रताप : मार दिया ? मैंने मार दिया ? अपने ही पुत्र को ? यह कैसे सम्भव हो सका ? और मेरा हाथ तनिक भी नहीं काँपा ? मेरा हृदय तनिक भी नहीं झिझका। तब क्या मैं सच ही इतना नृशंस हो उठा हूँ ? क्या मेरे मन में लेशमात्र भी करुणा शेष नहीं रही ? नहीं · नहीं··· यह झूठ है सब झूठ है···केवल निशा को डराने के लिये···केवल उससे अपनी बात मनवाने के लिए ही··· मेरी महत्त्वाकांक्षाओं के आगे, इस नन्ही सी जान का क्या यही मूल्य था···नहीं···नहीं···किन्तु कोई भी महान् कार्य कभी किसी बलिदान के बिना पूरा नहीं हो पाता। मेरी सत्ता···मेरी सामर्थ्य दिन-दिन बढ़ती ही जायेगी। बड़े-से-बड़े शक्तिशाली मेरा नाम सुनते ही थर-थर काँप उठेंगे। मेरे अतुलित धन-वैभव के सम्मुख, बड़े-बड़े धन कुबेरों के कोष भी नगण्य लगेंगे। किन्तु मेरी अभिलाषायें आज मन्द सी क्यों पड़ने लगी हैं··· मेरा विश्वास क्यों डोल उठा है···मेरे कदम क्यों लड़-खड़ाने लगे हैं · आज मैं···मुझे···।

निशा : चुप, चुप। नीचे सड़क पर यह कैसा शोर हो रहा है।

कैसा आतंक सा व्याप गया है, ये !

प्रताप : मेरे मन में इस से भी अधिक आतंक है। इस से भी अधिक कोलाहल। निशा, निशा, तुम ठीक कह रही थीं। तुम सच कह रही थीं। प्रताप तुम्हारा पति, शिशु कमल का पिता कभी का मर चुका है। आज जीवित है केवल एक डाकू···केवल एक हत्यारा।

निशा : श्-श् चुप। नीचे कोई द्वार खटखटा रहा है। वह पुलिस की सीटी थी न ? तुम···तुम इस खिड़की से कूदकर भाग जाओ, जाओ···कहीं ऐसा न हो कि पुलिस···

प्रताप : पुलिस : पुलिस···पुलिस आ गई···भाग जाऊँ?? हाँ। हाँ···यही ठीक रहेगा। अच्छा, मैं चला···

[खिड़की से कूद पड़ता है। द्वार पर खट-खट]

निशा : चले गये ! ···नहीं जानती, मैंने ठीक किया या नहीं, नहीं समझ पाती हे ईश ! मुझे प्रेरणा दो, शक्ति दो, मुझे बल दो कि मैं इस दु:ख को झेल सकूँ। कि कितनी ही विपत्ति क्यों न पड़े, मैं अपना पथ न भूल सकूँ। ईश प्रभु, परमेश्वर, हे मंगलमय जगदीश्वर···

[द्वार पर खट-खट]

कांस्टेबिल : दरवाजा खोलिये।

निशा : (क्रोध से) क्या सरकार आप लोगों को इसी काम के पैसे देती है, कि आधी रात लोगों को परेशान करें ? सोने भी न दें किसी को ?

कांस्टेबिल : क्षमा कीजिए बहन जी, हमारे एक साथी ने प्रताप नामक नामी डाकू को, आपकी इसी खिड़की पर चढ़ते···।

निशा : नहीं, नहीं, यहाँ कोई नहीं आया।

कांस्टेबिल : पुलिस की आँखें सहज में धोखा नहीं खा सकतीं। वह हमें बुलाने गया ही था कि पहरे वाले सिपाही ने गोली

चलने की आवाज़ सुनी। वह इधर से ही आई थी। निश्चय ही वह इसी मकान में कहीं···।

निशा : गोली चलने की आवाज़···हाँ···हाँ···वह तो मैंने भी सुनी थी। वह उधर से आई थी पिछवाड़े से···उन ग्वालों की बस्ती से।

कांस्टेबिल : ओह ! ठीक है, वह उन गरीबों को धमका कर शरण माँग रहा होगा, चलो जल्दी···।

अनेक स्वर : चलो जल्दी। चलो जल्दी···।

[जाते जूतों की खटपट। द्वार बन्द करने की ध्वनि]

निशा : कमल···तू चला गया लाल ! अब कौन मुझे माँ कहकर पुकारेगा ! कौन मेरा आँचल पकड़ धूलि में लोटेगा··· किस को मैं···हैं ! इसकी तो श्वास अभी चल रही है यह अभी जीवित है—यह···यह···

कमल : (कराहकर) माँ···पा···पा···आ···ये···माँ···!

निशा : ओह कमल : ओह···मैं अभी डाक्टर को फोन करती हूँ। तू शायद अभी बच जाये। मैं अभी डाक्टर को बुलाती हूँ। अपने प्राण देकर भी मैं तुझे बचाऊँगी··· कमल···तेरी रक्षा के लिए डाक्टर ··डाक्टर।

[संगीत द्वारा दृश्य परिवर्तन, निस्तब्ध शून्यता में चौकीदार की आवाज़ गूँज उठती है—जागते रहो—होशियार]

प्रताप : भटकते-भटकते पाँच रातें बीत गईं : पाँच दिन कहीं भी शान्ति नहीं : कमल का वह मुख, निशा का रुदन···नहीं नहीं भावुक बनने से काम न चलेगा, आज मुझे कुछ काम करना ही होगा।

चौकीदार : जागते रहो, होशियार, खबरदार, जागते रहो।

प्रताप : (हँसकर) बेईमान, जानता है मालिक घर में नहीं। फिर भी आराम से खटिया पर पड़ा है? कम्बल में मुख लपेट, दुनिया को जगा रहा है! अच्छा, तो··· हाँ यही खिड़की ठीक रहेगी···घुस जाऊँ···अब देर करना ठीक नहीं···चोरी करना भी कितना सरल है··· उफ! इन अमीरों को फालतू सामान जोड़ने में न जाने क्या आनन्द आता है? यहाँ राह खोजना भी···।

[किसी वस्तु से टकराने का शब्द]

नारी : (भयभीत स्वर में)···कौन है, कौन है उधर?

प्रताप : खबरदार, जो पलंग से पैर उतारा, या मुख से एक शब्द भी निकाला।

बालक : माँ, क्या पापा आ गए। (डर कर) यह कौन है माँ?

प्रताप : ताली मेरे हवाले करो, और बताओ तिजौरी कहाँ है?

नारी : मुझे नहीं मालूम, न मेरे पास ताली है।

प्रताप : तुम झूठ बोलती हो।

नारी : यह सच है।

प्रताप : मुझे धोखा नहीं दे सकतीं तुम! शीघ्र बोलो, वरना देख रही हो यह पिस्तौल?

नारी : मेरा विश्वास करो: तुम डाकू ही सही, परन्तु तुम भारतीय हो, भारतीय परम्परा से परिचित। हमारे देश के पुरुष स्त्रियों को, कभी कुछ नहीं बताते। निश्चय ही तुम जानते हो कि हमारी परम्परा के अनुसार···।

प्रताप : ए औरत·· मुझे बातों में भुलाने की कोशिश न कर, वरना सच कहता हूँ, इसी पिस्तौल से तेरे इस बालक का सिर भुट्टे सा उड़ा दूँगा।

नारी : जो बात मुझे ज्ञात नहीं, उसका उत्तर मैं कैसे दे सकती हूँ?

प्रताप : यह मैं कुछ नहीं जानता, धन या बेटा बोलो : तुम्हें क्या चाहिए ? बोलो, जल्दी बोलो•••धन या बेटा, दोनों में से एक वस्तु•••जल्दी बोलो, वरना।

बालक : वरना तुम क्या करोगे ?

प्रताप : तुझे गोली मार दूँगा।

बालक : मुझे•••हा, हा, हा है इतनी हिम्मत ?

नारी : श् श्। चुप रह। डाकू के मुख लगना ठीक नहीं।

बालक : तुम चुप रहो माँ, बहुत देखे हैं ऐसे डाकू !

प्रताप : ए लड़के, ज़बान सँभालकर•••नहीं तो ••

बालक : अरे हटो : मैं सब जानता हूँ, चले हैं हमीं पर रोब गाँठने।

प्रताप : क्या जानते हो ?

बालक : कि चोर से बढ़कर बुज़दिल दुनिया में और कोई नहीं होता। मारोगे ? लो मारकर देखो•••आओ मारो••• चला दो पिस्तौल।

प्रताप : लड़के हट जा सामने से। नहीं तो मैं कहता हूँ•••।

बालक : हाहा, हा, खुल गई न पोल। मैं तो पहले ही जानता था, हमारे मास्टरजी उस दिन कहते थे - जिसमें इतना भी साहस नहीं कि दिन की रोशनी में दुनिया को अपना मुख दिखा सके, चार जनों में मिल-जुलकर अपना पेट भरने लायक चार पैसे कमा सके, उससे बढ़कर बुज़-दिल, नीच, पापी और कौन होगा ?

नारी : तू चुप रहेगा या मार खायेगा, अब मेरे हाथ से।

प्रताप : नहीं, तुम्हारे हाथ से नहीं, यह मेरे हाथ से मरेगा।

नारी : दया करो, बालक के वचनों पर ध्यान न दो, यह अबोध है, नादान है, जो कुछ किसी से सुन लिया वही तोते की तरह रट डाला है इसने। इसे क्षमा करो। अपने

बालक की भूल भी तुम क्षमा करते होगे कभी···इस निरपराध को···

प्रताप : अपना बालक ! निरपराध···हाँ, कमल निरपराध था, निर्दोष, तुम निशा···यह लड़का···उफ···नहीं, नहीं, यह झूठ है, सब झूठ है। मुझे धन चाहिये, केवल धन··· बोलो कहाँ है ?

नारी : मेरे पास कुछ नहीं है ?

प्रताप : (क्रुद्ध स्वर में) झूठ बोलने का प्रयत्न न करो, एक झूठ दूसरे झूठ को प्रश्रय देता। (खोया-खोया सा) एक झूठ के कारण ही आज मेरी यह दशा है, नहीं तो मैं इतना बुरा नहीं था। तुम्हारे बेटे को मार मैं और पाप कमाऊँ···इससे अच्छा है कि···

बालक : पाप से इतना डरते हो तो यह पाप-कर्म करते क्यों हो मिस्टर ?

प्रताप : क्यों करता हूँ ··तो यह पाप-कर्म है···मैं बुज़दिल हूँ···नहीं···नहीं···मैं इतना नृशंस हूँ कि मैंने अपने ही बेटे को···किन्तु आज···आज मेरे हाथ क्यों काँप रहे हैं···मेरा विश्वास क्यों डोल रहा है···मेरे कदम क्यों लड़खड़ाने लगे हैं···कौन मेरा गला पकड़ मुझे··· ऐसा किसी दिन और भी हुआ था···किसी दिन···हाँ, उस दिन मैंने···मैंने अपने हाथों···(ज़बान लड़खड़ाती है, वह गिर पड़ता है।)

नारी : अरे ! यह तो मूर्च्छित हो गया। बेटा, तनिक डाक्टर को फोन तो कर।

बालक : भूल रही हो माँ, हमें पुलिस को फोन करना है।

नारी : नहीं बेटा, डाक्टर को, यह रोगी है।

बालक : परन्तु माँ यह डाकू है।

नारी : ठीक है, परन्तु यदि यह मर गया, तो पुलिस इसके मृत शरीर का क्या करेगी ? बोल ?

बालक : माँ···!

नारी : जा उठ, देर न कर···

[संगीत द्वारा दृश्य परिवर्तन···चिड़ियों की चहचहाहट···बछड़ों का शोर]

निशा : अरे, भोर हो गई ! क्या मैं सो गई थी ? सपना देख रही थी, उफ, कितना भयंकर सपना ! अपने हाथों मैंने पति-पुत्र का वध कर डाला···कर डालूँ यही कर डालूँ···इस विभीषिका से त्राण पाने के लिए···इस बार जब वे आयें तब ? हा नियति ! कैसा क्रूर खेल है यह तेरा ! मैं डाकू की पत्नी हूँ। यह भोला शिशु डाकू की सन्तान है। जब यह सोता है, इसका पिता दुनिया के घर लूटता घूमता है। किसी न किसी दिन उसे फाँसी···किन्तु तरु टूट जाए तो क्या शाखा हरी रह सकती है···किनारा टूट जाए तब भी क्या नदी की धारा···नारी तो मानो बहती धारा है। पुत्र जिसका केवल एक किनारा है··· तब···तब क्या करूँ···विधाता, मेरा पथ सरल कर दो। मंगलमय प्रभु···(रोती है)

[नीचे से दूध वाला पुकारता है—'अजी दूध ले लो जी।']

निशा : अरे ! मैं भी कैसी पगली हूँ। भोर हो गई, दूध वाला आ गया। कमल सोकर उठता होगा अभी, और मैं बैठी रो रही हूँ ? सपने को यथार्थ में चित्रित करने के प्रयास में, यथार्थ को भी भूली जा रही हूँ। सपना कल्पना है, और जीवन वास्तविकता, कल्पना कथा-कहानी तक ही सीमित रहे। वास्तव में यथार्थ का ही

आश्रय लेना होगा···ठोकर खा जो उठ न सके, कठिनाइयों से घबरा मुख मोड़ लेना चाहे, वह कायर है। मैं पराजिता हूँ, किन्तु कायर नहीं···।

[सहसा चीख मार कमल रो उठता है।]

कमल : पापा···पापा···छोड़ दो, छोड़ दो, कहाँ ले जा रहे हो मेरे पापा को, छोड़ दो···छोड़ दो···।

निशा : कमल···कमल···, मेरे शिशु, मेरे चाँद, आज तुझे हो क्या गया है मेरे लाल ? क्यों बार-बार चौंक-चौंककर जाग उठता है।

कमल : माँ, माँ, मैंने सपना देखा माँ, सिपाही मेरे पापा को पकड़कर ले गये। सचमुच ही ले गये माँ।

निशा : कमल ! मेरे बेटे, आँखें खोल, देख भोर हो गई। इस समय सब सिपाही अपने-अपने बेटों को नींद से जगा रहे होंगे। उन्हें नाश्ता करा रहे होंगे।

कमल : तुम झूठ बोलती हो माँ, तुम झूठ बोल रही हो, वे सड़क पर जा रहे हैं। सुन नहीं रही हो, उनके जूतों की आवाज़ ? मैं छुड़ाऊँगा, मैं छुड़ाऊँगा, अपने पापा को मैं छुड़ाऊँगा।

निशा : कैसा पगला है तू। दुनिया का राह चलना भी बन्द करेगा क्या, रे ? वह कोई दूध वाला होगा या अखबार वाला ?

[द्वार पर खटखटाहट]

कमल : कौन है···वे ज़रूर सिपाही हैं—दरवाज़ा खोलो न माँ।

प्रताप : निशि, निशि, द्वार खोलो मैं आ गया निशे !

निशा : यह स्वर···यह वाणी···नहीं, नहीं यह मेरा भ्रम है··· यह कैसे सम्भव है।

प्रताप : द्वार खोलो निशे, आज तुम्हारे हाथों मृत्यु पाने, मैं तुम्हारे द्वार पर लौट आया हूँ।

कमल : अरे ! यह तो मेरे पापा हैं, माँ, माँ, उठो दरवाज़ा खोलो न, माँ, क्या जागते-जागते सो रही हो···उठो माँ, दरवाज़ा खोलो न, उठो···।

निशा : दरवाज़ा···नहीं-नहीं मैं न खोलूँगी, उन्होंने तो मार ही डाला था···भगवान ने ही रक्षा की···तब अँधेरा था, अब उजाले में गोली चलाने पर···नहीं··· ।

कमल : (खीझकर) न जाने क्या कह रही हो ? मत खोलो तुम···मैं खोल देता हूँ। स्टूल पर चढ़कर···।

निशा : (चीखकर) कमल···ठहर, कमल।

[द्वार खुलने का शब्द।]

प्रताप : कौन···कमल···कमल···तू कमल ही है न···मेरा कमल···गगन में खिलते उस बालारुण सा तेजोमय कमल···मेरा नन्हा··· (रोता है)

कमल : अरे ! तुम रोते हो। क्या चोट लगी है ? कहाँ चोट लगी है पापा !

प्रताप : (हास-रुदन भरे स्वर में) हाँ, चोट लगी थी, परन्तु तुम्हारी माँ नहीं चाहतीं कि मेरी चोट ठीक हो जाये। देखो, मुझे देखकर भी कुछ न कहा। चुपचाप खिड़की के बाहर ताक रही हैं।

निशा : मैं क्या कहूँ···काश···इस डूबती निशा के संग-संग मेरे दुर्भाग्य की कालिमा भी डूब जाये आज, भोर की इन नवीन किरणों के संग तुम्हारे जीवन का भी नया अध्याय प्रारम्भ हो मेरे प्रताप।

[द्वार पर प्रहार, कान्स्टेबिल के तीखे शब्द]

कान्स्टेबिल : दरवाज़ा फौरन खोल दो, नहीं हम तोड़ डालेंगे।

निशा : पुलिस···भाग जाओ प्रताप। पिछवाड़े वाले कमरे की खिड़की से, उधर, ग्वालों की बस्ती में जल्दी उठो, उठो···उठो न···।

प्रताप : घबराने की क्या बात है ? पुलिस आ रही है तो आने दो, आगे बढ़ उसका स्वागत करो निशे, डाकू का पुलिस को सौंप देना ही प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

निशा : यूँ मेरे मुख पर तमाचा न मारो प्रताप। मैं विनती करती हूँ, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ—तुम भाग जाओ, भाग जाओ यहाँ से ··हैं। यह क्या ? किधर जा रहे हो तुम ? उफ चटखनी मत खोलो···न खोलो···मेरी विनती मान लो।

प्रताप : छोड़ दो निशा, मैंने पाप किया उसका दंड मुझे भोगना ही होगा। ओ कान्स्टेबिल, लो ये मेरे दोनों हाथ, पहना दो हथकड़ियाँ।

[हथकड़ियाँ झनझना उठती हैं।]

कमल : (चीखकर) पापा !

निशा : नहीं कान्स्टेबिल, छोड़ दो इन्हें। ये निरपराध हैं, निर्दोष हैं···ये···।

कान्स्टेबिल : माँ की आँखों में पुत्र और पत्नी की आँखों में पति सदा निरपराध ही रहता है देवी जी, हमारे कटु कर्तव्य में बाधा न डालिए।

कमल : पापा : तुम कहाँ जा रहे हो पापा ? ओ सिपाही, मेरे पापा को न ले जाओ। मेरे पापा चले जायेंगे तो कौन मुझे कहानी सुनायेगा···किसकी पीठ का मैं घोड़ा बना कर खेलूँगा···कौन मुझे अपनी गोदी में ··(रोता है।)

निशा : मैंने अपने हाथों आज तुम्हें कारागार में धकेल दिया···

मेरे कारण···।

प्रताप : सोच न करो निशे, डाकू प्रताप को नहीं विदा दो केवल एक पति को, एक पिता को···विदा मेरे नन्हे, आ एक प्यार दे।

कमल : पापा ? न जाओ पापा···एक घूँसा मारो। ये चारों सिपाही चित हो जाएँगे। डरपोक न बनो पापा।

प्रताप : निशि, एक बार हँस दो, हँसते-हँसते मुझे विदा दो। जिससे कल्पना में मैं देख सकूँ कि दुःख-सन्ताप रूपी झंझा झकोरे झेलकर भी, तुम मेरे लौटने की प्रतीक्षा में हो···निर्भीक, दृढ़, अचल अटल भाव से··· ।

निशा : जाओ···मेरी कल्पना में ही बस कर रहो तुम···और तुम्हारी कला इस नन्हे शिशु के सहारे मैं दुःखपूर्ण इस अवधि के ये दिन पार कर जाऊँ; जैसे सरिता की निर्मल धारा, अपने दोनों दृढ़ किनारों के सहारे···।

[रोती है।]

कान्स्टेबिल : चलिये हज़रत, बहुत हो चुका ! या अब घसीटकर ले चलना पड़ेगा ?

प्रताप : विदा, निशि। विदा मेरे नन्हे, मुझे भूल न जाना।

कमल : पापा, न जाओ, न जाओ पापा···।

निशा : विदा···विदा···(रोती है।)

कमल : तुम सब डरपोक हो, कायर हो, क्यों तुमने उन्हें जाने दिया। बोलो माँ···बोलो न···!

निशा : सुना है···धूलि में लिपटे हीरे को खराद पर चढ़ाना ही पड़ता है।

सब की छुट्टी

पात्र :

शीला : गृहस्वामिनी
हरीश : शीला का पति
सतीश : शीला का देवर
ऊषा : शीला की बेटी
सुनील : शीला का छोटा पुत्र
भोला : शीला का नौकर
धोबी, उद्घोषक, आदि

पात्र-परिचय

शीला

विवाह के उपरान्त एक बी० ए० पास किशोरी की क्या दशा हो जाती है, इसका वह सुन्दर नमूना है। नून-तेल-लकड़ी के चक्कर में उसका होम-साइंस और इकनौमिक्स का ज्ञान व्यर्थ हो गया है। कालेज में वह कितना ही बन-सँवर क्यों न रहती हो, किन्तु अब उसे बाल सँवारने तक का अवकाश नहीं मिल पाता। घने घुँघराले बालों को उँगली पर लपेट ढीला सा जूड़ा बना लेती है। घर के काम में साड़ी की शिकन खराब हो जाती है, उस ओर उसका ध्यान नहीं जा पाता। घर का अधिकतर काम उसे अपने ही हाथ से करने का शौक है, अतः दिन भर कामों से फुरसत नहीं मिलती। हफ्ते के छः दिन वह छुट्टी का दिन आने की आशा में बिता देती है, किन्तु छुट्टी के दिन···।

हरीश

एक स्थानीय फर्म में एस्सिटैन्ट मैनेजर है। दिन भर काम में व्यस्त रहता है, फिर भी कालेज जीवन के शौक अभी छूटे नहीं हैं। अपने समय में वह अपने कालेज की क्रिकेट टीम का कैप्टन था। आज भी क्रिकेट का समाचार सुन वह खाना-सोना भी भूल जाता है। वैसे भोजन के प्रति, विशेष कर मिष्ठान के प्रति उसे विशेष रुचि है। उसकी सन्तान यदि उसका रौब नहीं मानती, तो यह दोष उसका नहीं, उसके बाल-हठीले स्वभाव का है, जो बच्चों को धमकाकर स्वयं ही हँस पड़ता है। नित्य व्यस्त रहता है, अतः छुट्टी के दिन वह सब काम आराम से करना चाहता है।

सतीश

हरीश का छोटाभाई, अभी कालेज में पढ़ रहा है। सिनेमा का और घूमने-फिरने का कुछ विशेष शौकीन है। भाई की सन्तान से उसे विशेष स्नेह है। भाभी से वह मन-ही-मन कुछ डरता है। पढ़ने के अतिरिक्त उसे

और कुछ काम नहीं, फिर भी छुट्टी का दिन मानो उस के लिए वरदान बनकर आता है।

ऊषा

शीला की नौ वर्षीया बेटी। चपल, नटखट और चंचल। माँ के बार-बार कंघा करने पर भी उसके बाल सदा माथे पर ही बिखरे रहते हैं। रिबन ढीला हो कर खुलनेलग जाता है। पिता के धमकाने पर भी वह घर में नंगे पैर ही कूदती रहती है। नित्य स्कूल जाना पड़ता है, अतः छुट्टी के दिन अच्छी तरह खेल कर वह उस कमी की पूर्ति कर लेना चाहती है।

सुनील

शीला का सात वर्षीय पुत्र, नटखट और शैतान, पढ़ने के प्रति उसे तनिक भी रुचि नहीं, किन्तु कोई जबर्दस्ती पढ़ने को बैठा देता है, तो वह पुकार-पुकार कर सारे घर को सुना देना चहता है कि वह कितने ध्यान से, कितना मन लगाकर पढ़ रहा है। उसे अभिनय के प्रति विशेष रुचि है। किसी दिन सतीश ने कह दिया था कि यदि वह फिल्म में काम करने लगे तो सब बाल-कला- कारों को फीका कर दे, उस दिन से वह सदा अभिनय करने का अवसर खोजता रहता है। छुट्टी के दिन सब अपने-अपने खेल में व्यस्त रहते हैं, किसी को उसे टोकने का अवकाश नहीं मिल पाता, अतः उसे मनमानी करने का यथेष्ट अवसर मिल जाता है।

भोला

सत्ताईस-अठाईस वर्ष का सीधा-सादा सा युवक है। बोलता बहुत कम है, अपने काम-से-काम रखता है। मालकिन की धमकियाँ सुनने का वह अभ्यस्त हो गया है, फिर भी उसकी मुख-मुद्रा से कुछ ऐसा लगता है, मानो छुट्टी का दिन आता है तो उसका नित्य-नेति का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। भोला मुख से कुछ नहीं कहता, किन्तु उस की दृष्टि मानो प्रत्येक से पूछती रहती है कि प्रत्येक कार्य को वह जितनी अधिक चतुराई से करना चाहता है, उसके विषय में उसे उतनी ही अधिक धम-कियाँ क्यों मिलती हैं!

सब की छुट्टी

स्थान : [शीला के घर का आँगन, छुट्टी का दिन है। सब लोग देर से सो कर उठे हैं, अतः भोला बिस्तरे लपेट कर चारपाइयाँ उठा रहा है। सामने बरामदा है, जिसके बीच में पड़े तख्त पर बैठा सुनील अपना पाठ याद कर रहा है। बरामदे में दो दरवाजे हैं, जो अन्दर कमरों में खुलते हैं। पश्चिमी दरवाजे से सतीश छोटी मेज़ लिये हुए आता है, और उसे बिजली के बोर्ड के पास रखकर फिर अन्दर लौट जाता है। दोबारा वह रेडियो लिए हुए निकलता है। छुट्टी का दिन है, अतः शायद बाहर बैठकर रेडियो सुनने का प्रोग्राम है। बरामदे के पूर्वी कोने पर खाने की मेज़ रखी है, जिसके इर्द-गिर्द कुर्सियाँ पड़ी हैं। मेज पर अभी चाय के जूठे प्याले और प्लेट बिखरे पड़े हैं। आँगन के दूसरी तरफ दो कोठरियां हैं, जिनके द्वार बन्द हैं। तीसरा खुला हुआ है, जिसमें से रसोई का कुछ अंश दिखाई देता है।

रेडियो का प्लग लगाकर, सतीश भाभी को पुकारते हुए कमरे में घुसता है,अन्दर से ऊषा हाथ में कापी-किताब सँभाले, जल्दी-जल्दी आती है, द्वार पर दोनों टकरा जाते हैं, छुट्टी का दिन है न। सब अपनी-अपनी धुन में हैं···]

सुनील : (ज़ोर-ज़ोर से अपना पाठ याद कर रहा है) अकबर

हुमायूँ का बेटा था। अकबर हुमायूँ का बेटा था। वह राजकोट में पैदा हुआ था। वह राजकोट में पैदा हुआ था। अकबर हुमायूँ का बेटा था। वह रोजकोट में···

सतीश : (पुकार कर) भाभी, भाभी, मैंने कहा, भाभी सुनती हो।

ऊषा : (पुकार कर) चाचा, ए चाचा, माँ उधर हैं रसोई में (धीरे से फुसफुसाकर) चाचा, बोलना नहीं अभी माँ से।

सतीश : (धीरे से) क्यों ?

ऊषा : (और भी धीरे से) अभी-अभी महरी को डाँट-फटकार कर, रसगुल्ला-सा मुँह बना रसोई में घुसी हैं। बोलते ही दूध सी उबल पड़ेंगी।

सतीश : (हँस कर) चल नटखट, हट सामने से।

ऊषा : कहाँ जा रहे हो ?

सतीश : देखती नहीं ? भाभी के पास।

ऊषा : जाओ, मेरा क्या ! पछताओगे। फिर न कहना···ऊषी पहले से तूने बताया क्यों नहीं ?

सतीश : अरी, बावरी, नहीं गया तो और भी ज्यादा पछताना पड़ेगा। बहुत जरूरी काम है। हट, जाने दे मुझे जल्दी से।

ऊषा : (हल्के से ताली बजाकर) चाचा माँ के पास जायेंगे। नमक मिर्च की खायेंगे। चाचा माँ के पास जायेंगे। नमक मिर्च की खायेंगे।

[फेड आउट]

सतीश : भाभी, भाभी सुनो, आज मंगल है।

शीला : (चिढ़कर) तो क्या करूँ ! अपना कपार चढ़ा आऊँ हनुमान जी के मन्दिर में ?

सतीश : (सिटपिटाकर) नहीं भाभी, बात यह है कि···वो··· असल में तुमने कहा था न 'कि मंगल को' 'नारी-जगत' में 'बच्चे की शौल' की बुनाई बताई जायेगी, मुझे याद दिला देना' सो मैं तुम्हें याद दिलाने···।

शीला : हूँ।

सतीश : भाभी, मैं जाऊँ ?

शीला : अजी जाओ न, किसने कहा तुमसे यहाँ खड़े रहने को।

ऊषा : (हौले से) क्यों चाचा ? खाई न डाँट ?

सतीश : (धमका कर) चुप नटखट।

शीला : (मीठी आवाज़ में पुकार कर) भोला, अरे ओ भोला, न जाने निगोड़ा कहाँ जाकर मर जाता है। चल जल्दी ये चाय के बर्तन साफ कर डाल। फिर दाल बीन लेना झट से। आज खाना जल्दी बनेगा।

भोला : जी, सरकार।

शीला : और देख यह धनिया साफ कर लेना। चटनी पीसनी होगी। चल फुर्ती से हाथ चला ज़रा। सतीश, मैंने कहा सतीश सुनते हो।

सतीश : अभी आया भाभी। हाँ, क्या कहती हो।

शीला : सतीश भैय्या, मैंने कहा, ज़रा सुनो इधर, उस नौकरों वाली मेरी कापी में देखकर, ज़रा इस महरी का हिसाब तो चुका दो भैय्या भरपाई मैं इस निखटिया से।

सतीश : अच्छा, भाभी।

शीला : तब तक मैं नहाकर निबट आऊँ। ऊषी, अरी-ओ ऊषी। चल तू जरा आलू तो काट तब तक। जब तक मैं नहा कर आऊँ, तैयार कर रखना। और देख, अपनी उँगली न काट लेना। सुनील, बेटा, जरा तू इस नन्हें पप्पी को तो सँभाल ले। मैं नहा आऊँ, देखना कहीं ये शैतान तेरी

नजर बचा, बाल्टी में छप्-छप् न करने लगे।

सुनील : छप्-छप् कैसे करेगा, माँ। मैं जो हूँ। चल रे, पप्पी, इधर। ऊषी तूने सुना नहीं ? माँ ने अभी क्या कहा ?

ऊषा : हाँ, हाँ, सुना, खूब सुना।

सतीश : भोला, दूसरी तारीख से···नहीं, नही···महरी···महरी ···महरी, हाँ यह रही महरी कौन सी तारीख से ? छब्बीस से, आज है तेईस। कितने दिन हुए—एक, दो, तीन···

ऊषा : देखो चाचा, सुनी माँ की बात। अभी कह रही थीं—'ऊषी हरगिज मत पढ़ना तू ! अगर फेल हुई तो देखना और अब मैं पढ़ने बैठी तो कहती हैं—ऊषी, चल, आलू काट।

सतीश : तो काट ले न। आलू काटने में क्या लगता है। यह भी क्या महरी का हिसाब करना है, जिस में रुपये आने पाई का हिसाब गिनना पड़ता है।

ऊषा : हाँ जी, कहना ऐसा ही आसान है, हाथ में छुरी लेकर काटना पड़े, तब पता चले।

सतीश : उठ यहाँ से, मुझे जाने दे, आठ रुपये महीने के हिसाब से ८ बटा ३० इज इक्वल टु चार बटा पन्द्रह। ४ बटा पन्द्रह इज इक्वल टु चौंसठ बटा पन्द्रह···

(चलते-चलते सतीश, हरीश से टकरा जाता है)

हरीश । (गुस्से) बस टकरा गये। देखकर नहीं चला जाता। सिर फोड़ दिया मेरा।

सतीश : क्षमा करिये भैय्या, मैं जरा जल्दी में था।

हरीश : जल्दी ? हुँह ! इस घर में कोई आदमी, कोई काम कभी धीरे से तो कर ही नहीं सकता। आज का अखबार तुमने पढ़ा ?

सतीश : जी हाँ, 'वसन्त' में 'श्री चार सौ बीस' आ गया है। हाँ आज से ही।

हरीश : बस, सिनेमा ! सदा सिनेमा ! मैं कहता हूँ तुझे सिनेमा के सिवा कभी कुछ और भी सूझता है ?

सतीश : जी भैय्या, जी, वो, जी···

हरीश : क्या जी-जी लगा रखी है ! ले सुन ताज़ा समाचार-प्राइम मिनिस्टर की टीम ने स्थानीय टीम को छः विकेट से हरा दिया।

सतीश : अरे ! भाईसाहब, यह खबर तो बहुत पुरानी हो गई, मैं आपको इससे भी ताज़ी खबर सुनाऊँ।

हरीश : हाँ, हाँ, सुना।

सतीश : भाभी ने महरी को नौकरी से निकाल दिया।

हरीश : ऐं, निकाल दिया ? कब, क्यों, किसलिए ? मैं पूछता हूँ, आखिर उनसे किसने कहा था, उसे निकालने के लिए।

सतीश : जरा धीरे बोलिये, भैय्या, कहीं भाभी ने सुन लिया तो···।

हरीश : लेकिन मैं पूछता हूँ···

ऊषा : (जल्दी-जल्दी) जी, पापा, महरी कह रही थी, मैं बिना घी की दाल नहीं खा सकती। माँ ने कहा, काम करना हो तो सीधे से कर—नखरा बघारने की जरूरत नहीं। महरी बोली···(उईमाँ), हाय मैं, हाय मैं मर गई, (जोर से चीख उठती है।)

हरीश : क्या हुआ ऊषी, क्या हुआ, अरी तू बोलती क्यों नहीं ?

ऊषा : देखिये पापा, उँगली कट गई। (रोकर) देखिये पापा कितना खून निकल रहा है, ओ चाचा, ओ अम्माँ, मैं तो मर गई री, ओ चाचा, ओ पापा···

हरीश : पापा की बच्ची, क्यों काटने बैठी थी सब्जी ? किसने

कहा था तुझसे काटने को।

ऊषा : (सिसककर) अम्माँ ने ही तो कहा था। हाय! बड़ा दर्द हो रहा है, हाय पापा!

हरीश : अम्माँ ने कहा था! हर बात में अपनी टाँग अड़ाती है। मिल गया न शैतानी का मज़ा? अब रो बैठकर, स्कूल से भी छुट्टी मिली।

ऊषा : स्कूल की तो आज छुट्टी है, पापा।

हरीश : छुट्टी? बस, रोज छुट्टी! आजकल इन स्कूलों में खाक पढ़ाई होती है। हमारे ज़माने में···

सतीश : आपके ऑफिस की भी तो आज छुट्टी है, भैया। आ, ऊषी इधर आ। टिंक्चर लगाकर पट्टी बाँध दूँ।

हरीश : (खुश होकर) अरे! हाँ, मैं तो भूल ही गया था। आज तो ऑफिस की छुट्टी है। क्या नाम है उसका, कोई भला-सा त्यौहार है वह, ख़ैर होगा, जाने दो। सतीश, भई मैं कहता हूँ, आज हम सब की छुट्टी है, आज कोई स्पेशल प्रोग्राम बने।

सतीश : ज़रूर भैया, ज़रूर। ए ऊषी, हाथ क्यों खींच रही है। सीधी तरह से बैठ ना।

ऊषा : दर्द होता है चाचा।

सतीश : ज़रूर होता होगा, रानी। पर इस दवा से झट से ठीक हो जायेगा। ला तो अपना हाथ। बड़ी रानी बेटी है, तू तो चाचा की।

ऊषा : (सिसककर) देखो न चाचा, सब हमें ही डाँटते हैं! स्कूल में छुट्टी हुई, यह भी क्या मेरा ही कसूर है? मैं आलू काटने बैठी यह भी क्या मेरा ही कसूर है।

सतीश : रोते नहीं ऊषी। पापा ने तो प्यार में कहा था।

हरीश : मैं सोच रहा हूँ, आज क्या स्पेशल प्रोग्राम बने। सतीश,

आज चावल की खीर बने तो कैसा रहे।

ऊषा : बस, पापा, तुम्हें तो चावल की खीर ही सूझती है। आज छुट्टी है। सिनेमा दिखाने ले चलो न।

हरीश : क्या जमाना आ गया है। ज़रा-ज़रा से बच्चे, जब देखो, तब सिनेमा की धुन ! हम जब इतने बड़े थे तो सिनेमा का नाम भी नहीं जानते थे। मैंने कहा, अजी कहाँ गईं, सुनती हो···

[पुकारते-पुकारते चला जाता है।]

सतीश : हाँ, तो महरी का हिसाब हुआ, तीन रुपये पन्द्रह आने सात पाई। भाभी, भाभी, मैंने कहा भाभी, चाबियों का गुच्छा किधर है ?

शीला : लो, अब गुच्छा भी न जाने किधर खो गया। ए, भैया, ज़रा अपने भाई साहब के कोट की जेब में से ही दे दो इस समय। मैं दोपहर को ही उनका हिसाब ठीक कर दूँगी। न जाने कैसी लड़की है यह ऊषी, इससे तो मैं तंग आ गई। इससे इतना भी नहीं होता कि ज़रा माँ का गुच्छा ही सँभालकर रख दे। मैं जब इतनी बड़ी थी···

हरीश : (क्रोध से) हाँ-हाँ, सुना है, सबने सुना है। जब तुम इतनी बड़ी थीं, तो सारे घर को अपने सिर पर सँभाले घूमती थीं। अपनी माँ को कभी किसी काम में हाथ तक नहीं लगाने देती थीं। पर अब तुम बाहर भी निकलोगी, या गुसलखाने में घुसी-घुसी लैक्चर ही झाड़ती रहोगी। मैंने कहा—औरों को भी नहाना-धोना है।

शीला : एक छुट्टी का दिन तो मिलता है ज़रा ढंग से नहाने के लिए, उस दिन भी चैन नहीं लेने देते। मैं ज़रा सिर

धोने क्या बैठ गई कि बस···

हरीश : अरे! तो क्या आज सारे दिन सिर ही धुलता रहेगा। ये तुम्हारे बाल हैं कि बरगद की जटायें।

शीला : देखो जी, मेरे बालों को नज़र न लगाना। हाँ, मैं कहे देती हूँ, अच्छा न होगा।

हरीश : क्या अच्छा न होगा! बाहर निकलकर बात करो···

शीला : आती हूँ, आती हूँ। बस अभी आती हूँ दस-पाँच मिनट में। आप तब तक अलमारी में से अपने कपड़े निकाल लाइये।

हरीश : लो, और सुनो। अब आज मुझे अपने कपड़े भी खुद ही निकालने होंगे।

[फ़ेड आउट]

शीला : ए, भोला, तुझसे किसने कहा था, आलू काटने को। वर्तन साफ कर चुका?

भोला : जी सरकार।

शीला : अच्छा, तो देख—चावल निकाल ला। दो कटोरी नापकर निकालना। और देख बहुत ऊपर तक भर-भरकर मत नापना। उठ, छोड़ दे इस सिलबट्टे को। मैं कहती हूँ, ज़रा फुर्ती से हाथ चला। आज खाना साढ़े ग्यारह बजे तक ज़रूर तैयार हो जाना चाहिए।

हरीश : साढ़े ग्यारह बजे? इतनी जल्दी खीर बन जायेगी।

शीला : अब आज मुझे खीर-वीर बनाने की फुरसत नहीं है।

हरीश : लो, और सुनो! आज तो छुट्टी का दिन है। आज भी फुरसत नहीं होगी, तो फिर कब होगी?

शीला : कह तो दिया बाबा, आज मुझे बहुत काम है। मेरी जान न खाओ, जाओ यहाँ से। आज खीर-वीर कुछ न बनेगी।

हरीश : और हाँ शीला, अब बर्तन कौन माँजेगा ?

शीला : क्यों ? महरी माँजेगी ना ?

हरीश : लेकिन महरी को तो तुमने आज छुट्टी दे दी है ना ?

शीला : गई निगोड़ी तो जाने दो ! क्या और कोई महरी ही नहीं शहर में ?

हरीश : होंगी तो ज़रूर। लेकिन कौन जाने कि वे सवा सेर के ऊपर पुसेरी न होंगी। पूरा एक महीना झख मारने के बाद तो इन बेगम साहब के दर्शन नसीब हुए थे।

शीला : (तेज़ी से) अच्छा, अच्छा, तो आपको इतनी चिन्ता किस बात की है ! आप से तो किसी ने नहीं कहा कुछ करने को !

हरीश : (धीरे से) चिन्ता तो बहुत है, पर यहाँ सुननेवाला कौन है ! दूसरी महरी लाने के लिए दिन-रात कान तो मेरे ही खाए जायेंगे। ये बेगम साहब दाल के संग सिर्फ घी ही माँगती हैं, वे मिठाई न माँगें, तो हरीश मेरा नाम नहीं।

[फ़ेड आउट]

शीला : भोला, ओ भोला, ज़रा घड़ी तो देख क्या बजा है ?

भोला : ग्यारह बजने में दुई मिनट बाकी हैं, सा'ब।

शीला : हाय, राम ! क्या कहा ! ग्यारह बजने वाले हैं। और अभी सारा काम यूँ ही पड़ा है। ला ज़रा अँगीठी तो सिलगा जल्दी से। गोभी उस पर छौंक देना। और फिर मेज़ पर प्लेटें लगा दे। और देख, सबसे जाकर एक बार कह आ कि भोजन तैयार है।

भोला : अभी कहाँ तैयार है, बीबी जी ! अभी तो बड़ी अबेर है।

शीला : होने दे। तुझे इससे मतलब। जैसा मैं कहूँ, वैसा कर।

भोला : जी सरकार।

शीला : (झल्लाकर) अरे! तू गया नहीं अभी तक! सिलबट्टे से ही चिपककर बैठे रहना आज, अच्छा! ज़रा तुझसे चटनी पीसने को क्या कह दिया, मैंने तो अपनी मुसीबत बुला ली।

भोला : जी। अभी जाता हूँ, सरकार। बस, यह लो।

शीला : बस तो तू आध घंटे से कर रहा है। देख, भोला, तू बोलने बहुत लगा है। इतना बोलना मुझे पसन्द नहीं। काम करना है, तो ठीक से कर, वरना··· चल उठ, अँगीठी सिलगाकर गोभी छौंक दे। और फिर सबसे कह आ कि खाना तैयार है। उठ, अब ज़रा फुर्ती से हाथ चला।

भोला : जी, सरकार।

शीला : आध घंटा तो सब को मेज़ पर आने में लगता है। यह तो नहीं कि सुनते ही खाने को आ जायें। ना, इधर घूमेंगे, उधर घूमेंगे···

[बर्तनों की खटपट। शिशु का रुदन]

शीला : (पुकार कर) भोला, अरे ओ भोला, देख वह पप्पी रो रहा है। कभी तो तू किसी काम को वक्त पर याद रखा कर। चल, पहले उसे दूध गरम करके दे। छोड़ दे, इस अँगीठी को। मैं क्या कह रही हूँ, तुझे सुनाई नहीं देता उठ, पहले दूध गरम कर, शीशी में भर ला।

ऊषा : माँ, ओ माँ, देख यह नीलू नहीं मानता।

सुनील : माँ, जीजी ने मुझे चपत मारा। मैं भी उसे मारूँगा।

ऊषा : तो तूने मेरी चोटी क्यों खींची?

सुनील : आपने मेरी पेंसिल क्यों तोड़ी?

ऊषा : आपने मेरी गुड़िया की टाँग क्यों खींची?

हरीश : (चीख कर) क्या आप-आप लगा रखी है ? ए ऊषी, ए सुनील, चलो इधर। कुछ काम भी करने दोगे, या चख-बख ही लगाये रहोगे। जब देखो तब लड़ाई, जब देखो तब झगड़ा। बच्चे बहुत देखे, पर ऐसे बच्चे कहीं न देखे। दो दिन भी प्यार से मिल-जुल कर नहीं बैठ सकते। मैंने कहा, अजी सुनती हो ?

शीला : कुछ कहोगे भी। सुन तो रही हूँ।

हरीश : ये आई हैं, ये।

शीला : कौन ?

हरीश : अजी, वे ही। तुम्हारी पीली कोठी वाली सहेली ?

शीला : कौन, नन्दिता ? क्या नन्दिता आई है ?

हरीश : हाँ। कह रही है, जीजी ने मुझे क्रोशिया का झुमके वाला फूल बनाना सिखाने को कहा। था। आज छुट्टी का दिन था, सो सीखने को चली आई।

शीला : होगी, छुट्टी, मुझे आज फुरसत नहीं है। सुनो जी, ज़रा उससे कह दो, कल किसी वक्त आ जायेगी, मैं ज़रूर सिखा दूँगी।

हरीश : तुम्हीं कह दो न। तुम्हारी सहेली है। मैं क्यों कहने जाऊँ ?

शीला : तुम्हीं कह दोगे तो कुछ घिस जाओगे ?

हरीश : खूब हो तुम भी। बाहर से बाहर सहेली को विदा कर दोगी तो वह बुरा नहीं मान जायेगी ? ठहरो, मैं उसे यहीं बुला लाता हूँ। जो कुछ कहना है...

शीला : अरे, सुनो, सुनो, ठहरो, रुको। कहीं ऐसा गज़ब न कर बैठना !

हरीश : क्यों ? क्या हुआ ?

शीला : देख नहीं रहे हो, सवेरे से बाल भी नहीं बनाये हैं ?

साड़ी भी कितनी गन्दी हो रही है ? इस भेष में जाऊँगी उसके सामने ? जाओ, ज़रा कह दो ना उस से ।

हरीश : अच्छा, अच्छा जाता हूँ ।

शीला : और हाँ, ठहरो, ज़रा सुनो, मैंने कहा, खाना तैय्यार है ।

हरीश : खाना तैय्यार है ? अभी से ? आज तो छुट्टी का दिन है ?

शीला : छुट्टी का दिन है, तो क्या हुआ ?

हरीश : कुछ हुआ ही नहीं ? रोज़ तो नौ बजे खाकर ऑफ़िस भागना पड़ता है । एक छुट्टी का दिन मिलता है, सो उस दिन भी तुम चैन से खाने न दो ।

शीला : अजी, मैं हरगिज़ न कहती तुम से । मुझे क्या भला इस बात का ध्यान नहीं, पर आज वो रेडियो में···

हरीश : (झल्लाकर) भला तुम्हारा रेडियो का प्रोग्राम हुआ ! मैं आज ही रेडियो वालों को चिट्ठी लिखता हूँ । कोई भला आदमी समय से खाना भी नहीं खा सकता ।

शीला : भले आदमी दोपहर को ढाई बजे भोजन करते होंगे । छुट्टी का दिन है । मैं ज़रा दो मिनट बैठकर रेडियो भी नहीं सुन सकती ?

[फ़ेड आउट]

शीला : सुनील, ज़रा रेडियो तो खोल दे बेटा ।

सुनील : लेकिन ममी अभी तो···

शीला : अभी तो क्या ? बस, बात बात पर बहस करना आ गया है तुझ से ? मैं कहती हूँ, हमारी घड़ी दो-चार मिनट सुस्त भी तो हो सकती है ।

सुनील : मेरा क्या ! मुझ से कहतीं तो मैं सुबह ही खोलकर रख देता ।

[तेज़ संगीत]

हरीश : (झल्लाकर) आज शान्ति से भोजन भी न करने देना। भली चटाई की बुनाई हुई !

ऊषा : चटाई की नहीं पापा, ऊनी शाल की।

शीला : और जब आप चौबीस घंटे रेडियो बजाते हैं, तब कुछ नहीं ? एक दिन ज़रा मैंने खोल लिया तो आफ़त आ गई !

हरीश : अच्छा बाबा, अच्छा, जो तुम्हारे मन में आये, सो करो।

रेडियो पर : बहनो, अभी आपने सुधा खन्ना से मीरा का एक गीत सुना। अब हम आपको एक कहानी सुनवाते हैं— 'इन्सान का धर्म'···

शीला : (सन्तोष से) चलो, दस मिनट तो यह प्रोग्राम चलेगा ही। तब तक हमारा भोजन भी निबट जायेगा।

ऊषा : मैं तो खा चुकी माँ।

सुनील : मैं भी।

शीला : चल ऊषी, तू ज़रा रसोई में से फुलके तो ले आ। तब बेचारा भोला जल्दी बना सकेगा। सुनील, तू बेटा ज़रा कागज़-कलम तो ले आ। क्यों जी, मैं उठ जाऊँ ?

हरीश : ज़रूर, ज़रूर। तुम्हारे उठे बिना आज खाना भी न मिलेगा।

सुनील : मम्मी, मम्मी, देखो मम्मी यह पप्पी दिन पर दिन शैतान होता जा रहा है। तुम इसे कुछ नहीं कहतीं। मेरी सारी पेंसिल चबा डाली इसने।

शीला : (झल्लाकर) उसे जैसे इस बात की बड़ी भारी अक्ल है, ना ? अपनी चीज़ संभालकर क्यों नहीं रखी तूने ? सतीश भैय्या, सुनो ज़रा, अपना पैन दे दो तुम। ज़रा जल्दी करो। अब शुरू होने ही वाला है।

सतीश : अभी लाया भाभी।

रेडियो एना० : लीजिये बहन, अब हम आपको बच्चे का एक सुन्दर शौल बनाना सिखाते हैं। देखिये शुरू इस तरह कीजियेगा—
पहली सलाई—6 सीधे, 7 उलटे, 2 सीधे, 2 उलटे, 4 सीधे···
दूसरी सलाई—8 सीधे, 5 उलटे, 2···

सुनील : मम्मी, मम्मी, धोबी आया है।

शीला : चुप कर पाँच मिनट को।

रेडियो एना० : पाँचवीं सलाई—4 सीधे, 3 उलटे, 2 सीधे, एक···

ऊषा : मम्मी सुनो, महरी कह रही है, अगर तुम उसे आठ के बजाये दस रुपये···

शीला : मैं कहती हूँ, पाँच मिनट को शान्ति करो तुम लोग, जाओ, भाग जाओ यहाँ से।

रेडियो एना० : आठवीं सलाई—4 सीधे, 3 उलटे, 2 सीधे, एक···

[शिशु का रुदन]

सुनील : (चीखकर) मम्मी, ओ मम्मी, जल्दी से आओ मम्मी, भाग कर। देखो, पप्पी नेअपने मुँह पर राख मल ली। उसकी आँखों में घुस गई। जल्दी आओ माँ।

रेडियो एना० : यदि आप शौल को और अधिक सुन्दर बनाना चाहें तो···

सुनील : माँ···ओ माँ···

शीला : (खट से रेडियो बन्द कर देती है) उफ़ ! बोलो, सुनाओ, सब कुछ अभी कहो, न करने दो मुझे कुछ काम। ए ऊषी, तू यहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रही है ? तुझसे इतना भी नहीं होता कि ज़रा भाई का मुँह ही धो दे।

ऊषा : जाती हूँ, माँ।

धोबी : बीबी जी, कपड़े मिला लीजिये।

शीला : (तेज़ी से) तुम्हें भी आज ही आना था! क्यों जी, तुम से कह रखा है न कि इतवार को कपड़े लाया करो?

धोबी : बीबी जी, असल में छुट्टी का दिन है, इसीलिये मैंने कहा आज ही कपड़े ले चलूँ। आप को छुट्टी होगी।

शीला : हाँ, हाँ, छुट्टी क्यों न होगी। घर में एक मैं ही तो फ़ालतू हूँ। रख जाओ कपड़े। कल आकर ले जाना।

धोबी : बड़ी दूर से आना पड़ता है, बीबी जी। दसेक मिनट तो लगेंगी बस। आज ही मिला लीजिये ना।

शीला : अच्छा, अच्छा, मिला लेती हूँ।

(शिशु का रुदन)

शीला : उफ़, उधर वह रो रहा है। मैंने कहा, अजी सुनते हो। ज़रा ये धोबी के कपड़े मिला लो। छुट्टी के दिन तो घर का थोड़ा काम करा दिया करो। जाने कहाँ जाकर बैठे हैं ये! मैंने कहा अजी सुनते हो।

हरीश : वन हार्ट

सतीश : टू स्पेड।

हरीश : इस बार कॉल मेरी ही रहेगी।

सतीश : तो कीजिये न हिम्मत। मना कौन करता है।

ऊषा : ए पप्पी, सीधा बैठ, गधे अब रो रहा है, मुँह पर राख मली थी, तब नहीं सूझा था कि यह आँख में भी घुस जायेगी।

शीला : मार डालेगी ये उसे। जाऊँ, पहले उसका मुँह धो आऊँ।

धोबी : बीबी जी, कपड़े।

शीला : (झल्लाकर) ठहर ज़रा, मिला लेती हूँ कपड़े भी।

सुनील : (चिल्लाकर) मैं हूँ, हनुमान। पवनपुत्र हनुमान। जो एक छलाँग में समुद्र को लाँघ गया, जिसने सोने की लंका को जला कर राख कर दिया। खबरदार, होशियार, जो कोई मेरे सामने आया। मैं हूँ पवनपुत्र हनुमान।

ऊषा : (खिलखिलाकर) माँ, माँ, ज़रा देखो ना। सुनील ने अपनी क्या दशा बनाई है। तुम्हारी लिपस्टिक से अपना मुँह रंग कर, और तुम्हारे रेशमी पराँदे की लंबी पूँछ लगा कर···

शीला : हाय-हाय, सुनील यह क्या किया ! राम जाने यह छुट्टी का दिन क्यों आ जाता है ! सब को छुट्टी मिलती है, और मेरी···

पड़ोसिन : बहू, मैंने कहा, अरी बहू, किधर गई। ले मैं आ गई। मैंने कहा आज जाकर बहू से जम्पर काटना सीख आऊँ। छुट्टी का दिन है···

(नेपथ्य में बच्चों की खिलखिलाहट, लो, सतीश कॉल तुम्हारी है, बीबी जी वो महरी···के मिले-जुले स्वर)

हीरक हार

पात्र

चन्दा : एक रूपवती नवयुवती
निर्मल : चन्दा का नवयुवक पति
रजनी : चन्दा की समवयस्क सहेली
छमिया : चन्दा की नौकरानी

आधार

इस एकांकी की रचना, विख्यात कहानी-लेखक मोपासाँ की कहानी 'द डायमंड नैकलेस' के आधार पर की गई है।

पात्र-परिचय

चन्दा

दरिद्र पिता के घर जन्म लेने वाली इस कन्या ने अतुलित रूप-यौवन की निधि पाई है। अपने अन्तरतम में उसने सुनहले सपनों के अगणित हीरक-हार सँजोये थे, किन्तु जीवन-चक्र ने उसका भाग्य, उसके समवर्गीय युवक के संग बाँध दिया। नये घर में उसे सब कुछ मिला—पति का स्नेह, सुख तथा आराम, फिर भी क्या वह सुखी रह सकी? नहीं। जिस रूप-यौवन के कारण उसकी आकांक्षायें इतनी बढ़ गई थीं, वही सौन्दर्य उन्हीं आकांक्षाओं की तृप्ति खोजने के कारण दबकर कुचल गया। किन्तु वह जीवन से नहीं घबराई। मुसीबतों से घबराकर उसने सिसकियाँ नहीं भरीं। अपने चरित्र की दृढ़ता से उन सभी पर विजय पाकर, उसने जीवन के नये क्षेत्र में कदम रखने की तैयारी की।

रजनी

चन्दा की समवयस्क सहेली है। किन्तु उसके व्यवहार में प्रौढ़ता तथा समझदारी की छाप है। वह चन्दा के समान दीन परिस्थितियों में नहीं पली। उसकी सभी आकांक्षायें तुरन्त पूरी की गईं। अभाव किसे कहते हैं, यह उसे पता नहीं। किन्तु उसके मन में अपने धन का अभिमान नहीं। अपनी सहेली से उसे वास्तव में सच्चा-स्नेह है। भिन्न परिस्थिति होने के कारण, वह उसके कष्टों को समझ नहीं पाती, फिर भी समवेदना, तथा सहायता द्वारा, उन्हें दूर करने की पूरी कोशिश करती है।

निर्मल

मध्यवर्गीय घराने का प्रतिभाशाली नवयुवक है। अपनी योग्यता के बल से वह नौकरी पा गया है, और उसी में मस्त रहकर जीवन बिता देना चाहता है। वह सीधा-सादा-सा नवयुवक है। उसके शौक भी साधारण-से हैं। उसके प्रफुल्ल अन्तःकरण में निरन्तर हँसी की अजस्र धारा बहती

रहती है। उसका शुभ्र हृदय स्नेह, ममता तथा समवेदना का अडिग केन्द्र है। अपनी पत्नी के प्रति उसे असीम प्रेम है, और उसके लिए बड़े से बड़ा बलिदान कर देना भी उसके लिए ऐसा ही है, जैसे कोई राह में पड़ी कंकरी को ठोकर मारकर आगे बढ़ जाये।

छमिया

चतुर, कुशल सेविका है। ज़बान उसकी कुछ तेज़ अवश्य है, पर यह उसके स्वभाव का दोष नहीं। दिन-रात, नये-नये मालिकों से अकारण ही धमकी खाने के कारण शायद उसे कुछ अधिक बोलने का अभ्यास पड़ गया है। उसके हृदय में सेवा तथा ममता के अपूर्व भाव हैं। वह अपने कर्तव्य को पहचानती है, तथा उसे समुचित रूप से पूर्ण करते समय, अपने मालिकों के सम्मान को अक्षुण्ण रखना भी उसे आता है।

हीरक हार

(रेडियो बज रहा है।)

चन्दा : निर्मल ?

निर्मल : हूँ।

चन्दा : ऐसे नहीं। पहले यह रेडियो बन्द कर दो, तब सुनो।

निर्मल : कानों में तुम्हारी बोली पड़ते ही रेडियो की आवाज़ खुद ही फीकी पड़ जाती है, चन्दा। उसमें तुम्हारी मधुर वाणी जैसी मिठास कहाँ !

चन्दा : हटो ! तुम बड़े नटखट हो !

निर्मल : और तुम बड़ी सीधी हो ?

(दोनों हँस पड़ते हैं।)

चन्दा : निर्मल, आज सिनेमा चलो न।

निर्मल : नहीं, चन्दा। मुझे तो सिनेमा में बिलकुल मज़ा नहीं आता। वहाँ अंधेरे में तुम्हारा यह खूबसूरत चेहरा···

चन्दा : हटो ··फिर वही पुरानी बात ?

निर्मल : पुरानी बात कैसे ? अभी तो हमारे विवाह को कुल आठ ही महीने हुए हैं।

चन्दा : तब तो तुम्हें मेरी खुशी का और भी ज्यादा खयाल रखना चाहिए।

निर्मल : क्या मैं तुम्हारी खुशी का खयाल नहीं रखता, चन्दा ?

चन्दा : यह मैंने कब कहा ?

निर्मल : अभी तो कह रही थीं।

चन्दा : (हँसकर) बातों में भुलाकर बात उड़ा देना चाहते हो ? नहीं, आज तुम्हें सिनेमा चलना ही होगा।

निर्मल : बेगम साहिबा हुक्म देंगी, तो खादिम को मानना ही

होगा ।

चन्दा : ओह ! निर्मल ! कितने अच्छे हो तुम !

निर्मल : सच ? अच्छा तो तुम झट से मेज़ पर चाय लगवाओ। मैं तब तक हाथ-मुँह धोकर आता हूँ ।

चन्दा : (पुकारकर) छमिया, अरी ओ छमिया···

छमिया : (कहीं दूर से) जी, आई मालकिन ।

चन्दा : देखो चाय लगाओ झटपट । नाश्ते में क्या बनाया है ?

छमिया : जी, मठरी हैं । बनाया तो कुछ नहीं ।

चन्दा : (खीझकर) क्यों नहीं बनाया । मैंने अंडे के सैण्ड-विच बनाने के लिए कहा था न ?

छमिया : जी, दाल भी तो लानी थी, और डबल रोटी भी खतम हो गई थी, अंडे के लिए पैसे ही नहीं बचे ।

चन्दा : बचते कैसे ? जिस चीज़ के लिए मैं कहूँ, उसके लिए कभी पैसे बच सकते हैं ? दोनों समय वही खाली चाय और वही···

निर्मल : (गुनगुनाते हुए आता है।) हलो, डार्लिंग ! आ गई चाय ? अरे ! यह क्या ? तुम्हारे खूबसूरत गालों पर यह गुस्से की सुर्खी ? इन काजल काली आँखों में···

चन्दा : हटो, हमें अच्छा नहीं लगता ।

निर्मल : क्या नहीं अच्छा लगता ? मेरी बातें ?

चन्दा : कैसी बात बोलते हो ! तुम्हारी बातों के सहारे ही तो ज़िन्दा हूँ । धन नहीं, दौलत नहीं, आराम की ज़िन्दगी बिताने के साधन नहीं । ऐसे में···

निर्मल : पगली ! (हँसता है ।)

चन्दा : (विस्मय से) क्यों ? पगली क्यों ?

निर्मल : और नहीं तो क्या ! अरी बावरी, सुख-चैन, धन-दौलत में नहीं, मन के सन्तोष में है । मन में सन्तोष न हो तो

सोने के सिंहासन पर भी नींद नहीं आती। और मन में सन्तोष हो तो काँटों के बिछावन पर भी नीद नहीं टूटती।

चन्दा : बातों में तुमसे कभी जीत सकी हूँ, जो आज जीत सकूगी ?

निर्मल : (हलके हँसकर) मान गईं न ? अच्छा तो आओ, चाय पी लें। फिर चलेंगे।

चन्दा : आओ···बैठो···बैठो न। खड़े क्यों रह गये ?

निर्मल : ऐसे नहीं। पहले तुम हँस दो। हँसो, एक बार···नही हँसोगी ?

चन्दा : नही।

निर्मल : अच्छी बात है। फिर न कहना। देखो वह हँसी तुम्हारे घने घुँघराले बालों पर खेल रही है। वह देखो, वह धीरे से चल दी। अब वह तुम्हारे माथे पर आ गई··· आँखों में आई···वह नाक पर आई···वह गालों पर चढ़ी, और

[चन्दा एकदम हँस पड़ती है। निर्मल भी हँसता है। उनकी हँसी हलके संगीत में डूब जाती है। दृश्य-परिवर्तन]

चन्दा : छमिया, ये दोनों चादरें उतारकर लान्ड्री में दे आओ।

छमिया : घर पर धोने से ही काम चल जायेगा, मालकिन। लान्ड्री का बिल बढ़ जायेगा तो मालिक नाराज़ होंगे।

चन्दा : उफ़ ! तुम और तुम्हारे मालिक ! तुम दोनों को पैसे के सिवा कभी कुछ और भी बात सूझती है।

छमिया : मालकिन, आपको तो किसी नवाब या राजा के बेटे से शादी करनी थी।

चन्दा : (क्रोध से) ज़बान सँभालकर बोल। जानती है, मैं

अभी तुझे नौकरी से निकाल सकती हूं ?

[दरवाज़े की घंटी बजने की आवाज़]

छमिया : निकाल दीजिये न। इतनी सस्ती नौकरानी दूसरी नहीं मिलेगी। वह तो मैं ही हूँ जो पड़ी हुई हूँ। और कोई होती, तो···

[घन्टी फिर बजती है।]

चन्दा : जा, जा, देख, दरवाज़ा खोल। कोई आया है।

[छमिया जाती है।]

चन्दा : क्या नखरे हैं! एक काम करेगी, पचास बात बनायेगी। आने दो आज निर्मल को। अरे! वाह! रजनी, तुम [illegible] आओ, आओ। आज कैसे रास्ता भूल गईं ?

रजनी : तुम्हें तो अपने पतिदेव से छुट्टी ही नहीं मिलती, [illegible] कहा—मैं ही नई-नवेली दुलहिन के हाल-च[illegible] पूछ आऊँ।

चन्दा : चल, हट।

[दोनों हँसती हैं।]

रजनी : और सुनाओ सखी, क्या हाल-चाल हैं!

चन्दा : तू ही अच्छी रही, रजनी। मैं तो इस फन्दे में फँसकर पछता रही हूँ।

रजनी : क्यों री! क्या निर्मल तुझे प्यार नहीं करता ?

चन्दा : नहीं, यह बात नहीं। उनका बस चले तो वह मुझे फूलों में छिपाकर बैठा दें। पर तू तो जानती है, सैक्रेटेरियेट में मामूली क्लर्क हैं। इतना पैसा कहाँ, जो···

रजनी : उन्नति करने में समय लगता है, चन्दा। इन्सान अपनी मुट्ठी में दौलत लेकर जन्म नहीं लेता।

चन्दा : लेकिन कुछ लोग जन्म से ही दौलतमन्द होते हैं। उन्हें

कभी किसी वस्तु की कमी महसूस नहीं होती ।

रजनी : तुझे किस बात की कमी है ? सभी कुछ तो है तेरे पास । अपना एक छोटा-सा घर, योग्य-सुशील पति···

चन्दा : मुझे तो कॉलेज के वे दिन याद आते हैं । कितने मज़े के दिन थे वो ! बस, पढ़ना, खाना-खेलना, और मीठे-मीठे सपने देखना । काश, वे सपने सच हो जाते !

रजनी : तो अभी कौन-सी ज़िन्दगी बीत गई ? सपने पूरे होने के दिन तो अब आए हैं ।

चन्दा : सोचा करती थी—एक आलीशान घर होगा; सुन्दर-सी मोटर होगी; नये कीमती कपड़े पहन, हम रोज़ शाम-सवेरे सैर को जाया करेंगे । घर लौटते ही नौकर सेवा में तैयार खड़े मिलेंगे । आलीशान डाइनिंग टेबिल पर, सोने-चाँदी के बर्तनों में, दोस्तों को दावतें दिया करूँगी । लेकिन, कहाँ ! कुछ भी तो नहीं हुआ ? यह छोटा-सा घर, यह किराये का फर्नीचर, ये पुराने पर्दे···

रजनी : मन में इतने ही अरमान थे, तो तू ने किसी दौलतमन्द से विवाह क्यों नहीं किया ? किसी नवाब या राजा के बेटे से, जो तुझे···

चन्दा : (खिन्न हँसी हँसकर) मैं, गरीब की बेटी ? मेरी ऐसी किस्मत कहाँ कि कोई रईसज़ादा मेरी तरफ़ आँख उठाकर देखता ।

रजनी : क्यों नहीं ! यह बला की खूबसूरती, जो तू परियों के दामन से चुरा लाई है, इसके पीछे कौन दीवाना न हो जाता ?

चन्दा : वह सब कहानी-किस्सों की बातें हैं, रजनी ! किस्मत ने मुझे 'सिन्ड्रैला' बनाया, लेकिन मेरे लिए किसी राज-कुमार को जन्म न दिया । (रोती है ।)

रजनी : अरे, रे ! तू रोती है ? नादान ! रोने से फूलभरी ज़िन्दगी में भी काँटे उठ खड़े होते हैं। आ, चल। हैंगिग गार्डेन घूमने चलें। उठ, अब उठती है कि लगाऊँ एक चपत ?

[चन्दा रोते-रोते हँस पड़ती है। हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन।]

निर्मल : (पुकारते हुए आता है।) चन्दा, चन्दा···चन्दा,··· देखो, आज मैं तुम्हारे लिए क्या लाया।

चन्दा : क्या है, दिखाओ।

निर्मल : उहूँ, ऐसे नहीं दूँगा। पहले बोलो, बताओ।

चन्दा : (अधीर भाव से) दिखा दो, निर्मल। परेशान न करो।

निर्मल : नहीं, ऐसी आसानी से नहीं मिलेगा। पहले···

चन्दा : न दो तुम। मैं छीन लूँगी।

निर्मल : अरे ! अरे ! क्या करती हो ? ठहरो, देखो, फट न जाए···

चन्दा : यह क्या ! सिर्फ पार्टी का इन्वीटेशन ? हुँह !

निर्मल : (विस्मित हो) फेंक दिया ? तुम्हें ज़रा भी खुशी नहीं हुई ? और मैं सोचता आ रहा था कि इसे देखते ही तुम्हारी आँखों में खुशियों के बादल नाच उठेंगे।

चन्दा : (खिन्न स्वर में) बड़ी भारी खुशी की बात है ना ?

निर्मल : (विस्मय से) खुशी की बात नहीं है ? चीफ सैक्रेटरी ने पार्टी दी है। बड़े सौभाग्य से यह निमंत्रण मिल पाता है। कितनी मुश्किल से, कितनी कोशिशों से, यह हाथ लग सका था। सोचा था···

चन्दा : सोचा तो होगा ही। लेकिन यह भी सोचा कि इतनी शानदार पार्टी में मैं क्या पहनकर जाऊँगी ?

निर्मल : क्यों वह तुम्हारी शादी वाली ज़री के तार की साड़ी···

चन्दा : वह ? (अवज्ञा से हँसती है।)

निर्मल : मेरी समझ में तो इस मौके पर वह बड़ी शानदार लगेगी।

चन्दा : रहने दो। जाओ। यह निमंत्रण अपने किसी मित्र को दे आओ। खुश हो जाएगा बेचारा।

निर्मल : (आहत स्वर में) तो तुम्हें वह साड़ी पसन्द नहीं।

चन्दा : ज़रा तो समझने की कोशिश करो, निर्मल ! वहाँ बड़े-बड़े अफ़सरों की पत्नियाँ आएँगी, एक से एक नये फ़ैशन की साड़ियाँ पहनकर। वहाँ उनके बीच में, मैं वह पुराने ढंग की लाल साड़ी··· (आँखों में आँसू भर आते हैं।)

निर्मल : अरे ! अरे ! इतनी-सी बात के लिए आँखों में आँसू ? ऐसा ही है, तो चलो, तुम एक नई साड़ी खरीद लो न।

चन्दा : नई साड़ी ! उसके लिए पैसा कहाँ है ?

निर्मल : पैसा हो जाएगा। तुम्हें मालूम है, इस वर्ष मित्रों के साथ लोनावाला जाने के लिए मैंने कुछ पैसे जमा किये थे। बोलो, तुम्हें कितना चाहिए।

चन्दा : परन्तु फिर तुम लोनावाला कैसे जा सकोगे ? कितने वर्षों से तो तुम लोगों का प्रोग्राम बन रहा है ?

निर्मल : तुम्हारे अरमानों के आगे, मेरी नाउम्मीदी की कोई क़ीमत नहीं। तुम्हारी खुशी में ही मेरी खुशी है, चन्दा। चलो।

चन्दा : ओह ! तुम कितने अच्छे हो, निर्मल !

निर्मल : उठो, उठो, अब देर न करो।

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन।]

[करुण संगीत]

निर्मल : चन्दा, शायद मैं तुम्हें कभी भी न समझ सकूँ···।

चन्दा : क्यों ?

निर्मल : सोचा था—नई साड़ी खरीदने के बाद तो तुम खुश हो जाओगी, तुम्हारी इन उदास आँखों में हँसी की चमक आ जाएगी। लेकिन···

चन्दा : तुम सच कहते हो, निर्मल ! मैं भी खुश होना चाहती हूँ, लेकिन हो नहीं पाती।

निर्मल : (विस्मित हो) क्यों ?

चन्दा : तनिक देखो—यह साड़ी कितनी सुन्दर है, कितनी शानदार, किन्तु इसके संग पहनने के लिए मेरे पास कोई भी आभूषण नहीं !

निर्मल : (हँसकर) बस ! इतनी-सी बात ? रजनी तो तुम्हारी सहेली है न ? उसके पास तो अलमारी भर आभूषण होंगे।

चन्दा : अरे, हाँ ! रजनी ? उसकी तो मुझे याद ही नहीं थी ! किन्तु क्या उससे कुछ माँगना ठीक होगा ?

निर्मल : क्यों नहीं ? आखिर वह तुम्हारी बचपन की सहेली है।

चन्दा : हाँ। ठीक है। तुम्हारी बात सच है, निर्मल। मैं आज ही उसके पास जाऊँगी। कल ही तो पार्टी का दिन है।

निर्मल : हाँ, कल ही पार्टी का दिन है। वहाँ पार्टी में तुम शान से बड़े-बड़े अफसरों के संग अंग्रेज़ी नृत्य करना। पास वाले कमरे में, अकेले बैठ मैं खामोशी से तुम्हें देखता रहूँगा।

चन्दा : क्यों, अकेले क्यों ! तुम भी नृत्य करना।

निर्मल : नहीं, मुझे और किसी के साथ नृत्य करना पसन्द नहीं। जब से तुम्हें देखा है, और किसी पर मेरी नज़र ही नहीं ठहरती। कुन्दकली से सलोने ये सुकोमल हाथ, ये गहरी झील-सी आँखें, घिरती घटाओं-से ये घने घुँघराले

बाल ··

चन्दा : (लज्जित स्वर में) हटो, कैसी बातें बोलते हो !

निर्मल : (हँसकर) झूठ तो नहीं कहता ।

चन्दा : जाओ, बड़े आए सच कहने वाले !

[दोनों हँसते हैं । हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन ।]

चन्दा : ओह ! निर्मल ! कितनी शानदार थी पार्टी !

निर्मल : (जम्हाई लेकर, थकित स्वर में) थकीं नहीं तुम ? सवेरे के चार बजने वाले हैं ।

चन्दा : जानते हो, तुम्हारे वो चीफ सैक्रेटरी हैं न, वो भी मेरा परिचय पूछ रहे थे ।

निर्मल : क्यों न पूछते ? मामूली इन्सानों के बीच यकायक कोई परियों की रानी पहुँच जाये तो सभी के नेत्र चकाचौंध हो ही जायेंगे ।

चन्दा : जाओ ! तुम्हें तो हर समय यही बातें सूझती हैं ।

निर्मल : (मुस्कराकर) झूठ तो नहीं कहता ?

चन्दा : (लज्जित स्वर में) हटो ! बड़ आये सच कहने वाले ।

[दोनों हँसते हैं ।]

निर्मल : (जम्हाई लेकर) ओह ! कैसी नींद आ रही है ! अभी ऑफिस जाने का समय हो जायेगा ।

चन्दा : और सुनो, कर्नल रमेश ने कहा···

निर्मल : अब बातें ही करती रहोगी ! सो जाओ । सुबह मुझे काम पर जाना है ।

चन्दा : इस कण्ठहार ने तो वास्तव में कमाल ही कर दिया ! सभी की निगाहें विस्मय और प्रशंसा से इसी पर टिकी हुई थीं । श्रीमती नटराजन ने तो कहा···

निर्मल : इधर की रोशनी बन्द कर दो, चन्दा ! मेरी आँखें तो नींद से बन्द हुई जा रही हैं ।

चन्दा : निर्मल ! बहुत थक गये तुम ? अच्छा, मैं झटपट वस्त्र बदलकर आती हूँ। बस एक बार···

निर्मल : (गहरी जम्हाई लेकर) फिर एक बार क्या ?

चन्दा : एक बार और दर्पण के सम्मुख खड़े होकर इस कण्ठ-हार की शोभा निरख लूँ। सिर्फ एक बार और···हाय! (एकदम चीख उठती है।)

निर्मल : (और अधिक घबराकर) क्या है, चन्दा ? क्या बात हुई ?

चन्दा : वह हीरे का कण्ठहार ! वह···वह मेरे गले में नहीं है, निर्मल।

निर्मल : (और अधिक घबराकर) यह तुम क्या कह रही हो!

चन्दा : (आँसू भरे स्वर में) देखो···देखो, मेरा गला। यह सूना है।

निर्मल : बस ! इतनी-सी बात के लिए आँखों में आँसू भर लाईं ? देखो तो, कहीं साड़ी की सलवटों में उलझ गया होगा। जायेगा कहाँ !

चन्दा : नहीं, नहीं, वह कहीं भी नहीं है। वह कहीं गिर गया। खो गया। हाय ! अब मैं क्या करूँ ! अब मैं रजनी से क्या कहूँगी···मैं···

निर्मल : घबराओ मत, चन्दा। मैं अभी जाता हूँ।

चन्दा : ठहरो, तुम कहाँ जाओगे ?

निर्मल : हटो, चन्दा। छोड़ दो मुझे।

चन्दा : कहाँ जाओगे ? इस अँधियारी भयानक रात में, इस वर्षा और तूफ़ान में। वह न जाने कहाँ गिरा होगा··· डाईनिंग-रूम में, डांसिंग हाल में, सड़क पर, या उस घोड़ागाड़ी में···

निर्मल : वह कहीं भी क्यों न गिरा हो, मैं उसे खोज कर ही

लाऊँगा।

चन्दा : (चीखकर) निर्मल···

निर्मल : धीरज रखो। मैं जा रहा हूँ।

[द्वार खुलने की ध्वनि। आँधी-तूफ़ान का शोर। हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

चन्दा : (वेदनाभरे स्वर में) नहीं मिला ?

निर्मल : (थकित स्वर में) नहीं। घोड़ागाड़ी का नम्बर तुम्हें याद है ?

चन्दा : (हताश भाव से) नहीं।

निर्मल : तिल-तिल धरती छान डाली। कहीं भी तो नहीं छोड़ा। उस घोड़ागाड़ी का पता लग जाता तो···

चन्दा : अब क्या होगा, निर्मल ?

निर्मल : घबराती क्यों हो ? अखबारों में विज्ञापन देंगे। पुलिस में खबर करायेंगे। कहीं न कहीं, कुछ न कुछ पता लगेगा ही।

चन्दा : और इस बीच यदि रजनी ने उसे वापस माँग लिया तो ?

निर्मल : तो, उससे कह देना··· (रुक जाता है।)

चन्दा : क्या ? क्या कह दूँगी ? बोलो, निर्मल। मेरी तो साँस मानो रुक रही है।

निर्मल : (गम्भीर स्वर में) ऐसा करो। तुम उसे एक पत्र लिख दो कि कण्ठहार का पेच टूट गया है। तुम ने उसे ठीक कराने के लिए सुनार को दिया है। तीन-चार दिन में मिल जाएगा, तब वापस कर दोगी।

चन्दा : लेकिन अगर तीन-चार दिन में न मिला, तो ?

निर्मल : इतनी दूर की बात, अभी से सोचने से क्या लाभ है, चन्दा !

चन्दा : नहीं, तुम बोलो, बताओ, मुझे विश्वास नहीं होता कि अब वह मिल सकेगा।

निर्मल : (दृढ़ स्वर में) वह कण्ठहार मिले या न मिले किन्तु तुम्हारी सहेली को कण्ठहार अवश्य मिल जायेगा।

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

[चाय के प्लेट-प्यालों की खनकती ध्वनि]

रजनी : (अभियोग-भरे स्वर में) कितने दिन लगा दिये, चन्दा! इस बीच ऐसा अवसर भी तो आ सकता था कि मुझे इस कण्ठहार की ज़रूरत पड़ जाती।

चन्दा : हाँ, सखी। लौटाने में कुछ देर तो अवश्य हो गई। मैं ने तुम्हें लिखा था न, यदि इसका पेच न टूट गया होता तो मैं अगले दिन ही इसे वापस कर जाती।

रजनी : कोई बात नहीं। मैं ने तो ऐसे ही कहा। अरे! बातों-बातों में तेरी चाय तो ठंडी हो गई! ठहर, मैं दूसरा प्याला मँगाती हूँ।

चन्दा : नहीं। अब मैं जाऊँगी।

रजनी : अरी, बैठ भी। ऐसी भी क्या जल्दी है। अभी मोटर मँगवाती हूँ। हैंगिग गार्डेन घूमने चलेंगे।

चन्दा : नहीं, रजनी, अब जाने दे। मुझे घर पर कुछ काम है।

रजनी : घर पर काम है? और तुझ? (हँसती है।) मुझसे भी चालाकी!

चन्दा : सच कहती हूँ, सखी। मैं झूठ नहीं बोलती।

रजनी : चल, हट, रहने दे। आज तक तूने कभी कुछ काम किया है, जो आज करेगी?

चन्दा : सच कहती हूँ, आज बड़ा काम है। मकान बदलना है। सब सामान बाँधना है।

रजनी : क्यों? क्या और कोई अच्छा मकान मिल गया है?

चन्दा : हाँ, खूब हवादार है। पहले वाले से कहीं अधिक अच्छा है।

रजनी : अरी ठहर, यह तो बताती जा। है कहाँ, किस तरफ ?

चन्दा : (घबराये से स्वर में) ऐसे तुझे पता नहीं लगेगा। किसी दिन मैं स्वयं आकर तुझे अपने साथ ले जाऊँगी।

रजनी : केवल ले ही जायेगी ? नया मकान मिलने की खुशी में दावत नहीं खिलायेगी ?

चन्दा : क्यों नहीं, ज़रूर।

रजनी : देख, मैं अभी से कहे देती हूँ, मेरे लिये पिस्ते की बर्फी अवश्य बनाना, नहीं तो···

चन्दा : नहीं तो, तू भूखी ही रह जायेगी ? है ना ?

[दोनों हँसती हैं।]

चन्दा : अच्छा, सखी, अब मैं जाती हूँ। विदा !

रजनी : विदा, क्यों ? फिर मिलेंगे।

चन्दा : हाँ, हाँ, सो तो मिलेंगे ही··· (जाते पैरों की ध्वनि)

रजनी : भाग गई ? कितना शैशव है इसके सुकुमार भोले मन में ! कितने हीरक-हार सजा रखे हैं, इसने अपने सुनहले स्वप्नों में ! लगता है, अब उनके सच ही कण्ठ में झूलने के दिन आये हैं। अब वास्तव में उसके दिन फिरे हैं···

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

[नल की बहती धारा का स्वर। कपड़े धोने की आवाज़, बर्तनों की खटपट]

चन्दा : उफ़ ! घर के ये काम कभी खतम नहीं होते ! एक से छुट्टी मिली नहीं कि दूसरा सिर पर सवार। काम करते-करते शरीर चकनाचूर हो जाता है, हिम्मत जवाब देने लगती है, पर चैन नहीं मिलता। छमिया के

ऊपर मैं बेकार गुस्सा हुआ करती थी। उस दिन, नौकरी छोड़कर जाते समय, बेचारी की आँखों में आँसू भर आये थे।

[धीरे-धीरे बर्तन धोकर रखती है।]

चन्दा : वो दिन भी कितने अच्छे थे! अच्छा खाते थे, साफ पहनते थे। संध्या को इधर-उधर सैर कर आते थे। सैर करना तो दूर, अब तो साँस लेने की भी फुरसत नहीं मिलती। बेचारा निर्मल! दिन-रात खून-पसीना एक कर देने पर भी, कर्ज़ का बोझ शैतान की तरह सिर पर सवार है। और यह सब मेरे कारण से···सब कुछ केवल मेरी ही वजह से···(धीरे-धीरे सिसकती है।)

[कोई द्वार खटखटाता है।]

रजनी : उफ़! क़िस्मत, तूने हँसने नहीं दिया, अब जी भरकर रोने भी नहीं देती। देखूँ, कौन है!

[द्वार खुलने का शब्द]

चन्दा : ओह! छमिया, तू है? आ।

छमिया : कहो, मालकिन, कैसी हो?

चन्दा : फिर तूने मुझे मालकिन कहा!

छमिया : तब और क्या कहूँ? मालकिन तो आप हैं ही।

चन्दा : नहीं। आज मुझ में और तुझमें कोई अन्तर नहीं। पैसे ने जो दीवार हम दोनों के बीच खड़ी कर दी थी, वह कभी की टूट चुकी है। अब हम दोनों बराबर हैं।

छमिया : नहीं, मालकिन, मैं तुम्हारी बराबरी कभी नहीं कर सकती। दुःख के ये दिन देखते-देखते बीत जायेंगे। एक बार फिर तुम मकान बदलोगी। किसी ऊँची कोठी में···

चन्दा : ये सब सपने हैं, छमिया। अब मैंने सपने देखना छोड़ दिया है।

छमिया : तुम अपने को धोखा दे रही हो, मालकिन! जब तक इंसान की साँस ज़िन्दा रहती है, तब तक वह सपने देखना नहीं छोड़ सकता। जिस दिन सपने देखना छोड़ दोगी, उस दिन तुम भी ज़िन्दा नहीं रह सकोगी।

चन्दा : तू सच कहती है, छमिया। आज भी मुझे वह रात याद आती है, कितनी मधुर थी, मेरे जीवन की वह सुनहरी रात, और कितने तूफानों से भर कर निकली उसकी वह अँधियारी भोर! काश! उस रात मैं उस पार्टी में न गई होती··· (धीरे से रोती है।)

छमिया : रोने से क्या होगा, मालकिन? धीरज से काम लो।

चन्दा : धीरज की भी एक सीमा होती है, छमिया। धीरज रखते नौ वर्ष बीत गये। नौ लम्बे वर्ष! काश! उस दिन वह कण्ठहार न खोया होता! (धीरे से सिसकती है।)

छमिया : मालकिन!

चन्दा : छमिया, यदि उस दिन कण्ठहार न खोया होता, तो क्या होता?

छमिया : क्या होता, मालकिन?

चन्दा : उस दिन कितने नये लोगों से मेरा परिचय हुआ था! कितने पदाधिकारियों और अफसरों ने मुझे अपने घर आमंत्रित किया था। मैं उनके घर जाती। अन्य बड़े लोगों से परिचय होता। निर्मल को कोई ऊँची नौकरी मिल जाती। दौलत से घर भर जाता। हमारी ज़िंदगी में खुशियाँ बरस पड़तीं। किन्तु यह सब कुछ नहीं हुआ। केवल इस कारण कि उस कण्ठहार का पेच

शायद ढीला था ।

छमिया : आगे की बात सोचिये, मालकिन। पीछे की बात सोचने से क्या लाभ है ?

चन्दा : पीछे की वह एक ही बात आगे की सारी ज़िन्दगी में काँटे बो रही है। सारी बम्बई छान डालने पर, अन्त में एक दुकान पर वैसा कण्ठहार मिला भी, तो उसका मूल्य सुनकर हमारे होश उड़ गये···चालीस हज़ार रुपये···

छमिया : न सोचिये, मालकिन !

चन्दा : निर्मल के पिता कुल पाँच सौ रुपये छोड़ गये थे। मेरे हाथ एकदम खाली थे। बैंक से उधार लिया। मित्रों से कर्ज़ा लिया। किसी से दस, किसी से पन्द्रह, किसी से पाँच। प्रोनोट लिखे। कण्ठहार खरीदकर सहेली को लौटा आई। यह नई ज़िन्दगी शुरू हुई। यह ज़िन्दगी, जो मौत से भी अधिक भयानक है।

छमिया : ऐसा न कहिए, मालकिन।

चन्दा : कैसे न कहूँ, छमिया ! अपने लिए मुझे अफ़सोस नहीं। अपनी ग़लती का मुझे उचित दण्ड मिला। लेकिन बेचारा निर्मल ! उसने क्या कसूर किया था जो उसके कमजोर कंधों पर यह भयानक भार लद गया। दिन-भर काम में जुटा रहता है। रात-भर जाग-जागकर काम करता है, शरीर दुबला पड़ गया है, आँखों के नीचे स्याही दौड़ गई है, भर-पेट खाने को नहीं मिलता, फिर भी यह कर्ज़ का भूत नहीं उतरता। मेरे कारण··· (रोती है।)

[द्वार पर खटखट होती है।]

चन्दा : देख तो, छमिया। शायद वे आ गये।

निर्मल : हलो डार्लिंग ! देखो,आज मैंतुम्हारे लिएक्यालाया ?

चन्दा : ओह ! मेरे लिए ? देखूँ, देखूँ ।

निर्मल : उहूँ ! ऐसे नहीं । पहले बताओ, क्या है ।

चन्दा : न बताओ । मैं क्या छीन नहीं सकती ?

निर्मल : अरे ! अरे ! क्या करती हो ? ठहरो ।

चन्दा : ओह ! फूल ! कितने सुन्दर, कितने प्यारे ! तुम··· तुम कितने अच्छे हो, निर्मल !

निर्मल : सच ! और तुम ?

चन्दा : निर्मल, एक बात कहूँ ? देखो, बुरा न मानना ।

निर्मल : तुम्हारी बात का बुरा मानूँगा ? और मैं ? (हँसकर) बावरी !

चन्दा : क्यों तुम यों बेकार में पैसा बरबाद करते हो ! इन पैसों से···

निर्मल : हुँह ! कितने पैसे ? कुल छः पैसे ही तो खर्च हुए ।

चन्दा : ऐसे-ऐसे दो छः पैसे मिलाकर तीन आने बन सकते थे । उन तीन आनों से तुम्हारे लिए···

निर्मल : एक मक्खन की टिकिया आ सकती थी ? यही न ?

चन्दा : तुम मेरे मुँह की बात क्यों छीन लेते हो, जी ! कौन-सी आदत है यह तुम्हारी ?

निर्मल : क्या यह कोई नई आदत है ?

चन्दा : नहीं । बहुत पुरानी है । यह मुझे भी सिखा दो न, निर्मल !

निर्मल : अब तो तुम भी सीख गई हो ।

चन्दा : सच !

[दोनों हँसते हैं । हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

[चन्दा और निर्मल की सम्मिलित हँसी संगीत में से उभरती है ।]

निर्मल : हूँ ! बहुत खुश नज़र आ रही हो आज !

चन्दा : क्यों नहीं ?

निर्मल : क्यों जी, हम भी तो सुनें, ऐसी क्या खास बात है ?

चन्दा : खास बात तो है ही । आज ही तो वास्तव में मेरे जीवन में हँसने का दिन आया है ।

निर्मल : सो कैसे ?

चन्दा : आजकल तुम कर्ज़ का आखिरी पैसा जो चुकाने जा रहे हो ।

निर्मल : सच है, चन्दा । आज की यह रात ही आखिरी रात है । कल से हमारे जीवन की नई भोर का उदय होगा ।

चन्दा : हाँ, कल से हम दुनिया वालों के सामने सिर ऊँचा कर आजादी से चल सकेंगे । रात के वह दोनों ट्यूशन और प्रूफ़रीडरी का काम कल से तुमको छोड़ देना होगा ।

निर्मल : नहीं, डार्लिंग, ये काम तो न छूट सकेंगे ।

चन्दा : क्यों, फिर कौन-सा कर्जा शेष रह जायेगा जिसे पूरा करने के लिए तुम्हें तन-मन सुखाकर पैसा कमाना होगा ।

निर्मल : तुम्हारे अधूरे सपनों को पूरा करने की ज़िम्मेदारी मेरी ही है,चन्दा ! इतने दिन दारुण अभाव में, तुमने जो कष्ट सहे, मुख से एक उफ़ तक निकाले बिना, जो इतनी मुसीबतों को झेल लिया, उसके बदले, क्या मैं···

चन्दा : क्या तुम मेरी एक तनिक-सी इच्छा भी पूरी न कर सकोगे ?

निर्मल : क्या ? तुम एक बार कह दो । मुझे पूरा करने में देर न लगेगी ।

चन्दा : वादा करते हो ?

निर्मल : बिलकुल जी. एकदम ।

चन्दा : तो कहो कि कल से मैं सब अतिरिक्त काम छोड़ दूँगा।

निर्मल : परन्तु चन्दा···

चन्दा : अब किन्तु परन्तु कुछ नहीं। तुम वादा कर चुके हो। तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत विनष्ट हो चुका। अब मैं तुम्हें कदापि इतना काम न करने दूँगी।

निर्मल : स्वास्थ्य बना रह सके, इसके लिए ही तो मुझे काम करना होगा, चन्दा।

चन्दा : देखो जी, मुझे बातों में भुलाने की कोशिश न करो। मैं कहे देती हूँ, मैं···

निर्मल : अपना हाथ इधर लाओ। चन्दा। देखो, तुम्हारी ये नाजुक पतली-पतली उँगलियाँ कैसी खुरदुरी हो गई हैं! तुम्हारे गुलाबी गालों पर पीलापन छा गया है।

चन्दा : निर्मल!···

निर्मल : मेरे पास पैसा नहीं था, इसलिये बुढ़ापा बेवक्त जीतने की कोशिश करने लगा है, चन्दा। लेकिन मैं उसे जीतने नहीं दूँगा। मैं फिर से तुम्हारे आराम के लिए सब सामान इकट्ठा करूँगा। फिर से तुम्हारे गालों पर सुर्खी लौट आयेगी। एक बार फिर से तुम्हारे जीवन में वह सुनहली रात आयेगी···

चन्दा : निर्मल, जाओ, देर हो जाएगी, तो बैंक बन्द हो जायेगा।

निर्मल : तुम मेरी बातों को भले ही भावुकता-भरे भावों की उड़ानें समझ लो, चन्दा, किन्तु इतना जान लो— तुम्हारा निर्मल, अब वह पहले वाला, भोला-भाला निर्मल नहीं। ज़िंदगी की ठोकरें खाकर, अब वह पैसा कमाने की रीति सीख गया है, अब वह···

चन्दा : (स्नेह-भरे स्वर में) यह क्या मैं जानती नहीं! सच

चन्दा : तुम चलो भी। मैं पीछे-पीछे आती हूँ।

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

[पार्क में होता धीमा-धीमा शोर, बच्चों की खिल-खिलाहट, पुरुषनारियों के मिले-जुले स्वर, गोला-खोपरा वाले और चने-चूड़े वालों की पुकार।]

चन्दा : वही बाग है, वैसे ही फूल खिले हैं, कुछ भी तो नहीं बदला, लेकिन ज़िन्दगी बदल गई। दस वर्ष बीत गये। अरमान धुँधले पड़ गये। खुशियाँ गरीबी में सिमट गईं, लेकिन अमीरों की इस दुनिया का सब कुछ वैसा का वैसा ही है, वही रंगीनी, वही चहल-पहल, हँसी और कहकहों का शोर।

[पार्क का शोर]

चन्दा : इस डाली का यह फूल झड़ गया है, किन्तु इस के स्थान पर नई कली खिल रही है। क्या मेरे बुझे हुए अरमानों में भी नई रोशनी जाग सकेगी ? अरे ! यह क्या ? यह कौन है ? हाँ यह अवश्य रजनी है। खूब ···खूब मिली आज। चलूँ, उससे दो बातें कर लूँ।

[पार्क का शोर]

चन्दा : रजनी आज भी बिलकुल वैसी ही है ! उसकी सुन्दर देह में आज भी वही लावण्य है ! दस वर्ष पहले की और आज की इस रजनी में कुछ भी अन्तर नहीं, किन्तु मैं ? हाँ···मैं ? नहीं, नहीं, मैं उसके सामने नहीं जाऊँगी। मेरे फटे-पुराने कपड़े देखकर वह क्या कहेगी ! दस वर्ष पूर्व उसे दावत का निमन्त्रण दिया था, वह आज भी अधूरा है। नहीं, मैं उसके पास नहीं जाऊँगी, उससे नहीं मिलूँगी। हरगिज़ नहीं।

[पार्क का शोर]

चन्दा : लेकिन क्यों? रजनी से मिलने में हानि ही क्या है! मैंने कुछ गलती नहीं की। कसूर मेरा नहीं था। आज सारा कर्ज़ चुक गया है। आज मैं आज़ाद हूँ। उसे सब कुछ बता दूँ, तो कैसा रहे! हाँ, यही ठीक है। खानदानी दौलत के पर्दे से वे अपनी इज्ज़त को ढँकते हैं। एक गरीब अपनी इज्ज़त कैसे क़ायम रखता है, यह सुनकर वह क्या कहेगी? मेरे निर्मल के लिए, उसके हृदय में, उसकी आँखों में कितनी श्रद्धा उमड़ पड़ेगी। लो··· वह तो इधर ही आ रही है। सुनो, रजनी?

रजनी : क्षमा कीजिये। आप कौन हैं, मैंने आपको पहचाना नहीं।

चन्दा : मुझे नहीं पहचाना? मैं तुम्हारे संग कॉलेज में पढ़ती थी। हम पेड़ों पर चढ़कर, संग-संग अमरूद चुराकर खाया करते थे। अध्यापिका को चकमा दे, चुपके से क्लास से भाग आया करते थे···

रजनी : समझ गई! तुम्हें चन्दा ने भेजा है। बोलो, बताओ, चन्दा कहाँ है? दस साल से मुझे उसकी खबर नहीं मिली। दस साल से···

चन्दा : अब भी नहीं पहचाना, रजनी? मैं ही तुम्हारी चन्दा हूँ।

रजनी : ओह! सखी, तू? तू कितनी बदल गई है! कहाँ गया वह रूप, वह सौन्दर्य, गुलाबी गालों की वह सुर्ख लाली, वह···

चन्दा : क्या मैं इतनी बदल गई हूँ?

रजनी : ओह! कहाँ रही तू इतने दिन? कैसे तूने अपने दिन बिताये जो आज तेरी यह दशा हो गई? बोल, बता।

चन्दा : मैं बड़ी मुसीबत में फँस गई थी, रजनी।

रजनी : कैसी मुसीबत ! तूने मुझसे क्यों नहीं कहा ? तू मेरे पास क्यों नहीं आई ? बस यही तेरा प्यार है ? इतना ही तू मुझे अपना मानती है ?

चन्दा : [हलके से हँसकर] तेरे ही कारण तो मुझपर वह मुसीबत आई सखी, फिर तेरे पास कैसे आती ?

रजनी : [अत्यन्त विस्मित हो] मेरे कारण ? सो कैसे ?

चन्दा : स्मरण है ? एक दिन मैं तुम्हारा हीरे का कण्ठहार माँगकर ले गई थी। वह कंठहार उसी रात मुझसे कहीं खो गया था।

रजनी : तेरा दिमाग़ तो ठीक है ? वह कण्ठहार तो तू मुझे चार दिन बाद ही वापस कर गई थी ?

चन्दा : तू बिल्कुल नहीं पहचान सकी थी न ? हमारी मेहनत सफल हुई।

रजनी : (और अधिक विस्मित हो) मेहनत ?

चन्दा : हाँ। बिलकुल वैसा ही दूसरा कण्ठहार खोजने में हमें कितनी कठिनाई पड़ी। बम्बई की छोटी-बड़ी सभी गलियों के जर्रे-जर्रे की खाक छान डाली, तब कहीं जाकर···

रजनी : (भयपूर्वक) चन्दा···

चन्दा : हाँ, सखी। ग़रीब थे हम। चालीस हज़ार का कर्ज़ा चुकाना हमारे लिए सहज नहीं था। किन्तु मेरे निर्मल ने यह असम्भव काम भी सम्भव कर दिखाया। आज वह कर्ज़ का अन्तिम अंश चुकाने के लिए···अरे ! यह क्या ! तेरी आँखों में आँसू ?

रजनी : (सिसककर) चन्दा, मेरी सखी, मेरी बहन···

चन्दा : क्या हुआ, रजनी ? रोती क्यों है, बावरी। जो होना था, वह हो चुका। रोने के दिन तो बीत चुके। आज

तो हँसने का दिन है, सखी।

रजनी : (रोकर)—मेरे कारण तुझे कितने दुःख उठाने पड़े! तेरी ज़िन्दगी बर्बाद हो गई!

चन्दा : ऐसा न कह, सखी! भूल तो मेरी ही थी।

रजनी : नहीं, भूल मेरी थी। मुझे तुमसे पहले ही कह देना चाहिए था।

चन्दा : क्या? क्या कह देना चाहिए था? कौन-सी बात तुझे इतना परेशान कर रही है, रजनी! (निर्मल कुछ गुनगुनाते हुए आ पहुँचता है।)

निर्मल : हल्लो, डार्लिंग। ख़ूब! आज यहाँ श्रीमती छागला भी मिल गईं! बस, दो सहेलियाँ गले मिली नहीं कि आँसू बरसने लगे! ठहरिए रजनी जी। स्नेह की इस अमूल्य निधि को धूल में न गिरने दीजिए। लीजिए इस फूल की सुनहली पंखड़ियों में समेट लीजिए।

रजनी : इतनी मुसीबतें झेल कर भी तुम लोगों की हँसी में तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा! पर मेरे मन में तो आज इतनी भी शक्ति शेष नहीं कि तुम्हारे इस सौभाग्य पर ईर्ष्या भी कर सकूँ। तुम्हारे प्रति मैंने जो अपराध किया, उसके लिए मैं कभी अपने को क्षमा न कर सकूँगी।

निर्मल : बात क्या है, रजनी जी?

रजनी : उस कंठहार का मूल्य चालीस रुपये भी नहीं था। वह नक़ली हीरों का हार था। उसका कोई भी हीरा असली नहीं था।

चन्दा : (चीख़कर) रजनी?

[रजनी सिसक-सिसककर रोती है। दूर कहीं सम्मिलित पुरुष-नारी स्वर खिलखिलाकर हँसते हैं।]

माँ, बहन और पत्नी

पात्र

मीनू : एक किशोर नवयुवती
रानी : मीनू की सहेली
हरीश : मीनू का पति
भानु : मीनू का भाई
पप्पू : मीनू का नववर्षीय पुत्र
रवि : पप्पू का बाल-मित्र

पात्र-परिचय

मीनू

विख्यात 'सुलेखा कम्पनी' के ब्रांच मैनेजर हरीश चड्ढा की पत्नी है। लगभग तीस वर्ष की अवस्था है, किन्तु अभी भी उसके मुख पर बीस वर्ष की नवयुवती का-सा सारल्य है। वेष-भूषा के प्रति वह अत्यन्त लापरवाह है, फिर भी उसके वस्त्रों से उसकी सुरुचि तथा कलात्मक हृदय का परिचय मिलता है। सदा हँसमुख, प्रसन्न तथा किसी-न-किसी काम में व्यस्त रहती है, मानो खाली बैठने में उसे कुछ कष्ट होता है।

रानी

मीनू की सहेली है। धनी-मानी घर की बेटी है, और धनी-मानी घर की वधू। अतः उसके शौक भी कुछ वैसे ही हैं। चटक गहरे रंग के वस्त्र पहनती है। ऊँची एड़ी के जूते, सुन्दर सँवारे हुए जूड़े में, बेले की कलियों का गजरा सदा सजा रहता है। वात-बात पर रूठ जाना मानो उसका जन्मसिद्ध अधिकार है।

हरीश

लगभग पैंतीस वर्ष का नवयुवक है। आँखें वड़ी-बड़ी, नाक ऊँची तथा मस्तिष्क पर उभरती रेखाएँ दृढ़ निश्चय की प्रतीक हैं। अपनी प्रतिभा तथा योग्यता से उसने जीवन में यथेष्ट उन्नति की है। फिर भी और अधिक ऊँचा उठ पाने का कोई भी अवसर वह छोड़ना नहीं चाहता।

भानु

उसकी अवस्था लगभग बत्तीस वर्ष की है, फिर भी उसके व्यवहार में अभी प्रौढ़ता की छाप नहीं आ पाई है। काम से अधिक उसे खेल पसन्द है। कालेज-जीवन में वह फ़ुटबाल टीम का कैप्टेन था। उन बीते दिनों को वह आज भी भूला नहीं है। पिता के न होने से घर सँभालने का उत्तरदायित्व उसके कंधों पर पड़ गया है, पर उस कर्तव्य को वह हँसी-

खेल में ही पूरा कर देता है।

पप्पू

नन्हा-सा नववर्षीय पप्पू अपने महल्ले के शैतान बालकों का प्रतिनिधि है। वह सच्चे अर्थों में उनका सरदार है। माँ के कितना ही सँवारने पर भी उसके बाल सदा उसके माथे पर बिखरे रहते हैं। स्वच्छ वस्त्रों पर पड़े धूल के निशान और जूतों पर पड़ी धूल उसकी विविध कार्यवाहियों का यथेष्ट परिचय देती रहती है। उसके विषय में उसके पिता का यह कथन अक्षरशः सच है—कि न जाने वह कब कौन-सी शरारत कर बैठे।

रवि

पप्पू का समवयस्क साथी, तथा उसकी सभी योजनाओं में उसका निकटतम परामर्शदाता है। वास्तव में किसी के लिए यह पता लगाना कठिन है कि कौन-सी योजना किसके मस्तिष्क में उदित होकर, किसके द्वारा कार्यान्वित होती है।

माँ, बहन और पत्नी

स्थान : मीनू के घर का ड्राइंगरूम, तथा सड़क का एक भाग।

समय : अपराह्न

[द्वार पर थपकी]

मीनू : कौन, रानी ? अरे ! भई, आओ, आओ। यह ईद का चाँद आज किधर को निकल पड़ा ?

रानी : हाँ, जी ! हम ईद के चाँद तो हैं, कभी-न-कभी दिखाई तो भी दे जाते हैं। पर हमारी मीनू रानी तो ईद का चाँद भी नहीं। दर्शन ही दुर्लभ हैं।

[दोनों हँस पड़ती हैं।]

रानी : चल, मीनू। आज पिक्चर चलें।

मीनू : नहीं, रे ! मैं पिक्चर-विक्चर नहीं जाती।

रानी : अरी, बावरी ! 'मिनर्वा' में 'लाल-चूड़ियाँ' लगी है। ऐसी पिक्चर बार-बार नहीं आती।

मीनू : न आने दो।

रानी : चल, उठ। अब ज़्यादा नखरे न बघार।

मीनू : नहीं, रानी। नखरे की बात नहीं। वास्तव में आज मैं नहीं जा सकूँगी। आज मुझे बहुत काम है।

रानी : क्या काम है, ज़रा मैं भी तो सुनूँ !

मीनू : अभी बाज़ार जाकर पप्पू के लिए इतिहास की पुस्तक और कुछ कापी-पेंसिलें लानी हैं। इनका यह नाइट-सूट आज अवश्य सी कर तैयार कर देना है। और भैया अपनी एलबम दे गये थे, उसमें···

रानी : बस ! पति, पुत्र और भाई—डूबी रह इन्हीं में ! यही तो तेरी सारी दुनिया है।

मीनू : तू झूठ नहीं कहती, रानी। कितनी सलोनी है यह दुनिया—कितनी छोटी-सी, फिर भी कितनी विस्तृत। कितनी···

रानी : बस, बस, रहने दे ! बोल तू चलती है या नहीं मेरे साथ ?

मीनू : नहीं, बहन। आज तो न जा सकूँगी।

रानी : तेरी तो सदा की यही बात है ! किस दिन जा सकेगी, यह शायद तेरे भगवान को भी पता न होगा।

मीनू : तू तो बेकार ही गुस्सा होती है !

रानी : नहीं, जी ! हम कौन होते हैं गुस्सा होने वाले ? हमें अधिकार ही क्या है किसी पर गुस्सा होने का ?

मीनू : रानी ! बहन, बात तो सुन···

रानी : नहीं, जी ! मत बोलिये। बोलने में आपका समय नष्ट होगा। डूबी रहिये दिन-रात इन्हीं लोगों के काम में।

मीनू : मैं कुछ थोड़ा-सा काम करती हूँ तो क्या ? वे सब भी तो मेरे लिए···

रानी : हाँ, हाँ, सब मालूम है ! वही पुरानी बात बार-बार मेरे आगे कहने की ज़रूरत नहीं। अच्छा, मैं चली···

मीनू : ठहर···अरी, ओ रानी, बात तो सुन···

रानी : (दूर से) फिर कभी सुनूँगी। जब तुझे फुरसत होगी।

[जाते पैरों की ध्वनि]

मीनू : चली गई ? बावरी ! न जाने इसका बचपना कब जायेगा ! आज भैया ने आने को कहा था। आये नहीं अभी तक ! न जाने कहाँ घूम रहे होंगे !

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन। बाज़ार का शोर तरकारी वालों की पुकार]

भानु : आम दो दर्जन दिये ? ठीक है। केला—बस एक दर्जन

काफी होगा। और हाँ, देखो, सेर भर लीची भी देना।

फलवाली : जी, सेठ और क्या दूँ, सेठ ?

भानु : बस, और कुछ नहीं। लो, ये पैसे।

फलवाली : चीकू दूँ साहब। नहीं तो ये अनान्नास ?

भानु : नहीं, भाई, और कुछ नहीं। इतना तो वे आने वाले मेहमान खा भी नहीं पायेंगे। लेकिन, अरे ! यह तो तीन ही चीज़ें हुईं। मीनू जब देखेगी कि ऐसे शुभ अवसर के लिए मैं तीन फल खरीदकर लाया हूँ तो मुझे ज़िन्दा थोड़े ही रहने देगी। बाप, रे ! बहन है कि बब्बर शेर ! न जाने जीजा जी कैसे उसे वश में रखते हैं।

[हलके से हँसता है।]

भानु : अच्छा, भई तरकारी वाली एक दर्जन सन्तरे और दे दो। ज़रा जल्दी करो, हाँ, ठीक है। बस, अब जीजी को लेकर घर चलूँ। देर हो गई, तो माँ गुस्सा होंगी। शानो की ससुराल वाले आयें, इससे पहले ही सब तैयारी पूरी हो जानी चाहिए।

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

हरीश : (ज़ोर से हँसते हुए) हा-हा-हा ! भई, यह एक ही रही ! खूब ! अच्छा, देखो नटराजन्, आज मैं लौट कर नहीं आऊँगा। अगर कुछ ज़रूरत हो तो मुझे घर पर फोन कर देना। मैं जा रहा हूँ.....

[जाते जूतों की ध्वनि। सड़क का शोर]

हरीश : उफ़ ! बस में आज कितना लम्बा क्यू है ! टैक्सी से जाना ही ठीक रहेगा। जल्दी भी पहुँच जाऊँगा और मीनू को समाचार भी जल्दी मिल जायेगा। जब कभी उसे बताने में देर हो जाती है, तो वह कितना गुस्सा

हो जाती है ! पर उसका भी क्या क़सूर ? दावत का सारा इन्तज़ाम भी तो उसीको करना पड़ता है। समय से पता न चले तो तैयारी कैसे करे, बेचारी ! और फिर उसे पप्पू को भी तो संभालना पड़ता है। कितना नटखट है, शैतान। न जाने कब कौन-सी शरारत कर बैठे, कुछ ठिकाना है ! आहा···वो रही टैक्सी··· टैक्सी ! टैक्सी ! !

[मोटर के आने की ध्वनि। दरवाज़ा खुलने-बन्द होने की ध्वनि]

हरीश : चलो, मलाबार हिल।

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

रवि : अच्छा, पप्पू, मैं झटपट तैयार होकर आता हूँ। तब तक तू देख—तेरी मम्मी अभी तैयार हुई या नहीं।

पप्पू : (शान से) अरे, मेरी मम्मी ऐसी नहीं। या तो बात कहेंगी नहीं, और यदि कहेंगी तो उसे पूरा ज़रूर करेंगी। वह तो कभी की तैयार हो गई होंगी।

रवि : सो तो मेरी मम्मी की भी बात है। अगर कुछ काम करने को कहती हैं, तो उसे पूरा भी ज़रूर करती हैं। नहीं करना होता तो फौरन वजह बता देती हैं, कि वैसा क्यों नहीं कर सकेंगी। तभी तो मैं उन्हें इतना प्यार करता हूँ।

पप्पू : वाह रे ! जैसे मैं तो अपनी मम्मी को प्यार करता ही नहीं ? मैं अपनी मम्मी को तुझसे ज़्यादा प्यार करता हूँ।

[घण्टाघर की घड़ी तीन घण्टे बजाती है।]

पप्पू : (घबराकर)—अरे ! तीन बज गए ?

रवि : भाग, तू भाग, कपड़े बदलकर, मैं बस अभी आया,

दो मिनट में।

पप्पू : (पुकारकर) जल्दी आना।

रवि : चिन्ता न कर। तेरे फुटबॉल मैच को देर न होने दूंगा।

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

[मीनू स्वयं ही धीरे-धीरे कुछ बोल रही है, जैसे कुछ सोच रही है।]

मीनू : पप्पू के लिए इतिहास की पुस्तक लानी है, भैया की इस एलबम में चित्र लगाने हैं, और इनका यह नाइट-सूट तैयार करना है। पहले…पहले यह नाइट-सूट ही सी डालूँ। पप्पू और भैया का काम तो बाद में भी किया जा सकता है, पर इनके काम को देरी हो गई, तो गुस्सा होंगे। बाप रे! कैसा गुस्सा है! मानो किसी काम में पल-भर की भी देर हो गई तो आसमान ही टूट पड़ेगा।

[हलके से हँसती है, और कुछ गुनगुनाती है।]

मीनू : मेरे…हरीश…यह नाइट-सूट कितना सुन्दर लगेगा तुम पर? देखो जी…हम पर गुस्सा होना छोड़ दो, वरना हम भी किसी दिन ऐसे नाराज़ हो जाएँगे कि तुम भी क्या याद करोगे! हाँ!

[हौले से हँसती है, और किसी फिल्मी गीत की धुन गुनगुनाती है।]

[दूर कहीं से हरीश पुकारता है—मीनू… मीनू…]

हरीश : (पास आते हुए) मीनू…मैंने कहा अजी सुनती हो…

मीनू : (विस्मय से) अरे! तुम आ गए? आज बड़ी जल्दी छुट्टी मिल गई दफ़्तर से?

हरीश : छुट्टी क्या मिल गई! लेकर आया हूँ।

मीनू : क्यों ? ऐसी क्या मुसीबत आ गई !

हरीश : मुसीबत नहीं आई; हमारे कलकत्ते के हैडऑफ़िस से बिज़निस मैनेजर मिस्टर नागराजन् आए हुए हैं। रात को उन्हें डिनर के लिए कह दिया है। (कुछ हँसकर) बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी आज तुम्हें।

मीनू : (हँसकर) मैं क्या मेहनत से डरती हूँ।

हरीश : सो तो मैं जानता हूँ। इतना भी न जानता होता, तो क्या उन्हें इतनी आसानी से निमंत्रण देने का साहस कर बैठता। तुम्हारे हाथ का बनाया भोजन जो लोग एक बार खा लेते हैं, वे बरसों उसके गुण गाया करते हैं।

मीनू : चलो, हटो, बरसों तो हमारी शादी को भी नहीं हुए !

हरीश : और सुनो ! नौ वर्ष का तो पप्पू ही है। उससे भी साल-भर पहले हमारा विवाह हुआ था। और तुम कहती हो कि···

मीनू : अरे ! सच ! पप्पू नौ साल का हो गया ! हमारे विवाह को दस वर्ष बीत गए ! कितनी जल्दी बीत गए ये दिन !

हरीश : हाँ, मीनू, हमारे जीवन के दिन पंख लगाकर उड़ते जाते हैं, मानो सुख-अभिलाषाओं के सुनहले बादल, नील गगन में अठखेलियाँ करते हों। सच कहता हूँ···

मीनू : (लज्जित स्वर में) अरे ! हटो ! छोड़ो मेरा हाथ, कोई देख ले तो ?

हरीश : देख ले, तो क्या ? तुम तो अभी भी ऐसे शर्मा जाती हो, जैसे अभी कल ही तुम्हारा विवाह हुआ हो !

मीनू : (कृत्रिम रोष से)—नहीं मानोगे तुम !

[बाहर मोटर का हॉर्न बजता है।]

मीनू : ये लो, भैया आए हैं, शायद !

हरीश : हाँ, ऐसा बेसुरा हॉर्न और किसकी मोटर का होगा ?

मीनू : देखो जी, मेरे भैया की मोटर को अगर कुछ कहा···

भानु : (दूर से पुकारते हुए आता है।) मीनू···मीनू··· हल्लो, जीजाजी। कहिए क्या हो रहा है। चल, मीनू उठ। जल्दी से चल।

मीनू : (विस्मय से) कहाँ ?

भानु : घर। माँ ने तुझे अभी फौरन बुलाया है।

मीनू : (और अधिक विस्मित हो) क्यों ?

भानु : (उसका हाथ पकड़कर उठाते हुए) यह सब अब रास्ते में पूछ लेना। चल, उठ जल्दी, बड़ी देर हो रही है।

हरीश : लेकिन कुछ पता भी तो चले ! बात क्या है ?

भानु : अरे, बात क्या होगी, जीजाजी ! आज बनारस वाले शानो को देखने आ रहे हैं। मेहमानों की आवभगत, शानो को सजाना-सँवारना, सब कुछ इसी को तो करना होगा। बिना इसके गए, वहाँ कोई तिनका हिलाने वाला भी नहीं। उठ, मीनू। अब देर न कर।

मीनू : लेकिन, भैया···

भानु : फिर लेकिन ? उठ।

मीनू : भैया, बात तो सुनो ··

भानु : अरे ! तू अभी तक बैठी है ! याद रखना देर करेगी तो माँ ऐसे कान खींचेगी कि सात जनम तक सुर्ख लाल रहेंगे।

मीनू : लेकिन भैया, मैं तो आज नहीं जा सकूँगी।

भानु : अरे, वाह रे, साहबज़ादी ! शादी क्या कर दी है तेरी, बड़े भाई का रौब मानना ही भूल गई है !

[मीनू हँसती है।]

भानु : हँसना पीछे, बता, अब तू उठती है, या गोद में उठाकर ले जाऊँ तुझे ?

हरीश : लेकिन भानु, मीनू आज नहीं जा सकेगी। हमारे हैड-ऑफ़िस के बिज़िनेस मैनेजर यहाँ आये हुए हैं। आज रात को घर पर उनका डिनर···

भानु : छोड़िए, जीजाजी ! आपके घर में तो रोज़ ही डिनर और पार्टियाँ चलती रहती हैं, इसलिए मीनू अपने घर जाना तो छोड़ नहीं देगी ? आ बहन, उठ ! अब देर न कर···

मीनू : लेकिन भैया, बात तो सुनो···

[दूर कहीं से पप्पू पुकारता हुआ आता है—माँ··माँ···]

पप्पू : माँ···अरे ! तुम अभी तक ऐसे ही बैठी हो ! अभी तक तैयार नहीं हुईं ! तुम हमेशा देरी कर देती हो !

मीनू : कैसी देरी, बेटा ?

पप्पू : लो ! अब भी भूल गईं ! तुम्हें कभी कुछ याद नहीं रहता !

मीनू : अब कुछ बतायेगा भी, या बस खाली खड़े-खड़े झगड़ा ही करेगा ?

पप्पू : आज हमारा फुटबॉल का मैच नहीं है ? तुमने नहीं कहा था कि मैं भी देखने चलूँगी ?

मीनू : अरे, रे ! मैं तो सच ही भूल गई थी ! भला याद दिलाया तूने, भैया, देखा, तुमने अपने पप्पू को ? अपनी टीम का कैप्टेन बना है। आज शील्ड जीतकर न लाये तो कहना।

भानु : (गर्व से)—भाँजा भी किसका है ? कैप्टेन साहब, आज विजय का झण्डा गाड़कर आना। देखने वाले भी

कहें—हाँ! भानु ने अपने पप्पू को कुछ सिखाया है।

पप्पू : क्यों नहीं, मामाजी, ज़रूर। आज तुम भी तो चल रहे हो हमारा मैच देखने ?

भानु : जाने का विचार तो पक्का था, पर मुश्किल ऐसी आ पड़ी···

पप्पू : देखिये मामाजी, बहाने बनाने से काम नहीं चलेगा, आज आपको चलना ही पड़ेगा।

हरीश : (हँसकर) हाँ, पप्पू, शाबाश। अपने मामाजी को ज़रूर घसीटकर ले जाना।

पप्पू : वाह, घसीटने की क्या ज़रूरत है? हमारे मामाजी तो आप ही जायेंगे।

भानु : नहीं, पप्पू। आज तो मैं न जा सकूंगा। घर पर तुम्हारी मौसी को देखने कुछ लोग आ रहे हैं। आज तुम्हें अपनी मम्मी को भी छुट्टी देनी होगी। वह मेरे साथ जायेगी।

पप्पू : अरे, वाह! ऐसा कैसे होगा! आज मेरा पहला मैच है। मम्मी ने कब से वादा कर रखा है। क्यों, मम्मी, तुम चलोगी ना?

मीनू : लेकिन, बेटा, आज तो मुझे बहुत काम है। घर पर कुछ लोगों की दावत है, और···

पप्पू : (गुस्से से) दावत है, तो क्या हुआ? वह किसनू क्या सिर्फ हाथ पर हाथ रखकर बैठने के लिए है? फिर हमारा मैच तो पाँच बजे खतम हो जाएगा। नहीं, माँ, तुमको चलना होगा।

मीनू : नहीं, बेटा, आज घर में बाहर के लोग आ रहे हैं। किशनू के किए कुछ न होगा। आज तो मुझे ही···

भानु : देखो, मीनू—किशनू के किये कुछ हो या न हो, तुम्हें अभी मेरे साथ चलना है। मैनेजर को डिनर पर कल

भी बुलाया जा सकता है, लेकिन लड़के वाले···

हरीश : (चिढ़कर) क्या बच्चों की-सी बातें करते हो भानु! बिज़िनेस मैनेजर है। हैड आफिस से आया है। नाराज़ हो गया तो यह ब्रांच आफिस भी हाथ से गया समझो। लड़के वालों का क्या है! जिसे अपने बेटे की शादी करनी है, वह आयेगा और पचास बार आयेगा।

पप्पू : ऐ, मम्मी! तुम क्या खड़ी-खड़ी सुन रही हो! देर जो हो रही है। झटपट जाकर साड़ी बदल आओ। नहीं, रहने दो···साड़ी यह भी क्या बुरी है, चलेगी। आओ, तुम। अब ठहरने का वक्त बिलकुल नहीं।

भानु : हठ न कर पप्पू! माँ आज तेरे साथ नहीं जा सकती।

पप्पू : क्यों नहीं जा सकती? क्या वह मेरी माँ नहीं है?

हरीश : (हँसकर) अरे, पगले! तेरी माँ ज़रूर है, पर उसे घर में भी तो कुछ काम है। आज रात को घर पर दावत है।

पप्पू : तो हुआ करे! दावत तो रोज़ ही होती रहती है। मेरा तो आज पहला मैच है।

हरीश : वाह, रे! तेरे मैच तो अब रोज़ ही हुआ करेंगे। आज स्कूल का है, तो कल कॉलेज का होगा। फिर यूनि-वर्सिटी का होगा, नहीं तो किसी विदेशी टीम के साथ हो जायेगा।

पप्पू : यह सब मैं कुछ नहीं जानता। आज मेरा पहला मैच है, मम्मी को ज़रूर मेरे साथ चलना होगा।

हरीश : वाह रे! ओलम्पिक गेम्स में तू गया, तो वहाँ भी क्या मम्मी तेरे साथ बँधी-बँधी जायेगी? वहाँ भी तो तू पहली ही बार जायेगा?

पप्पू : (क्रोध से) मत जाओ, कोई मत जाओ। हम किसी को

अपने साथ नहीं ले जायेंगे। अब हम कभी किसी से कहीं जाने को नहीं कहेंगे। (एकदम सिसकी भरकर) मत जाओ।

मीनू : अरे, पप्पू···बात तो सुन···

पप्पू : (सिसककर) हटो ! छोड़ दो मेरा हाथ ! तुम्हें तो बस पापा के काम के लिए फुरसत है ! मामा से गप्पें ठोकने का बहुत वक्त है ! हमारे लिए फुरसत क्यों होगी तुम्हें !

मीनू : पप्पू···

पप्पू : मत बोलो हमसे। छोड़ दो हमारा हाथ। हम अकेले ही चले जायेंगे।

मीनू : अरे, शैतान ! कहाँ भाग रहा है ! बात तो सुन···

पप्पू : नहीं सुनूँगा। हरगिज नहीं। कभी नहीं। मैं जाता हूँ···

[हलके संगीत के साथ दृश्य-परिवर्तन]

[पप्पू की सिसकियों की आवाज़]

रवि : (चौंककर) अरे ! पप्पू, तू यहाँ सीढ़ियों पर क्यों बैठा है ?

पप्पू : (केवल सिसकी भरता है।)

रवि : (विस्मित हो) अरे बुद्धू तू रो क्यों रहा है ? तेरी मम्मी अभी तक तैयार नहीं हुईं ?

पप्पू : (सिसकी भर कर) मेरी मम्मी नहीं जायेंगी।

रवि : क्यों ! क्या हुआ ? तू तो कह रहा था···

पप्पू : (क्रोध से) भूल हुई जो कहा ! मुझे क्या मालूम था कि मम्मी बस पापा और मामा को ही प्यार करती हैं, मुझे कुछ भी नहीं समझतीं।

[पप्पू फिर से रो देता है।]

रवि : अरे, वाह रे ! कमाल है ! इतनी सी बात के लिए तू रोता है ? जाएँगी कैसे नहीं तेरी मम्मी ! सुन, कान में एक बात सुन।

[रवि धीरे से पप्पू के कान में कुछ कहता है।]

पप्पू : (ताली बजाकर) हाँ, हाँ, यही ठीक है। यही ठीक रहेगा।

[हलके संगीत के साथ दृश्य-परिवर्तन]

भानु : (क्रोध-भरे स्वर में) मीनू मेरे साथ जायेगी।

हरीश : (और अधिक क्रोध से) नहीं। मीनू आज कहीं नहीं जा सकती।

मीनू : अरे, बाबा ! आज झगड़ा ही करते रहोगे ? तब तो हो चुका कुछ भी काम।ठहरो, मैं तुम लोगों के लिए शर्बत बना लाऊँ।

हरीश : (तेज़ी से) नहीं। अब शर्बत बनाने का वक्त नहीं। चलो, मेरे साथ बाज़ार। सामान खरीदकर लाना है।

भानु : हरगिज़ नहीं। अब बाज़ार जाने का समय नहीं। चलो, मीनू मेरे साथ। तुम्हें अभी शानो को तैयार करना है। जलपान की सामग्री···

[बहुत से बच्चों का शोर]

मीनू : (घबराकर) अरे, रे ! यह क्या ! छोड़ो, मुझे, छोड़ो।

एक बालक : पप्पू तुम हाथ पकड़ो।

पप्पू : रवि, तू ये दूसरा हाथ पकड़।

दूसरा बालक : दीपक तू पीछे से धक्का दे।

सब बालक एक साथ : चलो, मामा की मोटर में, चलो मामा की मोटर में।

मीनू : अरे, शैतानो ! यह क्या करते हो ! छोड़ दो मुझे। कुछ मेरी भी तो सुनो।

सब बालक एक साथ : चलो मामा की मोटर में, चलो मामा की मोटर में।

हरीश : (क्रोध से) यह क्या बदतमीजी है ! पप्पू ?

पप्पू : जी, पापा। आप का डिनर तो रात को नौ बजे होगा। माँ पाँच बजे तक घर ज़रूर आ जाएँगी। टा···टा···।

भानु : (विस्मय से) अरे, मीनू ! इन तिनक-मिनक से बन्दरों से हार मान लेगी तू ! धमका कर भगा दे न इन्हें ?

हरीश : (क्रोध से) यह सब क्या है ?···मीनू ! तुम्हारा हर समय बच्चों से खेलना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं। तुम इस घर की गृहिणी हो। तुम्हारा पहला कर्तव्य घर में है।

भानु : आप भूल में हैं, जीजाजी। इस घर में वह बाद में आई है। पहले वह मेरी बहन है। उसका पहला कर्तव्य अपने भाई-बहन के प्रति है।

हरीश : नहीं। मीन मेरी पत्नी है। उसका पहला कर्तव्य···

मीनू : हाँ, जी हाँ ! मैं तुम्हारी पत्नी हूँ। पर यह मत भूलो कि मैं किसी की बहन और किसी की माँ भी हूँ।

हरीश : (क्रोध से) मीनू !

मीनू : (हँसकर) देखो, जी ! अब मेरे कर्तव्य में बाधा न डालो। जाओ, तुम भैया के साथ बाज़ार जाकर सामान खरीद लाओ। शानो को देखने वाले सात बजे तक अवश्य लौट जाएँगे।

हरीश : (क्रोध से) क्या मतलब ?

मीनू : पप्पू का मैच खत्म हो जायेगा। तो मैं माँ के पास जाऊँगी। शानो की ससुराल वालों को विदा करते ही, मैं घर लौट आऊँगी। तब तक किशनू तरकारी वगैरा बना कर रखेगा। पूरी-कचौरी बनाने में कितनी सी

देर लगती है ! तुम्हारे डिनर को तनिक भी देर न होगी ।

हरीश : (क्रोध से) अपने आगे तुम किसी की सुनोगी थोड़े ही ।

मीनू : एक की ही सुनने बैठ जाऊँ, तो औरों का काम कौन करे ? चलो भैया, तुम्हारे ही कारण हमें इतनी देर हुई । अब तुम्हें हमें पप्पू के स्कूल पहुँचाना पड़ेगा । और देखो, मुझे घर ले जाने के लिए, तुम ठीक पौने पाँच बजे वहाँ पहुँच जाना ।

भानु : (क्रोध से) समझ क्या लिया है तुमने मुझे ? अपना नौकर ?

मीनू : (हँस कर) नहीं, अपना भाई । और देखो जी, तुम खाली न बैठे रहना, तब तक किशनू से प्लेट-चम्मच वगैरा ठीक करा लेना ।

पप्पू : अब देर मत करो, माँ । मैं भाग-भाग कर तुम्हारा सारा काम करा दूँगा :

बालकों का सम्मिलित शोर : चलो मामा की मोटर में, चलो मामा की मोटर में ।

[मोटर का हॉर्न, बालकों की हँसी]

काली परछाइयाँ

पात्र

बीना : बी० ए० की छात्रा

कमला : बीना की माँ

बसन्ती : बीना की नौकरानी

मालती, शीला, चन्दा : बीना की सहेलियाँ

काले, सुनहले और शुभ्र-श्वेत आवरण में लिपटे नारी के तीन रूप।

पात्र-परिचय

बीना

माता-पिता की लाड़ली बेटी बीना बी० ए० की छात्रा है। इस वर्ष उसके नेत्र जीवन का अठारहवाँ वसन्त देख रहे हैं। शायद यही कारण है कि पुस्तकों में पाठ के स्थान पर उसे किसी की सलोनी परछाइयाँ नज़र आती हैं। भोली नादान लड़की प्रेम की नैया को दोनों हाथों से खेना चाहती है, किन्तु पतवार पकड़ना तक उसे आता नहीं। व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में, उसकी यौवन-सुलभ रंगीन कल्पनाएँ, उसे मौत की परछाइयों तले ढकेल देना चाहती हैं—और बीना झुक जाना चाहती है : जीवन से हार मान लेना चाहती है।

मालती

बीना की अन्तरंग सहेली है, किन्तु उन दोनों के स्वभाव में धरती-आकाश का अन्तर है। बीना यदि धरती की सुषमा को अपनी बाँहों में समेट लेना चाहती है, तो मालती आकाश की ऊँचाइयों को छूने की कोशिश में है। वह हार मानना नहीं जानती। मुसीबतों की काली परछा-इयाँ उसे डराती नहीं। उसके हृदय में दूना उत्साह भर देती हैं। यद्यपि अभी उसने जीवन के उन्नीस वर्ष ही पार किये हैं, किन्तु अपने लक्ष्य को बरबस अपनी मुट्ठी में बाँध लेने की रीति उसे आती है। उसका किशोर मन यौवन के सुनहले मनोराज्य में खो जाना नहीं चाहता। वह तो जीवन का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेने को ही आतुर और उत्कंठित है।

चन्दा और शीला

ये दोनों भी बी० ए० की छात्रा हैं। उनकी वेश-भूषा, उनके बाल सँवारने का ढँग, उनके बोलने की रीति देखकर अनजान व्यक्ति भी समझ सकता है, कि उन्हें पढ़ने-लिखने की अपेक्षा, अभिनय कला में अधिक रुचि

है। नृत्य और संगीत सिखाकर, उनके माता-पिता ने उनकी इस रुचि की वृद्धि ही की है। प्रदर्शन का यथेष्ट अवसर नहीं मिल पाता, अतः वह प्रत्येक पल उनकी प्रत्येक बात में प्रदर्शित होती रहती है।

कमला

बीना की माँ कमला की आयु लगभग चालीस वर्ष है। बालों में कहीं-कहीं सफेदी चमक आई है, फिर भी देह अभी तक सुगठित और तरुण रक्त से भरपूर है। कॉलेज-जीवन में वह अपने रंगीन फैशन के लिए विख्यात थी। आज भी उसकी लिपस्टिक और नेल-पॉलिश छूटी नहीं है। किन्तु व्यवहार में नितान्त आधुनिका होने पर भी उसके आन्तरिक विचार वही हैं, जो उसकी दादी-नानी ने, अपनी दादी-नानी से विरासत में पाये थे। नुकीली पेंसिल-सी बारीक और धनुष-सी वक्र, उसकी भौंह-रेखा के पीछे अपने अहम् का कितना गौरव छिपा हुआ है, यह उसके मुख पर दृष्टि पड़ते ही जाना जा सकता है।

बसन्ती

इस घर की नौकरानी बसन्ती की आयु लगभग पच्चीस-छब्बीस वर्ष है। बीना उसे नौकरानी नहीं, अपनी सहेली मानती है, इसलिए दूसरे नौकरों पर उसका रुआब चढ़ गया है। वह बन-सँवरकर रहती है, और उसके अधर सदा हँसी से खिले रहते हैं। इस घर में आये उसे कुल पाँच-छः महीने हुए हैं, फिर भी उसने सब का मन मोह लिया है, यहाँ तक कि अवसर पड़ने पर वह मालकिन को खरी-खोटी तक सुना देती है।

स्थान

बीना का कमरा आधुनिक ढँग से सजा हुआ है। फर्श पर मोटा कालीन बिछा है, खिड़की-दरवाज़ों पर उसके रंग से मेल खाते पर्दे हैं, दीवारों पर प्रकृति की रम्य वनस्थली के सुन्दर चित्र टँगे हैं। एक कोने में पढ़ने की मेज़ और कुर्सी है। पास ही किताबों की अलमारी है। उधर दूसरे कोने में ड्रेसिंग-टेबल है, जिस पर प्रसाधन की सामग्री के अतिरिक्त सुन्दर सुनहरे फ्रेम में जड़ी हुई बीना के माता-पिता की फोटो भी है। पास

ही एक छोटे से स्टूल पर टेलीफोन रखा है ।

आज बीना का जन्मदिन है । दावत का इन्तज़ाम इसी कमरे में किया गया है, अत: पलंग दीवार की ओर खिसकाकर, बीच में बड़ी-सी मेज़ डाल दी गई है, जि स पर काँच के सुन्दर बर्तनों में फल, मिठाई तथा नम कीन आदि रखे हुए हैं । समीप ही एक चौकोर मेज़ पर रेडियो भी रख दिया गया है ।

बीना के पढ़ने की मेज़ पर रखी घड़ी इस समय साढ़े पाँच बजा रही है । खाने की मेज़ के इर्द-गिर्द बीना की सहेलियाँ, हाथों में प्लेटें लिये, एक-दूसरे से छेड़खानी करते खा भी रही हैं, और शोर भी मचा रही हैं । बसन्ती एक बड़ी-सी प्लेट में गरम पकौड़े लेकर आती है, और मेज़ के बीच में रखकर लौट जाती है···

काली परछाइयाँ

समय : अपराह्न

स्थान : मध्यवर्गीय परिवार का ड्रॉइंग-रूम

[बीना व उसकी सहेलियों की हँसी कमरे में गूँज रही है।]

मालती : भई, पकौड़े बहुत बढ़िया बने थे।

शीला : मैंने तो इतने रसगुल्ले खाये कि बस कुछ न पूछो।

चन्दा : अच्छा जी, तभी···मैं भी तो कहूँ, क्यों तू रसगुल्ले-सी फूल रही है !

[सभी सहेलियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ती हैं।]

शीला : अच्छा, बीना, अब एक नृत्य हो जाये।

बीना : हाँ, हाँ, क्यों नहीं, बस शुरू कर दो झट से।

मालती : खूब ! शुरू कौन करेगा, जी ?

सब सहेलियाँ : बीना···बीना···बीना।

बीना : (अपने कानों में उँगलियाँ डालकर) अरी मैय्या, रे ! इतना शोर !

मालती : (मुसकराकर) ठीक है। हम तो केवल शोर मचाते हैं। अब भला हमारी बातें तुम्हें मीठी क्यों लगेंगी ?

शीला : (मुसकराकर) मैं समझी। मन में मधु से मीठे मधुकर की बातें जो बस गई हैं। तभी तो···

चन्दा : तभी तो सब कुछ भूल, बीना रानी यूँ फँस गई हैं।

बीना : हटो ! मैंने क्या कहा, जो तुमने ऐसी बातें शुरू कर दीं।

मालती : क्यों ? तूने नहीं कहा था ?

बीना : (उसकी कमर में घूँसा जमाकर) कहा था तेरा सिर !

चन्दा : (बीना को अपने निकट खींचकर, उसके कण्ठ में अपने

दोनों हाथ डालते हुए) ना, भाई आज बीना को नाराज़ न करो।

मालती : सच तो है! आज उसका जन्मदिन है। नृत्य तो हम लोगों को दिखाना चाहिए।

चन्दा : उसे नाराज़ करने से पहले नहीं सूझी थी, यह बात ?

मालती : (चन्दा के हाथों से बीना को खींचकर) नाराज़ कौन है, जी! मेरी बीना को आज तक किसी ने कभी नाराज़ होते देखा भी है ?

शीला : यह बात कही है, मालती ने। उठ चन्दा, खड़ी हो जा इसी बात पर।

चन्दा : नहीं, भाई! मेरे पैरों में तो आज बड़ा दर्द है।

बीना : (रुष्ट होकर) क्यों नहीं! आज तो तुम सभी के पैरों में दर्द हो रहा होगा? ऐसी कौन-सी ओलम्पिक रेस में दौड़कर आई हो ?

मालती : अरे! तू तो सच ही नाराज़ हो गई!

बीना : नहीं, जी! मैं कौन होती हूँ, नाराज होने वाली! मुझे अधिकार ही क्या है, नाराज होने का!

मालती : अरे! वाह, रे! ज़रा हठीली के नाज़ तो देखो! आओ री सखियो, इसे हाथ जोड़कर मना लें।

शीला : नहीं, जी! हम कौन होते हैं इसे मनाने वाले! हमें अधिकार ही क्या है, इस मनाने का!

[सब एक साथ खिलखिला उठती हैं।]

बीना : रहने दो। तुम लोगों की इच्छा नहीं तो नृत्य को मारो गोली। चलो, एक गीत ही हो जाए।

चन्दा : ठीक है। पहले तुम एक गीत सुना दो। फिर चाहे हम से नृत्य भी देख लेना।

बीना : देख, अब तू स्वयं ही कह रही है। बाद में कहीं फिर

मुकर न जाना ।

चन्दा : अजी, चन्दा ऐसी धोखेबाज़ नहीं । बात जो बोलती है, तो पूरी करके भी दिखाती है ।

बीना : पक्की बात ?

चन्दा : बिल्कुल, जी । एकदम ।

बीना : तो ला, हाथ पर हाथ ।

[दोनों हाथ पर हाथ मारती हैं । गीत सुनने की आशा से, सहेलियाँ बीना के मुख की ओर देखती हैं । बीना चुपके-से उठकर रेडियो खोल देती है । पुरुष-स्वर में पक्का संगीत गूँज उठता है ।]

मालती : (झट से उठकर रेडियो बन्द करते हुए) धोखेबाज़ कहीं की । अब कभी तेरी बात पर विश्वास न करेंगे ।

शीला : अजी, कहाँ से सीखी इतनी चतुराई ?

मालती : अभी क्या ? अभी तो सीख रही है, बेचारी ।

चन्दा : क्या करेगी सीखकर ! बेचारा मधुकर तो इतना भोला-भाला है कि···

बीना : (झट से उसके मुख पर अपना हाथ रखकर) हट, ऐसी बात न बोल !

चन्दा : फिर कैसी बात बोलूँ ?

बीना : (रोषपूर्वक) नहीं मानेगी तू ?

चन्दा : (मुस्कराकर) मान जाऊँगी ।

बीना : कब ?

चन्दा : जब मधुकर दुल्हा बन, तुझे ले जाने के लिए, तेरे द्वार पर आ खड़ा होगा ।

[सब खिलखिलाकर हँस पड़ती हैं ।]

[पीछे के द्वार से बसन्ती आती है ।]

बसन्ती : बिटिया रानी, शीला बहन जी की मोटर उन्हें लेने आई है।

बीना : इतनी जल्दी ? कह दे शीला अभी न जाएगी।

बसन्ती : मोटर में बिटिया की माताजी भी बैठी हैं।

शीला : अर-र्-र् मैं तो भूल ही गई थी, मुझे तो मम्मी के साथ बाज़ार जाना है।

चन्दा : शीला, मुझे भी रास्ते में मेरे घर छोड़ देगी ?

शीला : नहीं, दुलहिन बनाकर अपने घर ले चलूँगी।

[हँसते हुए सब आगे-पीछे जाती हैं। बसन्ती मेज़ पर बिखरे प्याले-प्लेट समेटती है। बीना अकेली आती है और कमरे में इधर-उधर बिखरे उपहारों को समेटकर एक स्थान पर रखती है।]

बीना : उफ ! ये सहेलियाँ हैं कि मुसीबत ! कितने सारे उपहार ले आईं। मना किया था, फिर भी···अरे ! यह तो मधुकर का है ! यह यहाँ आया कैसे ? ज़रूर उसने शीला के हाथ भेजा होगा। अभी पूछती हूँ।

[उठकर टेलीफोन का डायल घुमाती है।]

बीना : (टेलीफोन पर) हलो, कौन मधुकर···जाओ, हम तुम से नहीं बोलते · क्यों क्या ? हमने इतना मना किया, फिर भी तुमने नहीं सुना ? शीला के संग उपहार भेज ही दिया···वाह ! तुम कुछ दो, और हमें पसन्द न आये···नहीं, आज नहीं। कल कालेज के बाद···नहीं, मधुकर, नहीं। अगर माताजी को पता लग गया तो ···हाँ, हाँ, यही ठीक रहेगा···अच्छा तो फिर सात बजे · देखो, कहीं भूल न जाना···गुड बाई···

[बीना फोन रखकर, अपने पलंग पर औंधी लेट

जाती है। उँगली से धरती पर लकीरें खींचते हुए मुसकराती है।]

बीना : (धीरे-धीरे) ओह ? मधुकर ! तुम कितने अच्छे हो ! तुम्हारे मन में कितनी ममता है ! तुम्हारी बातों में कितनी मिठास है ! तुम मेरे हो ! मैं तुम्हारी हूँ ! हम दोनों को कोई कभी अलग न कर सकेगा। हम दोनों···

मालती : (पीछे के द्वार से अन्दर आते हुए) हूँ ! सपना तो सुन्दर है !

बीना : (झट से उठकर) अरे ! तू बाज़ार नहीं गई ?

मालती : पर सपने सदा सच नहीं होते।

बीना : (रुष्ट होकर) चल, ऐसी बात न बोल।

मालती : बोलूँ कैसे नहीं ? तू मेरी सखी है। तू मेरे सामने अपने हाथों, अपने गले में फाँसी का फन्दा कसती रहे, और मैं समीप खड़ी देखती रहूँ ?

बीना : चल, हट ! किसी से स्नेह करना क्या अपने गले में फाँसी का फन्दा कसना है ?

मालती : (मेज़ पर पैर लटकाकर बैठते हुए) है ही।

बीना : नहीं, मैं ऐसा नहीं मानती।

मालती : तेरे न मानने से क्या होगा।

बीना : (मुसकराकर) स्नेह तो हृदय की पावन-पुनीत भावना है सखी। वह चिर-पुरातन, चिर-नूतन और शाश्वत सत्य है। वह कभी दोषपूर्ण नहीं होता, क्योंकि वह हम किसी से सीखते नहीं। जीवन का वह चरमसत्य, समय आने पर स्वयं ही हृदय में प्रस्फुटित होने लगता है।

मालती : (हँसकर) सच !

बीना : (रुष्ट होकर) नहीं तो क्या मैं झूठ कह रही हूँ ! हँसती क्या है ! देख रही है, इस कली को, जो हँस-हँसकर इस गुलदस्ते में झूम रही है ?

मालती : हूँ !

बीना : उपयुक्त समय आ जाने पर, जैसे कोई इसे खिलने से नहीं रोक सकता, ठीक वैसे ही, किशोर-मन में विकसित होते प्यार पर कोई बन्धन नहीं बाँध सकता।

मालती : यह तेरा भ्रम है, सखी ?

बीना : (अचरज से) मेरा भ्रम ? कैसे ?

मालती : देख, इधर, अपनी इसी कली की ओर। डाली से तोड़कर, इसे इस गुलदस्ते में घर की शोभा के लिए सजा दिया गया है। अब यह कभी न खिल सकेगी।

बीना : (चीखकर) मालती !

मालती : (मुसकराकर) क्यों ? क्या मैं झूठ कहती हूँ।

[बीना दोनों हाथों में मुख छिपा कर सिसकती है। नेपथ्य में करुण संगीत की धीमी-धीमी रागिनी बजती है। सहसा बीना तनकर उठ खड़ी होती है।]

बीना : (चीखकर) बसन्ती ?

बसन्ती : (कहीं दूर से) जी, आई।

[बसन्ती जल्दी-जल्दी कमरे में प्रवेश करती है।]

बीना : (उँगली से संकेत करते हुए) ले, जा। हटा दे इस गुलदस्ते को मेरी आँखों के सामने से।

बसन्ती : (घबराकर) फूल तो आज सवेरे ही बदले थे, बिटिया रानी।

बीना : (रोषपूर्वक) मैं कहती हूँ, ले जा। हटा दे इसे यहाँ से।

बसन्ती : अच्छा, बिटिया, अच्छा ! जैसी तुम्हारी इच्छा !

[बसन्ती गुलदस्ता उठाकर जाती है। संगीत की ध्वनि कुछ धीमी पड़ जाती है। बीना दोनों हाथों में मुँह छिपाकर धीरे-धीरे सिसकती है। मालती मेज़ पर से फिसल कर उसके निकट आ बैठती है, और स्नेह से उसकी कमर सहलाने लगती है।]

मालती : बावरी, जिस प्यार के पीछे नैतिक आधार न हो, वह प्यार अनुचित है। उससे दूर रहना ही उचित है।

बीना : (रोष में भरकर) क्या प्रेम करना पाप है ?

मालती : (दृढ़ स्वर में) नहीं···परन्तु, लुकाछिपी के ये खेल, प्रेम की पुण्य प्रभा से आलोकित नहीं। अंधकार में खेलती ये काली परछाइयाँ, प्रेम की पुनीत शुभ्रता पर काले दाग लगा जाती हैं।

बीना : (सहसा रोना भूल, दृढ़ स्वर में) नहीं। हमारा प्रेम झूठ नहीं है।

मालती : (हँसकर) बावरी ! तू क्या जाने, प्रेम किसे कहते हैं ! वह कैसे किया जाता है ! तू तो बुज़दिल है, बुज़-दिल। और तेरा वह प्रेमी ? वह तुझसे भी बढ़कर कायर है।

बीना : (क्रोध से) मालती !

मालती : रोष करेगी ? मुझ पर ! और अपने मन में इतना भी साहस नहीं है कि समाज में सिर ऊँचा कर, सबके सामने परस्पर मिल-जुल सको, हँस-बोल सको ?

बीना : कैसी बातें करती है ! जानती नहीं, माँ कितने पुराने विचारों की हैं।

मालती : (हँसकर) तेरे इस कार्य का परिणाम, उनके पुराने

विचारों को और अधिक दृढ़ ही करेगा, उन्हें क्षीण कर नष्ट नहीं करेगा।

बीना : (रोष से) आखिर तू चाहती क्या है ?

मालती : तुझे अंधकार की गहराइयों से निकालकर, उजले प्रकाश में ले आना। सुन, बीना, विचार कितने ही पुराने क्यों न हों, किन्तु उन्हें बदलकर नया बनाया जा सकता है।

बीना : नहीं। यह तेरा भ्रम है। माँ के विचार बदलना कदापि सम्भव नहीं।

मालती : क्यों ?

बीना : उन्हें अपना पुरानापन ही प्रिय है। उनकी दृष्टि उस अतीतवर्ती ताल के गंदले जल में अपने पुराने गौरव की परछाइयाँ खोजने में ही व्यस्त है। नये विचारों की छाया के लिए उनके मन में स्थान नहीं।

मालती : (दृढ़ स्वर में) ताल का जल गँदला हो जाने पर विषाक्त हो जाता है। उसे बदलने का प्रयास न कर, यदि चुपचाप आत्मसात कर लिया जाए, तो उससे जीवनदान नहीं मिलता, जीवन त्याग देना पड़ता है।

[बीना सहसा मालती की गोद में मुख छिपाकर सिसक उठती है। नेपथ्य में करुण रागिनी आलाप लेने लगती है।]

मालती : (स्नेह से भीगे स्वर में) अरी, बावरी! रोती क्यों है ? इन आँसुओं से क्या माँ के अंधविश्वास धुल जाएँगे ?

[बीना केवल चुपचाप सिसकती है।]

मालती : चुप कर, बीना। रोने से क्या होगा ? यदि तुझमें इतना साहस नहीं, तो मैं कहूँ माँ से ?

बीना : (सिसककर) नहीं सखी, नहीं।

मालती : नहीं कहने से कब तक काम चलेगा, री ! या तू चाहती है कि मंजु की तरह तेरे प्यार का अंजाम भी···

बीना : (चीखकर, झट से उसका मुख अपनी हथेली से बन्द कर देती है।) मालती !

मालती : (क्षोभ से हँसकर) मेरा मुँह बन्द कर दे। पर क्या तू दुनिया का मुख भी बन्द कर सकेगी ? याद है—मंजु की कितनी बदनामी हुई थी ? प्रेमी ने उसे धोखा दिया। अपना दूसरा विवाह कर लिया। अभागिन ने गंगा की गोद में शरण लेनी चाही थी, उसने भी तो उसे किनारे पर फेंक दिया। आज उसका जीवन क्या नरक की घोरतम विभीषिका नहीं ?

[कहीं दूर से कमला पुकारती है।]

कमला : बीना, अरी ओ बीना ?

मालती : सुन···माँ बुला रही हैं ! ये लाल-लाल आँखें देखकर, वे क्या कहेंगी ! जा झटपट मुँह धो आ, उठ।

[बीना जल्दी से उठकर चली जाती है। दूसरे द्वार से कमला का प्रवेश]

कमला : अरे ! मालती ! अकेले कैसे बैठी है, बेटी ? बीना किधर है।

मालती : अभी तो यहीं थी। हाथ-मुँह धोने गई थी।

कमला : अच्छा, वह आ जाए, तो तुम दोनों मेरे पास आना। मैं जाती हूँ।

मालती : (रुकते से स्वर में) मौसी ?

कमला : (जाते-जाते ठिठककर) क्या ? अरी, बोलती क्यों नहीं ? क्या कह रही थी ?

मालती : (संकोचपूर्वक) मौसी, एक बात कहूँ ?

कमला : (स्नेह से) कह न, बेटी। मौसी से लज्जा कैसी !

मालती : यही तो मैं भी सोचती हूँ, मौसी। तुम से भी लाज करूँगी, तो कहूँगी किससे ?

कमला : जानती हूँ, बेटी, जानती हूँ। तू तो मेरी अपनी बेटी है। बीना में और तुझमें, मैं तनिक भी तो अन्तर नहीं मानती।

मालती : (कहते-कहते फिर रुककर) कह तो रही हूँ, लेकिन मौसी तुम मेरी बात मानोगी भी ?

कमला : लो, और सुनो ! आज तक तेरी कौन-सी बात मैंने नहीं मानी है, री !

मालती : हाँ, मौसी, तुम तो बड़ी अच्छी हो। फिर भी मुझे तुम से बड़ा डर लगता है।

कमला : (आनन्द से हँसकर) चल ! झूठी कहीं की !

मालती : (हँसकर) झूठ नहीं, मौसी। सच कहती हूँ। दुनिया में अगर मैं किसी से डरती हूँ, तो बस तुमसे। अरे, हाँ, मौसी, खूब याद आया। वह मधुकर है न···अरे, वही अपने प्रोफेसर शिवशंकर का बेटा···बस, मौसी क्या कहूँ तुमसे, कितना गुणी है वह, कितना सुशील, कितना ··

कमला : (मुस्कराकर) फिर क्या ? तेरी शादी करा दूँ उससे ?

मालती : अरे ! नहीं मौसी। मुझे अभी जल्दी नहीं है। पर वह लड़का बड़ा अच्छा है। देरी होने से हाथ से निकल जाएगा। तुम ऐसा करो—कल ही उसके घर टीका भेज दो। सच कहती हूँ—बीना के लिए उससे अच्छा वर दूसरा नहीं मिलेगा।

कमला : यह क्या बकवास है !

मालती : (विस्मय से) बकवास ! तुम विश्वास मानो, मौसी,

मैं ठीक कहती हूँ। बीना के लिए…

कमला : (हँसकर) अरी, बीना को तो अभी बहुत पढ़ना है। अभी से गृहस्थी के चक्कर में फँस कर क्या करेगी। समय तो आने दे। समय आने पर दूल्हों की कमी न रहेगी।

मालती : समय आ गया है, मौसी। बहुत पढ़ चुकी बीना। अब आगे पढ़कर वह करेगी भी क्या? व्यर्थ समय तथा धन नष्ट करने से क्या लाभ?

कमला : (तीखे स्वर में) व्यर्थ? शिक्षा पाकर क्या केवल तूने इतना ही सीखा है, कि शिक्षा पाना व्यर्थ है।

मालती : नहीं, मौसी। पर उस शिक्षा का कुछ उद्देश्य भी तो होना चाहिए। बीना जितनी शिक्षा पा चुकी है, उसके नित्य प्रति के व्यावहारिक जीवन के लिए उतनी यथेष्ट है।

कमला : बहुत बढ़-बढ़कर बोल रही है। तू भी तो उसी की कक्षा में पढ़ रही है। क्यों नहीं पढ़ाई-लिखाई छोड़, माँ से कहकर, अपनी शादी करा लेती?

मालती : (मुस्कराकर) यह तो अपनी-अपनी रुचि की बात है, मौसी। देखती नहीं हो—कोई साइंटिस्ट बनना चाहता है, तो किसी को वकील बनना अच्छा लगता है। किसी को नौकरी पाने के लिए शिक्षा प्राप्त करना अच्छा लगता है, तो किसी को गृहस्थी बसाने में सुख मिलता है। माँ होकर भी, क्या तुम बीना को सुखी न कर सकोगी, मौसी? उसके मन की एकाकी इच्छा को पूरा न कर सकोगी?

कमला : (अवज्ञा से हँसकर) पागल न बन। बीना के सुख के लिए ही मैं उसकी पढ़ाई में इतना पैसा खर्च कर रही

हूँ। किस बड़े आदमी का बेटा, आज मामूली पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह करना चाहता है ?

मालती : (एकदम आगे बढ़ कमला के दोनों हाथ पकड़ते हुए) बीना के सुख का यदि तुम्हें इतना ही ध्यान है, तो मेरी बात पर विश्वास कर लो, मौसी। उसका विवाह मधुकर से कर दो। नहीं तो···

कमला : (उसका हाथ झटककर) मधुकर···मधुकर, संसार में मधुकर के अतिरिक्त क्या और कोई लड़का ही नहीं ?

मालती : (दृढ़ स्वर में) हाँ। बीना के लिए नहीं। वह सिर्फ मधुकर से ही विवाह करना चाहती है।

कमला : (क्रोध से) मालती !

[नेपथ्य में तीखा संगीत उभरता है।]

मालती : (दृढ़तापूर्वक) अभी समय है, मौसी। मेरी बात मान लो। नहीं तो पीछे पछताने के लिए भी कुछ शेष न रह जायेगा।

कमला : अच्छी बात है। ठीक है। अगर बीना का मन अब पढ़ाई में नहीं लगता, तो मैं अब शीघ्र ही उसका विवाह कर दूँगी। किन्तु मधुकर का नाम फिर कभी मेरे सामने न लेना।

मालती : क्यों नहीं ? मधुकर में क्या दोष है ? क्या वह शरीर से स्वस्थ नहीं ? या उसमें अपनी आजीविका स्वयं कमाने की क्षमता नहीं ?

कमला : (मुसकराकर) बस ! यही तो तुम्हारी रंगीन-कल्पनाओं का दोष है ! रूप-रंग देख लिया—उसके घर में भी कुछ है ? चक्की पीसने भेज दूँ अपनी बेटी को उसके घर। मेरी बेटी लाखों में एक है। राजरानी बनाऊँगी मैं उसे।

न-कोई उपाय खोजना ही होगा।

बीना : (दोनों हाथों में अपना मुख छिपाकर) उपाय ? नहीं। मृत्यु के अतिरिक्त मेरे लिए अब अन्य कोई उपाय नहीं !

[बसन्ती अन्दर प्रवेश कर रही थी। यह सुनते ही उसके हाथ का गुलदस्ता छूटकर धरती पर गिर पड़ता है, और चकनाचूर हो जाता है।]

मालती : अरे ! यह क्या किया, बसन्ती ! गुलदस्ता गिरा दिया।

बसन्ती : (अपराधी से स्वर में) टूट गया बिटिया।

बीना : (उन टुकड़ों को ताकते हुए) काँच टूटता है, तो उसकी आवाज़ सब सुनते हैं, दिल टूटता है जब; तो उसकी आवाज़ कोई नहीं सुनता।

मालती : यूँ हताश न हो, सखी। मैं मौसी को मंजु की पूरी कहानी सुनाऊँगी। उन्हें अकल सीखनी ही होगी।

बीना : नहीं मालती, अपनी अकल के आगे दूसरे की बुद्धि सब को तुच्छ लगती है। माँ कभी न मानेंगी। आज उनकी बातों ने मेरा दिल तोड़ दिया है। प्राण ही टूट गये तो भला शरीर कैसे जीवित रहेगा ! मैं जाती हूँ।

मालती : अरे ! कहाँ जा रही है ? ठहर, सुन, बीना···

बीना : हट जा। छोड़ दे मेरा हाथ।

मालती : ठहर, बीना। नहीं सुनेगी ? मुझसे भागकर तू जायेगी कहाँ !

[आगे-आगे बीना, पीछे-पीछे मालती भागते हुए बाहर निकल जाती हैं। बसन्ती झुककर काँच के टुकड़े बीनती है।]

बसन्ती : भाग गईं दोनों ? हाय ! बिटिया के मन को चैन नहीं! मालकिन के दिमाग में तो मानो आँखें ही नहीं। उठा

लूँ, यह काँच जल्दी से। अगर अभी आ गईं तो···

[कमला जल्दी-जल्दी अन्दर आती है। टूटा गुलदस्ता देखकर, एकदम रुक जाती है।]

कमला : (परेशान होकर) अरी, क्या तोड़ दिया? हाय राम! इतना कीमती गुलदस्ता था। तूने टुकड़े-टुकड़े कर डाला। कमबख्त, नमकहराम!

बसन्ती : मैंने तो कांच का गुलदस्ता ही तोड़ा है, मालकिन, तुमने तो बिटिया का हीरे-सा दिल तोड़ डाला है।

कमला : क्या बकती है! ज़बान सँभालकर बोल।

बसन्ती : मैं गँवार भला क्या बोलूँगी! इस धरती पर न जाने कितनी अभागिनी आठ पहर आँसू बहाती हैं, बीना बिटिया भी···

कमला : (क्रोध से) बसन्ती!

बसन्ती : कर लो, मालकिन! अपने मन की पूरी कर लो। आँसू बहाने वालों में एक की गिनती बढ़ जाएगी, तो जमना के जल में बाढ़ न आ जाएगी!

कमला : (व्यंग्य से) जमना के जल में बाढ़ आए या न आए, तेरे मन में दुःख की नदिया क्यों उमड़ पड़ी है?

बसन्ती : मैं भी इन्सान हूँ, मालकिन, मैंने भी कभी किसी को प्यार किया था। जाने वाला चला गया, टूटे सपने छोड़ गया। फिर भी मैं न टूट सकी। (धीरे-से सिसकी भरती है।)

कमला : (विस्मित हो) बसन्ती!

बसन्ती : (सिसककर) दुःख की नदिया में कितनी ही तूफानी बाढ़ क्यों न आए, समुन्दर की खारी बूँदों में वह सब घुलमिल जाती हैं।

[काँच के टुकड़े हाथ में उठा, बसन्ती चली जाती है।]

कमला : इस हँसमुख बसन्ती के हँसते चेहरे के पर्दे के पीछे, इतना गहरा दर्द छिपा है···उफ ! तब क्या मेरी बेटी भी···नहीं, नहीं···यह कदापि सम्भव नहीं···तब मैं क्या करूँ ? हे प्रभु, हे परमेश्वर, मुझे बता दो, मुझे ठीक राह सुझा दो, भगवान···क्या मालती सच कहती थी···क्या बसन्ती का कथन ही ठीक है···

[धीमे संगीत में उसके स्वर डूब से जाते हैं। दोनों हाथ जोड़ वह धरती पर झुक-सी जाती है, सहसा उसे लगता है कि उसके सामने एक काली छाया आ खड़ी हुई है।]

काली छाया : (रूक्ष स्वर में) नहीं, मालती का कथन मिथ्या था।

कमला : (भयपूर्वक) तुम ? तुम कौन हो ?

काली छाया : (अट्टहास करके) हा-हा-हा—मुझे नहीं पहचाना। मैं तो तेरी ही परछाईं, तेरा ही असली रूप।

कमला : मेरा असली रूप ? इतना वीभत्स, इतना खौफनाक··· नहीं, नहीं, यह कदापि सम्भव नहीं।

काली छाया : (कटु स्वर में) भागने की कोशिश न कर, कमला। अपने अन्तर में निवास करने वाली आत्मा से आज तक कौन भाग सका है ? तेरी कोशिश बेकार होगी, तुझे मेरा कहना मानना ही होगा।

कमला : मानना ही होगा ? अच्छा, मैं मानूँगी···तू बोल, मैं क्या करूँ ?

काली छाया : मधुकर से प्रेम कर, बीना ने तेरी सत्ता को ठुकराया है। युग-युग से चलती चली आई शाश्वत रूढ़ियों पर उसने कटु कराल, पद-प्रहार किया है। उसके इस विद्रोह को चूर-चूर कर डाल। अपनी इच्छा के अनुसार किसी लड़के से उसका विवाह कर, नई पीढ़ी के इस

विद्रोह को कुचल डाल । न भूल, यह वह चिंगारी है—
जो घर-घर में प्रतिष्ठित, माता-पिता की चिरंतन
प्रतिष्ठा को, पलक मारते भस्मीभूत कर डालेगी ।

कमला : किन्तु···परन्तु···इससे बीना के मन को दुःख होगा ।

काली छाया : दुःख ? हा-हा-हा ? रूढ़ियों की रक्षा के लिए, पुरातन विश्वासों को सुरक्षा के लिए, इस धरती की बेटियों ने, अपने प्राण, हँसते-हँसते ज्वलन्त-ज्वाला में होम कर दिए । क्या तू इस धरती की बेटी नहीं ? क्या बीना ने तेरा दूध नहीं पिया ?

कमला : हाँ···हाँ···तू ठीक कहती है···मैं इसी पावन धरती की बेटी हूँ···बीना मेरी ही सन्तान है ।

[नेपथ्य में धीमा संगीत उभरता है ।]

काली छाया : अपने मन को मजबूत कर, हृदय में विश्वास भर । अपनी सन्तान कोमनमानी करने का अनुचित अधिकार न दे । न भूल, डोर हाथ से छूट जाए तो फिर पतंग हाथ नहीं आती ।

कमला : हाँ···हाँ···ठाक है···मैं आज ही बीना के डैडी से कहूँगी···

गम्भीर स्वर : नहीं, तू ऐसा नहीं कर सकती ।

[कमला चौंककर सिर उठाती है । सामने एक सुनहली छाया-सी खड़ी है ।]

कमला : (घबराकर) क्या कहा ?

सुनहरी छाया : (दृढ़ स्वर में) माँ होकर, तू इस तरह अपने हाथ से अपनी बेटी की हत्या नहीं कर सकती ।

कमला : तू ? तू कौन है ?

सुनहली छाया : मैं ? (मीठे स्वर में) मुझे नहीं पहचाना ? मैं तो तेरी ही परछाईं हूँ, तेरा ही असली रूप ।

कमला : मेरा असली रूप···इतना भव्य, इतना उज्ज्वल··· नहीं, नहीं, यह कदापि सम्भव नहीं···

सुनहली छाया : (मीठे स्वर में) भागने की कोशिश न कर, कमला, अपने अन्तर में निवास करने वाली आत्मा से आज तक कौन भाग सका है ! तेरी कोशिश बेकार होगी, तुझे मेरा कहना मानना ही होगा ।

कमला : मानना ही होगा ? अच्छा, मैं मानूँगी, तू बोल, मैं क्या करूँ ?

सुनहली छाया : अपने अपराध का भार बीना पर न डाल । अपने अविचार का दण्ड उसे न दे ।

कमला : (विस्मय से) मेरा अपराध···मेरा अविचार !

सुनहली छाया : हाँ, अपराध तेरा है । नारी होकर तू नारी की कोमल भावनाओं को न पहचान सकी ! माँ होकर तू बेटी की इच्छाओं को न समझ सकी ! तुझसे बढ़कर अपराधी और कौन होगा ?

कमला : मैं···अपराधिनी ?

सुनहली छाया : हाँ, तेरी बेटी के युवा हृदय में किशोर भावनाएँ कुसुमित हो रही थीं । उनपर तू ने ध्यान न दिया । उनके पल्लवित होने से पूर्व ही, यदि उपयुक्त जीवन-साथी चुन, तूने उसे उसके हाथों में सौंप दिया होता, तो तेरी सत्ता पर आघात न हुआ होता ।

कमला : हाँ···हाँ···मैंने भूल की···बहुत बड़ी भूल···

सुनहली छाया : जीवन की उस भूल का दण्ड तुझे मिल गया । अब दूसरी भूल न कर, नहीं तो तुझे जीवन-पर्यन्त पछताना होगा···मौत की गोद में भी तुझे शान्ति न मिल सकेगी···

कमला : हाँ···हाँ···ठीक है···तू ठीक कहती है । मैं आज ही

बीना के डैडी से कहूँगी।

काली छाया : (सहसा पार्श्व में उभरकर, कठोर स्वर में) नहीं, तू ऐसा नहीं कर सकती।

सुनहली छाया : (दृढ़ स्वर में) नहीं, तुझे ऐसा करना ही होगा।

काली छाया : (कटु स्वर में) सोच ले, कमला, यह पाप होगा।

सुनहली छाया : (मीठे स्वर में) तू विश्वास मान, इससे बढ़कर पुण्य दूसरा नहीं।

कमला : (दोनों हाथों से अपना माथा दबाकर) उफ ! तुम दोनों कौन हो, कहाँ से आई हो।

काली छाया : तेरी अन्तरात्मा के भीतरी तल से बावरी !

सुनहली छाया : हम तो तेरा ही असली रूप हैं, तेरे ही विचारों की वास्तविक प्रतिच्छाया···

कमला : मेरा ही असली रूप···मेरे ही विचारों की प्रतिच्छाया ···फिर तुम दोनों एक साथ मुझे उल्टी सलाहें क्यों दे रही हो ?

काली छाया : तू मेरी बात मान ले, पहले मैं तेरे पास आई थी।

सुनहली छाया : प्रथम विचारों के संग चल पड़ने वाले सदा ठोकर खाते हैं। विचार करने पर ही बुद्धि उभरती है। तू मेरा सहारा ले।

काली छाया : नहीं मेरा।

कमला : उफ़ ! मुझपर दया करो, तुम जाओ मैं अकेली तुम दोनों का सामना न कर सकूँगी। जाओ···जाओ···

[दोनों परछाइयाँ खिलखिलाकर हँसती हैं, और अदृश्य हो जाती हैं।]

कमला : उफ़ ! मेरे मस्तिष्क में आँधियाँ उमड़ रही हैं ! मेरे हृदय में तूफान लहरा रहा है। मैं क्या करूँ ! अपनी आत्मा की कौन-सी बात मानूँ ? भगवान, मुझे सत्पथ

की राह दिखा दो। मुझे शक्ति दो, बल दो, बुद्धि दो···

गम्भीर स्वर : किसे पुकार रही है ! मैं तो तेरे पास ही हूँ।

[बीना चौंककर सिर उठाती है। सामने एक शुभ्र श्वेत-सी छाया है।]

कमला : (घबराकर) तुम ? तुम कौन हो ?

बुद्धि : (कोमल स्वर में) मुझे नहीं पहचाना ? मैं ही तो तेरी असली शक्ति हूँ···तेरी बुद्धि।

कमला : मेरी बुद्धि ? इतनी देर से तू कहाँ थी ? क्यों मुझे अकेला छोड़ गई थी ?

बुद्धि : किसने कहा कि छोड़ गई थी ? मैं तो सदा तेरे साथ हूँ। तेरी आत्मा की परछाइयाँ कभी तुझे आगे खींचती हैं, कभी पीछे ढकेलती हैं, और इनके भँवर-जाल में फँसकर तू भूल जाती है, कि तुझे सदा मेरा सहारा है।

कमला : (हँसकर) तेरा सहारा ? हाँ, जैसे मकड़ी के नाजुक तार को, तूफानी आँधियों का आसरा···

बुद्धि : व्यंग्य न कर ! तेरी काया मकड़ी के तार-सी नाजुक या तृण सी बलहीन भले ही हो, पर तेरे अन्तर्मानस में वह शक्ति है, जो इस संसार को जीवन देती है। तू नारी है, तू स्नेह की प्रतिमूर्ति है ! क्या तू स्नेह का अपमान करेगी ?

कमला : क्या कहा ? मैं शक्ति हूँ···मैं स्नेह की प्रतिमूर्ति हूँ··· मैं स्नेह का अपमान कर रही हूँ ?

बुद्धि : हाँ, आज तू ने भूल की कि तू वह अनादि चिन्मय माया है, जिसके समक्ष बड़े से बड़े विद्वानों की विद्वत्ता तृण-सी झुक जाती है। तू आदि शक्ति है, जगन्माता, जगत्-जानकी, वह चिर-पुरातना सीता, जिसके समक्ष

अत्याचार के प्रतीक रावण को बरबस शीश झुकाना ही पड़ता है, क्या आज तू स्वयं अत्याचार करेगी ?

कमला : मैं अत्याचार करूँगी ? नहीं, नहीं ! मुझमें इतनी शक्ति कहाँ···मैं तो वही युगों पुरानी अनादि सीता हूँ। जिसने सदा अत्याचार के समक्ष झुक जाना ही सीखा है।

बुद्धि : अत्याचार जो करते हैं, उन्हीं पुरषों का पढ़ाया पाठ, बोलकर तू गौरव का अनुभव कर रही है ? बावरी ! जहाँ तक अपना व्यक्तिगत प्रश्न है, सीता भले ही स्वार्थ त्याग; सिर झुकाकर चली हो, पर अपनी सन्तान का प्रश्न सामने आते ही, वह निडर सिंहिनी-सी, वन-वन भटकने को सन्नद्ध होकर उसकी रक्षा करती है। उसे इस योग्य बना देती है कि वह अपने पूर्वजों को पराजित कर, उन्हें नया पाठ पढ़ा सके।

कमला : हाँ, हाँ···तू ठीक कहती है···नई सन्तान जो ज्ञान प्राप्त करती है, उसीके सहारे विश्व प्रगति के पथ पर चलता है। तब फिर, आज मैं क्या करूँ ? मेरा क्या कर्तव्य है ?

बुद्धि : (मुस्कराकर) बहुत ही सीधा और सरल। तू अनागत की आशंका, और अतीत की परछाइयों में न डूब। बुद्धि से काम ले। तेरे पथ के काँटे फूल बन जाएँगे।

[बुद्धि, अदृश्य हो जाती है। कमला दोनों हाथों के बीच अपना सिर दबा लेती है। आगे-आगे बीना और पीछे-पीछे मालती भागते हुए आती हैं।]

बीना : माँ-माँ···(उसकी गोदी में लुढ़क जाती है)।

कमला : बीना, मेरी बच्ची, तू कहाँ थी, अब तक ! मैं कहाँ खो गई थी···मायाजाल में···वह सपना था, या सच्ची बात थी ?

बीना : देख लो, माँ···यह मालती नहीं मानती !

मालती : शिकायत पीछे सुनना मौसी, पहले देखो, इसकी मुट्ठी में क्या है ?

कमला : यह क्या, पिस्तौल ? बीना···तू होश में है या नहीं ?

बीना : मेरे हाथ छोड़ दे, सखी। इस पिस्तौल में छिपे कबूतर को उड़ाकर, मैं माँ के प्रश्न का उत्तर दे दूँ।

मालती : कबूतर उड़ाकर, नूरजहाँ ने सलीम का प्रेम प्राप्त किया था, बावरी ! उसने आत्मघात नहीं किया था।

कमला : मालती, जा मधुकर को बुला ला। हाथ के कबूतर को उड़ाकर, नूरजहाँ ने जहाँगीर को पा लिया था, देखूँ इसके हाथ के इस विचित्र कबूतर को देखकर, इसका सलीम क्या कहता है ?

बीना : (लजाकर) ओह ! माँ !

[शीला, चन्दा का काली व सुनहली छाया के रूप में प्रवेश।]

शीला, चन्दा : शाहज़ादी को सलीम मिल गया। अब बांदियों को घर जाने की फुरसत मिले।

कमला : अरे, तुम ! तो वह सपना नहीं था।

बीना : (मालती को आगे ढकेलकर) सपना नहीं, वह इन्द्र-जाल था, माँ, यह रही तुम्हारी बुद्धि। पकड़ लो, अब जाने न पाएँ। ठहर, कहाँ चली !

मालती : (मुस्कराकर) बसन्ती सलीम को बुलाने गई है न ? अब पलक पाँवड़े बिछाओ तुम, हम फूलों के हार पिरो लाएँ।

बीना : नहीं मानेगी तू ? अच्छा !

[रुष्ट हो उसकी कमर में घूँसा जमाती है। सब खिलखिलाकर हँसते हैं।]

मान-मर्दन

पात्र

वसुदेव : कृष्ण के पिता
देवकी : कृष्ण की माता
यशोदा : नन्द-वधु
कंस : मथुरा का राजा
रानी : कंस की रानी
भीमक : एक प्रहरी
रुद्रक : दूसरा प्रहरी
पुरजन, प्रजा इत्यादि

काल : सदियों पूर्व···भादों की एक रात।

मथुरा के प्रबल प्रतापी राजा कंस के अत्याचार से प्रजा त्रस्त थी। माता-पिता तथा बहन-बहनोई को बन्दीगृह में डाल देने वाले उस तक्षक के नागफाँस में आबद्ध सारा राज्य तड़फड़ाकर छटपटा रहा था। पापी अपने भविष्य के प्रति सदा शंकाशील रहता है, और यही कारण था कि कंस के मन को भी शान्ति न थी। उस अशान्ति के झोंके ने घर-घर के दीप बुझा दिये थे। रक्षक ही यदि भक्षक बन जाए, तो दुःखी प्रजा किसके पास रक्षा पाने की पुकार लेकर जाये, और फिर उस प्रचण्ड अधर्मी ने तो अपने राज्य में भगवान का नाम लेना भी निषिद्ध कर दिया था। उसके राज्य में केवल उसके ही गुणों का बखान करने का, केवल उसी की यशोगाथा गाने का आदेश था। मौत की भीख माँगती उसकी प्रजा के आँसुओं से धुँधली आँखों के सामने, दूर-दिगन्त में केवल एक ही दीप झिलमिला रहा था—शेषशायी विष्णु की चिरन्तन-पुरातन शाश्वत प्रतिज्ञा कि अत्याचारी के अत्याचार का शमन करने के लिए, उसका मान-मर्दन करने के लिए, वे स्वयं साधारण-जन बन, जन-साधारण के मध्य जीवन-धारण करेंगे। प्रजा के आकुल अन्तर की जो चिरन्तन पुकार थी, वही तो कंस के अन्तर्मानस की सब से बड़ी भयपूर्ण आशंका थी। वह सत्तावादी तो चाहता था, उस ब्रह्माण्ड नियन्ता, आदि-शासक लक्ष्मीपति का भी

मान-मर्दन कर देना।

[नैपथ्य में करुण रागिनी बज रही है। बारी-बारी से पुरुष व नारी का गम्भीर कंठ-स्वर गूँज उठता है।]

पुरुष : भूला कंस, आज वह फूला मद भार! अन्धकार! हा-हाकार!

नारी : नित-नव बढ़ता अत्याचार! धरा पर बढ़ता अतुलित भार!

पुरुष : रो-रो कहते सकल नर-नार।

पुरुष व नारी : (एक साथ)। विश्व नियन्ता, ओ खेवनहार—कह दे फिर एक बार पुकार—
यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् !

नारी : सूनी कर दी माँ की गोद, छीना पापी ने सकल आमोद।

पुरुष : सुन नहीं पड़ता मन्त्रोच्चार, नहीं कहीं धूम, होम की क्षार।

[समवेत पुरुष कंठों का गान]

गीत : ओ, दुर्जेय विश्वजित्

नवाते शत सुरवर नर नाथ,
तुम्हारे इन्द्रासन तल माथ।
घूमते शत-शत भाग्य अनाथ,
सतत् रथ के चक्रों के साथ।

तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियंत्रित,
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, मद-मर्दित।
नग्न नगर कर, भग्न भवन प्रतिमाएँ खंडित,
हर लेते हो विभव, कला-कौशल, चिर-संचित।

सैनिक : (गरजकर)। बन्द करो, बन्द करो यह गीत।

[कोड़े मारने का शब्द]

पुरजन : आह ! मारते क्यों हो ? तुम्हारे नृप का यशोगीत ही तो गा रहे हैं हम !

सैनिक : (क्रोध से)। यशोगान है यह ! नारकी ! अधम ! पापी ! नीच !

[नारियों के करुण स्वर में, सैनिकों का रुक्ष-कटु स्वर डूब जाता है।]

गीत : (नारी कंठ से)—

अरे ! देखो इस पार,
दिवस की आभा में साकार।
दिगम्बर सहम रहा संसार,
हाय ! जग के कर्त्तार !!!

प्रातः ही तो कहलाई मात !
पयोधर बने उरोज उदार।
मधुर उर इच्छा को, अज्ञात,
प्रथम ही मिला मृदुल आकार।

छिन गया हाय गोद का बाल !
गड़ी है बिना बाल की नाल !!

सैनिक : (कड़ककर) पकड़ लो, पकड़ लो, भागने न पाएँ। ये सब देशद्रोही हैं। दंड पाने के अधिकारी हैं। चलो, चलो राजा के पास···

नर-नारी : (क्रुद्ध स्वर में)। लो, पकड़ लो। हाँ, अवश्य पकड़ लो, राक्षसो ! क्या करोगे तुम हमारा ?
सन्तान को मार डाला···घर-बार जला डाला··· तुम्हारे हाथों की मृत्यु भी अब हमारे लिए वरदान बनेगी···

पुरुष : हाँ ! दुःखों से निष्कृति दे, वह हमारे लिए अभयदान बनेगी।

नारी व पुरुष : (एक साथ) हम मृत्यु चाहते हैं,हमें मृत्यु दो, मौत दो।
[नैपथ्य में करुण-संगीत उभरकर शांत हो जाता है।]

सैनिक : (उच्च स्वर में) मथुराधिपति महाराजाधिराज, शूरवीर, रणवीर, प्रबल, प्रतापी, अमित तेज-बलशाली, दुष्ट दलनकारी, साधु महाराज कंस राज की जय।

कंस : कहो, भीमक ! क्या समाचार है ?

भीमक : राज्य में सब कुशल है, महाराज। किसी भी घर में कोई नवजात शिशु जीवित नहीं आज। गली-गली, नगर-नगर पुरजन आपकी यशोगाथा गाते अघाते नहीं नर नाथ।

कंस : (अट्टहास करके)। हा-हा-हा देखना ! सावधान रहना ! आज की रात्रि, काल-रात्रि है। कल खिलेगा नया सवेरा, नया प्रातः; और मैं सत्य ही बनूँगा सकल भुवन का नर नाथ। हा-हा-हा···

[रौद्र रस-पूरित संगीत बज उठता है। उसके स्वर थमते ही मेघ गरज उठते हैं। पवन साँय-साँय कर उठती है। बिजली की कड़क में पहरेदारों के स्वर खो-खो जाते हैं]

प्रहरी : जा···ग···ते···रहो। हो···शि···या···र···रहो।
[बिजली की कड़क। बादलों की गरज]

वसुदेव : (कोमल स्वर में)। प्रिये ! बड़ी व्याकुल हो तुम ! क्यों इतनी चिन्तित हो उठी हो, आज ?

देवकी : (घबराये स्वर में) नहीं। कुछ भी तो नहीं, आर्यपुत्र।

वसुदेव : (स्नेहपूर्वक)। शुभे ! मुझे भी नहीं बताओगी, अपने मन की बात ?

देवकी : सुनकर करोगे क्या ? व्यथा होगी तुम्हें भी···बस !

इतना ही तो !

वसुदेव : तुम्हारी व्यथा बंटा सकूँ, इस बन्दीघर में केवल इतना ही अधिकार तो रह गया है मेरे हाथ ।

देवकी : न, आर्य पुत्र ! न कहो ऐसा। सुनकर हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। हाय ! न जाने कब कटेगा, यह जटिल नाग-पाश !

वसुदेव : कटेगा, प्रिये, अवश्य कटेगा···विकल धरती की प्यासी पुकार सुन, सजल मेघमाला को दौड़कर आना ही पड़ता है । हमारी अविरल पुकार क्या उन सत्ताशील शेषशायी के कानों तक न पहुँचेगी, नहीं, नहीं, पहुँचेगी। अवश्य पहुँचेगी ।

देवकी : (विकल होकर) कब ? जब आशा आँचल का आधार छोड़ जाएगी, जब जीवन-दीप बुझने लगेगा ? इस तन का मोह छोड़,जब ये प्राण सिहरते शून्य में उड़ जायेंगे ?

वसुदेव : इतनी अधीरता ! छिः, आर्य्ये ! यह तुम्हें शोभा नहीं देता।

देवकी : अधीर कैसे न हूँ, नाथ ! उस पापी ने मेरे सात अबोध बालकों को, मौत के झूले पर सुला दिया ! और आज ···आज इस आठवें शिशु को भी, वह···

वसुदेव : (चौंककर)—प्रिये ! प्रिये ! क्या, आज, आज ही···

देवकी : (सिसकी भरते हुए—हाँ, आर्य्य-पुत्र ! आज···आज ······आज ही···

[वायु का वेग बढ़ जाता है । बढ़ जाता है बादलों का शोर, टप-टप बूंदें टपकने लगती हैं, यमुना की लहरें लहरा-लहरा कर उमड़-घुमड़कर तट से टकराती हैं ।]

भीमक : रुद्रक ! लगता है मानो आज महाप्रभु अत्यन्त कुपित

हो उठे हैं।

रुद्रक : सच कहते हो, भीमक ! यह दामिनि की दमक—घिर-घिर कर एकाकार होते इन मेघ खण्डों की यह गर्जना, वायु की यह लोमहर्षक तर्जना—लगता है मानो आज प्रलय की रात आ पहुँची है !

भीमक : देखो···देखो, तनिक यमुना की ओर, लगता है, मानो आज वह इन पत्थर की दीवारों को गिरा देना चाहती है। इन लौह शृं खलाओं को तोड़ डालना चाहती है। मिटा देना चाहती है, इस लौह बन्दीघर को, इसके कालिमामय, अनिष्टकारी अस्तित्व को।

रुद्रक : शीत से गात ठिठुर रहा है। अँग-अँग काँप रहे हैं। दाँत से दाँत बज रहे हैं। चलो, सखे ! कम्बल लपेट ज़रा कोठरी में लेट रहें।

भीमक : (आश्चर्य से)—परन्तु ये राजबन्दी ?

रुद्रक : (हँसकर)—राजबन्दी ? हम लौह-शरीर वालों की यह दशा है, तो फूल से कोमल गात वाले उन सुकुमार राज-दम्पत्ति की दशा कैसी दयनीय होगी, मित्र ! ऐसे में कहाँ भागकर जाएँगे वे ?

भीमक : ठीक कहते हो। आओ, हम चलें।

रुद्रक : तुम चलो। मैं भर आता हूँ। किले की इन दीवारों का एक अन्तिम चक्कर लगा आऊँ।

भीमक : अच्छा, मैं चला।

[भीमक चला जाता है। उसके जूतों की ठकाठक धीरे-धीरे कम होते, बन्द हो जाती है। उसी समय रुद्रक आप ही आप हौले से बोल उठता है]

रुद्रक : (धीमे करुण स्वर में)—हाय ! अभागे वसुदेव, हत-भागिनि देवकी ! पूर्वजन्म के किस कटु पाप के कारण,

भोगनी पड़ रही है तुम्हें, यह बन्दी घर की कराल-यातना ! कुछ भी हो। मैं तुम्हें जीवित ही जल-समाधि न लेने दूँगा। खोले जाता हूँ यह द्वार। गर्विता यमुना की लहरें, जब तुम्हारे चरणों से आ टकरायें, तब कहीं भागकर अपने प्राण बचा लेना। रक्षा कर लेना अपनी उस यम-यातना से, जो जल में डूब जाने पर, साँस घुट-घुट कर मरने में मिलती है।

[लोहे की जंजीर झनझना कर धरती पर गिर पड़ती है। रुद्रक के जूतों की आवाज़ धीरे-धीरे कम होकर बन्द हो जाती है। देवकी के धीरे-धीरे कराहने का स्वर उभरता है।]

वसुदेव : (चौंककर)—अरे ! यह क्या !

देवकी : (विस्मित हो)—क्या हुआ, आर्य-पुत्र ?

वसुदेव : वह देखो—तुम्हारी पीड़ा देख, वह लौह-शृंखला आज मानो स्वयं ही टूट गई है ! ताला खुलकर नीचे गिर पड़ा है ! पवन नें अपने सहस्रों हाथों का जोर लगा, इस रुद्ध कपाट को भी खोल डाला है।

देवकी : आह ! द्वार खुला ! परन्तु लाभ क्या ? ऐसी आँधी-वर्षा में भागकर जाओगे भी कहाँ !

वसुदेव : आँधी-वर्षा न होती, तब भी तुम्हें ऐसी दशा में छोड़ कर, मैं कदापि कहीं नहीं जा सकता था, आर्ये।

देवकी : इस व्यर्थ की भावुकता से क्या लाभ है, नाथ ! मैं भाग कर भी बच न सकूँगी। जानती हूँ—आज मेरा अन्तिम समय आ गया है। उफ ! कितनी पीड़ा है···मैं चल न सकूँगी। तुम जाओ···आह !

वसुदेव : (घबराकर)—शुभे···देवकी !

देवकी · (कराहते हुए)—अब समय नहीं। जाओ, तुम भाग

जाओ। उफ! मैं मरी··· यह कष्ट तो अब सहा न जायेगा।

वसुदेव : घबराओ नहीं, सुलक्षणे। तुम-सी निर्भीका को भय खाना शोभा नहीं देता।

देवकी : आर्यपुत्र, नाथ, कहाँ हो तुम ? क्या चले गये ? हाय ! मुझे अकेला छोड़कर चले गये···

वसुदेव : मैं यहीं हूँ, सुभगे। देखो, यहाँ तुम्हारे पार्श्व में, देखो, आँखें खोलो, देवकी···

देवकी : तुम अभी तक गये नहीं ! जाओ, समय रहते चले जाओ। उफ़ ! कभी तो कहना मान लिया करो···

वसुदेव : देवकी···प्रिये···देवकी ! हा ! क्या मूर्छित हो गई ! देवकी···अरे ! कोई है—जल लाओ, जल, पंखा···परन्तु यहाँ होगा भी कौन, कौन यहाँ मेरी सुनेगा···केवल बन्दीघर की ये बिधर दीवारें···जाऊ, ···पानी ले आऊ···

[मुख पर पानी के छींटे देने का स्वर]

वसुदेव : देवकी···देवकी···

देवकी : (क्षीण स्वर में कराहकर)—गये नहीं···तुम अभी तक नहीं गए ! मैं विनती करती हूँ—तुम जाओ··· सच कहती हूँ, यह जानकर कि तुम्हें बन्दीघर से छुट-कारा मिल गया है, तुम मुक्त हो गये हो, मेरी पीड़ा आधी भी नहीं रह जाएगी।

वसुदेव : व्यर्थ न बोलो। बोलने से शक्ति क्षीण होती है। थकान उमड़ती है। कुछ देर चुप होकर लेटी रहो, सुलक्षणे।

देवकी : (कराहकर)—आह ! नहीं सहा जाता···नहीं सहा जाता अब यह दाह···यह यंत्रणा ! निष्कृति दो··· मुक्ति दो···हे, प्रभु, जीवन दो, या मृत्यु दो···

[कक्ष में नवजात शिशु का रुदन गूँज उठता है।]

वसुदेव : चुप, रे, चुप। कोई सुन लेगा। तू क्यों रोता है! तू हँस कि अभी पल-भर उपरांत ही, तुझे जीवन के बंधन से छुटकारा मिल जायेगा। रोयेंगे तो हम, कि हमारा रक्त-बिन्दु···हमारा आधार···हमारे प्राणों का एकाकी सहारा···

देवकी : (कराहकर)—आर्यपुत्र ?

वसुदेव : अब कुछ न बोलो, शुभे। मैं जाता हूँ, अब कंस के पास। जाने की बेला आ गई।

देवकी : हाँ! जाने की बेला आ गई। जाने से पहले सुन लो मेरी एक बात···एक भूली-बिसरी गाथा—जो न जाने क्यूँ, आज आ गई याद।

वसुदेव : झटपट कह दो, क्या कहती हो। देरी न करो···नहीं तो···

देवकी : बात पुरानी है—उस दिन मैं रोहिणी के संग, यमुना के तीर जल भरने गई थी। वहाँ मिल गई यशोदा···

वसुदेव : यशोदा ?

देवकी : हाँ, यशोदा। ब्रज की रानी। नन्द की महारानी। यमुना की लहरों में हिल-मिल, हम संग-संग नहाये। एक-दूसरे पर खूब छींटे उड़ाये, और खेल-खेल में वह बोली···

[यमुना की कल-कल, छल-छल करती लहरों के शोर के साथ, सम्मिलित नारी कण्ठ का हास।]

यशोदा : (खिलखिलाते हुए) देवकी, देवकी, छींटे न मार, नहीं तो याद रख, ऐसा बदला लूँगी कि तू भी याद करेगी।

देवकी : (हँसकर) बदला ? बड़ी आई बदला लेने वाली! क्या करेगी, बोल ?

यशोदा : क्या करूँगी ? बताऊँ ? तेरी गोदी के लाल को छीन लाऊँगी तुझसे ।

देवकी : छीन लेना, बेटे मुझे नहीं सुहाते । पर सुन ले—यदि तेरी गोद में खिली कोई कोमल कली, तो उसे मैं उठा लाऊँगी ।

[उभरते संगीत में उनके स्वर डूब जाते हैं । संगीत के स्वर रुकते ही एक नारी चीख उठती है ।]

कंस : रानी, रानी क्या हुआ तुम्हें···रानी ?

रानी : (भयभीत स्वर में) बचाओ···बचाओ···

कंस : (हल्के से हँसकर) डर गईं तुम ! क्या सपना देखा कोई ? उठो, आँखें खोलो, तुम पर आक्रमण करने का साहस कौन कर सकता है···उठो, प्रिये ! ये पलक-पाँखुड़ी खोल दो ।

रानी : (घबराई-सी) मैं कहाँ हूँ···तुम कौन हो ? ओह ! आर्यपुत्र ? आप ?

कंस : (हँसकर) हाँ, मैं । तुम्हारा कंस ।

रानी : मैंने बड़ा भयंकर सपना देखा, नाथ !

कंस : (अट्टहास कर उठता है)—हा-हा-हा डर गईं ? एक तुच्छ स्वप्न-मात्र से ? अवनिपति, महाबलशाली, प्रतापी कंस की सहगामिनि होकर ? हा-हा-हा···

रानी : (भयभीत स्वर में) मत हँसो, मत हँसो । यूँ विधि के विधान को हँसी में न उड़ाओ, महाबली ! देखो—अर्धरात्रि की काली घड़ियाँ बीत चलीं । उसका जन्म हो गया होगा, जिसको मैंने देखा स्वप्न में···तुम्हारे बाल पकड़ कर खींचते हुए, तुम्हारे लहूलुहान शरीर को सीढ़ियों पर घसीटते हुए···

कंस : हो गया ? उसका जन्म हो गया ! और वसुदेव उसे

अभी तक मेरे पास नहीं लाया ? मैं अभी देखता हूँ, उस खल, दुरात्मा, पापी को।

[द्वार पर ठकठकाहट]

कंस : (उच्च स्वर में) कौन है ?

प्रहरी : महाबली की जय। बन्दी वसुदेव, नवजात शिशु को लेकर पधार रहे हैं, महाराज !

कंस : आने दो।

[द्वार खुलने का शब्द]

कंस : (अट्टहास करते हुए। हा-हा-हा, आ गया, आ गया मेरा काल—वह जिसे तुमने अभी देखा था स्वप्न में। स्वप्न का यथार्थ फल सदा विपरीत होता है, आर्ये। देखना, मैं अभी इसके बाल पकड़कर, इसे इन्हीं सीढ़ियों पर···हैं, यह क्या ! यह तो कन्या है, वसुदेव !

वसुदेव : हाँ, महाबली, इस बार स्वयं लक्ष्मी मेरी गोद में आई हैं।

कंस : लक्ष्मी ? हा-हा-हा ! नहीं, लक्ष्मी नहीं, यह चंडिका है। मेरा अमगलकारी काल है। इसे मार डालना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है, लाओ, इसे मुझे दो।

रानी : नहीं, नहीं, महाबली, ऐसा न करो। यह तो बालिका है। इसकी कोमल देह में इतनी शक्ति कहाँ कि यह तुम्हें पछाड़ सके। तुम्हारा कहना सच है। मेरा सपना सार्थक रहा। सपने में मृत्यु पाकर, आज तुम्हारी आयु के वर्ष चिर अमर हो गये। अब कोई तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगा।

कंस : (गरजकर)। चुप रहो। तुम इतनी शीघ्र भूल गईं, नारद की वह बात। कमल की पंखुड़ी को दिखाकर क्या कहा था उसने—'कौन जान सकता है कि इन

पंखुड़ियों में से कौन-सी पंखुड़ी आठवीं है! कौन जानता है कि यह नन्हीं बालिका, अपनी सुकोमल देह में, सिंहनी की-सी शक्ति नहीं भर लाई है।

वसुदेव : मैंने कभी तुमसे दया की भीख नहीं मांगी, कंस। अपनी किसी सन्तान के लिए, कभी तुमसे याचना नहीं की। आज इस कन्या की भीख मुझे दो, महाबली। यह, अबोध कलिका···

कंस : एक दिन मेरा काल बनेगी। लाओ, छोड़ दो···

रानी : (सिसकी भरकर) दया, महाबली, दया, यह तो कन्या है।

कंस : कन्या हो, या पुत्र—है तो वसुदेव की सन्तान। आकाशवाणी की वह चेतावनी मैं भूल नहीं पाता कि वसुदेव की आठवीं सन्तान, मेरी मौत बनकर जन्म लेगी। आज मैं भी देख लूं—किसने किसकी मौत बनकर जन्म लिया है।

वसुदेव-रानी : (एक साथ) दया, महाबली, दया।

कंस : दया? यह किस वस्तु का नाम है? महाबली के बलशाली व्यक्तित्व के आगे इस दुर्बल भीख का क्या मूल्य है! हट जाओ, रानी। छोड़ दो मेरा हाथ। मैं इसे एक ही प्रहार में···

[रानी चीख उठती है। पत्थर पर पटकने का शब्द। एक ज़ोर के पटाखे की ध्वनि। किसी नारी-कंठ की मधुर खिलखिलाहट।]

नारी का स्वर : (मानो कहीं दूर से बोल रही है) दुरात्मा, तेरे पापों का घड़ा, आज लबालब भर गया है। अरे, ओ पापी कंस, जीतकर भी तू हार गया। तेरी ही लौह शृंखलाओं ने तुझे हरा दिया, काल-पाश में फाँस

लिया। तेरा वैरी जन्म ले चुका है। तुझे मृत्यु-मुख में पहुँचाने वाला वह काल, इस समय अपनी माँ की बाँहों में सुख से झूला झूल रहा है। ले सुन···मैं तुझे क्षणिक दिव्य शक्ति देती हूं···सुन उस मंगलाचार को जो उस भुवनमोहन कान्हा का अभिनन्दन कर रहा है···

[नैपथ्य में ढोलक के संगीत की हलकी-सी ध्वनि उभरती है।]

रानी : (सिसककर)। उफ! महाबली मूर्छित हो गए।

वसुदेव : धरा पर लौट गया कंस। गर्व से गगन को छूने वाला तेरा ललाट आज धूलि को चूम रहा है, क्योंकि आज शिशु गोपाल ने जन्म लिया है।

रानी : (सिसककर) धन्य वह धरित्रि, धन्य वह देश—जहाँ स्वयं विष्णु ने अवतार लिया है।

[गीत के स्वर उभरकर स्पष्ट हो जाते हैं]

गीत : यशुदा के भये नन्दलाल,
बधावा लाई मालनिया।
यशुदा के भये नन्दलाल,
बधावा लाई···

यमुना के तीर

पात्र :

उर्मि—नवविवाहिता वधू

भुवन—उर्मि का पति

नारी—समाजलांछिता नारी

स्थान : यमुना का निर्जन तट

समय : सन्ध्या बीतने के बाद

पात्र-परिचय

उर्मि

नगर के विख्यात वकील की बेटी उर्मि ने अपनी माता के सारे गुण पाये हैं। ममता और माधुर्य से ओत-प्रोत, उसके निष्ठा तथा विश्वास भरे हृदय की दीप्ति से कान्तिमान उसके मुख का लावण्य भारतीय-सौन्दर्य का अनुपम प्रतीक है। आज तक उसने कभी दुःख नहीं पाया, कभी अभाव नहीं जाना। उसके किशोर हृदय ने आज तक सुनहली कल्पनाओं से खेलना ही जाना है। जीवन के दोराहे पर आकर, वह जिस नये पथ पर पैर रख रही है, उस पर दूर जहाँ तक दृष्टि जाती है, फूल बिछे हुए हैं। बावरी! कौन बताये उसे कि फूलों के नीचे सदा कांटे छिपे रहते हैं।

भुवन

इस नगर का यशस्वी डाक्टर है। उसकी आयु लगभग अट्ठाईस वर्ष है। वह जीवन के अनेक अनुभव प्राप्त कर चुका है। उसके निर्मम व्यावहारिक हृदय ने उसे कोमल कल्पना-शून्य बना डाला है। व्यर्थ भावुकता में बहना उसे पसन्द नहीं।

नारी

यद्यपि उसकी आयु अभी केवल उन्नीस वर्ष की है, परन्तु उसे जीवन का वह अनुभव प्राप्त हो चुका है, जिसे पाने की कामना कोई भी नारी नहीं कर सकती। मां ने उसे अपने आंचल से ढांककर, घर की सीमाओं

में बन्द करके रखा था। किन्तु यौवन की सुनहली किरणें तो मानो सूर्य की प्रखर रेखाएँ हैं, जो तनिक-सा छिद्र पाते ही भीतर प्रवेश कर जाती हैं। उसके जिस अल्हड़ भोलेपन का, माँ गर्व से अपनी पड़ोसिनों में बखान किया करती थीं, वही उसके लिए काल बन गया—ऐसा काल जिसने मृत्यु-दंड का कराल प्रहार कर के भी उसे जीवित रहने को मजबूर कर दिया। मृत्यु पाने की कामना करके भी वह मर न सकी, क्योंकि वह नारी थी—जो जीवन को जन्म देती है, उसे विनष्ट नहीं करती।

[यमुना की लहरें तट से टकरा-टकराकर शोर मचा रही हैं। पंछियों के मधुर गीत, और शिखी की पीऊ-पीऊ से वातावरण मुखरित हो उठा है। तभी वहाँ, उर्मि और भुवन की आमोदपूर्ण खिलखिलाहट गूँज उठती है।]

यमुना के तीर

भुवन : (विस्मित-से स्वर में) समय कितनी जल्दी बीत गया, उर्मि। जिस समय हम यहां आये थे, सूर्यास्त की सुनहली आभा से पश्चिम का आकाश रंगीन हो उठा था। अब उस गुलाबी आभा पर, चन्दा की रूपहली चांदनी पूरी तरह छा गई है।

उर्मि : (साँस खींचकर) काश ! बीते पलों को पुनः लौटा लेना सम्भव होता ! यदि ऐसा हो पाता,तो मैं आज की इन घड़ियों को, अपने आंचल में बांधकर रख लेती।

भुवन : (स्नेह से) ऐसा क्यों, उर्मि !

उर्मि : (लजाकर) यह भी क्या कुछ पूछने की बात है ! अपने ही मन से पूछ लो न।

भुवन : (कुछ हँसकर) मेरा मन तो यही कहता है कि जो पल बीत चुके वे विस्मृति में खो चुके। वे हैं, मानो कुछ बुझती चिंगारी—केवल किसी ज्वलन्त दीपशिखा की अवशिष्ट राख।

उर्मि : ऐसा न कहो, भुवन ! दीप का आलोक कभी मिटता नहीं। सच कह दो—क्या तुम आज की इन अनुभूतियों को भविष्य में कभी भूल सकते हो ?

भुवन : मेरी भोली उर्मि ! भविष्य की इतनी चिन्ता क्यों ? चन्दा-तारों भरी इस रात का यह जगमगाता आनन्द, क्या तुम्हें सब-कुछ भुला देने के लिए यथेष्ट नहीं ?

उर्मि : तुम सच कहते हो ! वह देखो—विकल यमुना, सागर से मिलने को आतुर हो, किस अधीर-आग्रह से आगे

बढ़ती ही जा रही है। नृत्य-विभोर मयूर को कैसे मुग्ध होकर देख रही है मयूरी ! ये तमाल-तरु प्यासे नयनों से, यमुन-जल पर डोलती अपनी छाया को कैसे निरख रहे हैं ! आओ, हम भी इन इठलाती लहरों पर झूलती अपनी परछाइयों में कुछ खोजकर, कुछ पा लें।

भुवन : (हलके से हँसकर) बावरी ! जब हम एक-दूसरे को देख सकते हैं, पा सकते हैं; तब परछाइयों में क्या खोजने जायें ?

उर्मि : अतीत का वह जीवन परछाईं बनकर ही रह गया है, भुवन ! फिर भी उसका एक-एक दिन, मेरी आँखों के आगे छाया-नृत्य कर रहा है। याद है वह दिन, जब प्रथम बार हम-तुम मिले थे ?

भुवन : हाँ। उस दिन सीढ़ियों से गिर पड़ी थीं तुम। तुम्हारे एक पैर की हड्डी टूट गई थी, असह्य पीड़ा से कराह रही थीं, तुम्हारे इन नयनों से जल ढुलक-ढुलक पड़ता था।

उर्मि : तुम्हारे दो बोल सुनकर ही मेरा भय भाग गया था। तुम्हारे शक्तिशाली हाथों को निपुणतापूर्वक प्लास्टर चढ़ाते देख, मुझे लगा था मैं वास्तव में ठीक हो सकूँगी। सारी ज़िन्दगी मुझे लंगड़ा लंगड़ाकर नहीं बितानी पड़ेगी।

भुवन : कितने धैर्य, कितने साहस का परिचय दिया था उस दिन तुमने ! मैं सोच भी नहीं सका था कि तुम्हारी इस कृश-काया में इतनी शक्ति भरी होगी।

उर्मि : तुमने महीने भर बाद प्लास्टर खोलने का आश्वासन दिया था। उस महीने का एक-एक दिन मेरे लिए युग-सम बन गया था। परन्तु महीने भर बाद जब तुमने एक्सरे लिया तो कहा, 'हड्डी अभी ठीक से जुड़ी नहीं है।

कम से कम दो सप्ताह और लगेंगे।'

भुवन : सुनकर मानो तुम्हारे धैर्य का बाँध टूट गया था। अपनी बहनों को चिढ़ाकर, उनकी आँखों में आँसू ला कर मैं सदा हँसा करता था; परन्तु उस दिन तुम्हारे नयनों से ढुलकती बूँदों को देख, मेरी आँखें भर आई थीं।

उर्मि : फिर भी तुमने अपने रूमाल से मेरे आँसू पोंछते हुए कहा था, 'उर्मि, मुझ पर विश्वास करो। तुम्हारा पैर अवश्य ठीक हो जायेगा। यदि न हुआ तो मैं अपना भी पैर तोड़ लूँगा।'

भुवन : और मेरी यह मूर्खता भरी बात सुन, तुम खिलखिला-कर हँस पड़ी थीं। जानती हो उस समय मेरा मन हुआ था कि तुम्हारे कपोलों पर ढुलकते उन आँसुओं को, अपने अधरों से उठा लूँ।

उर्मि : तुम्हारे मन की बात, तुम्हारे नयनों ने स्पष्ट कह दी थी, भुवन। उस समय न जाने कितनी लाज ने आ घेरा था मुझे। झट से आँसू पोंछ, मैंने सिर तक चादर तान ली थी। और तुम···तुम घबराकर बाहर भाग गए थे।

भुवन : परन्तु तुमने भागने कहाँ दिया ? पैर का प्लास्टर खुल जाने पर सभी ने देखा था कि तुम्हारा पैर बिलकुल ठीक हो गया है। परन्तु तुम्हें वहम था कि तुम्हारा पैर कमजोर हो गया है। नित्य इसी विषय पर घण्टों विवाद कर, तुम व्यर्थ मेरा समय विनष्ट किया करती थीं।

उर्मि : क्यों झूठ बोलते हो ? तुम स्वयं ही तो भाग-भागकर आया करते थे। और उस दिन मुझसे बिना पूछे ही, तुमने पिताजी से विवाह का प्रस्ताव कर दिया था।

भुवन : तुम्हारे मन की बात तुम्हारी आँखों ने गुपचुप जो कह दी थी, उर्मि।

उर्मि : चलो, हटो ! और पिताजी···वे सदा से प्रेम-विवाह के विरुद्ध थे; परन्तु तुमने न जाने क्या वशीकरण मंत्र चलाया कि उन्होंने किंचित् भी विरोध न किया।

भुवन : विरोध क्या करते ! कोई आवारा, निकम्मा, चरित्र-हीन लड़का होता तो मना करते। चिराग़ लेकर खोजते, तब भी उन्हें ऐसा सुयोग्य दामाद न मिलता।

उर्मि : (खिलखिलाकर) वाह रे, मियाँ मिट्ठू ! यह क्यों नहीं कहते कि मेरे समान विदुषी, प्रवीणा वधू पाना तुम्हारे पिता के लिए कठिन था। तभी तो उन्होंने चटपट विवाह रचा डाला।

भुवन : विवाह की तिथि तो तुमने ही निश्चित की थी, उर्मि। कल तुमने नव-वधू का शृंगार सजा था। मेरे दुपट्टे से, अपने आँचल की गाँठ बँधवाकर, अग्नि को साक्षी बनाकर, तुमने सदा-सदा के लिए बाँध लिया मुझे।

उर्मि : (शरारत भरे स्वर में) क्या यह बन्धन तुम्हें प्रिय नहीं ?

भुवन : सामने झूमते उस वृक्ष से पूछो—अंक में लहराती उस ललित-लता का बन्धन···

[दूर कहीं बाँसुरी की मीठी धुन बज उठती है]

उर्मि : सुनो···सुनो, कैसा है वह स्वर ?

भुवन : लगता है, जैसे कन्हैया अपने ब्रज की ममता भुला नहीं पाए हैं।

उर्मि : नहीं, भुवन, नहीं ! यह तो नटखट नन्दकिशोर की चपल मुरली के बोल नहीं। कितना करुण है यह राग !

मानो विरहिणी राधा, अपने कान्हा की खोज में भटक रही हो।

भुवन : तुम्हारी आँखों में आँसू ! अरी, बावरी ! किसी चरवाहे का बेटा होगा वह। समय काटने के लिए···

[मुरली की धुन बन्द हो जाती है]

उर्मि : सुनो ! वह रागिनि थम गई। रूठ गई मानिनि राधा ! रूठकर क्या लेगी अभागिन ! गौओं को रिझाने वाला वह गोपाल मथुरा जाकर राजकुमार बन गया। राजकुमारी रुक्मणि को पा, वह प्रथम प्यार को भूल गया!

भुवन : भूल तो राधा की ही थी। क्यों वह घर में पड़ी-पड़ी बिसुरती रही ? क्यों नहीं मथुरा जाकर उसने कृष्ण को अपनी याद दिलाई ?

उर्मि : तुम तो कहोगे ही ऐसा ! तुम भी पुरुष हो न ? भोली राधा क्या जानती थी कि उसके स्नेह का धन उसे यूँ भूल जाएगा। सुनो···सुनो···फिर वह करुण रागिनि।

[बंशी की धुन धीरे-धीरे समीप आती जा रही है।]

उर्मि : (व्याकुल स्वर में) वंशी की यह धुन, हमारा पीछा क्यों कर रही है, भुवन ? अभी तो हमारे सम्मिलित जीवन का प्रारम्भ भी नहीं हुआ। अभी से यह विरह-गीत क्यों ? यह कैसा अपशकुन !

भुवन : कितनी भावुक हो तुम, उर्मि ! विश्वास मानो, यह दैवी राग नहीं। किसी मानव के हाथों में सधी मुरली का स्वर है। आओ, ज़रा आगे बढ़कर देखें, यह कौन है ?

उर्मि : (उसकी बात अनसुनी करके) यमुने···कितनी केलि-क्रीड़ा की होगी श्याम ने तेरे श्याम अंक में···कितने

रास रचाए होंगे तेरे इस तट पर···संगिनि, क्या याद नहीं तुझे उस मुरलीधर का वह नटखटपन···कितनी मटकी फोड़ी होंगीं, उसने तेरे इस तट पर···कालिन्दी, तेरी लहर-लहर में समा गईं वंशी की वह रुचिर धुनें···

भुवन : उर्मि···

उर्मि : वँशी की वह मधुर धुनें, जिन्हें सुन, झूम-झूम जाता था ब्रज का पत्ता-पत्ता···तेरे इन तटवर्ती-तरु तले, थिरक-थिरक उठते थे, वे गोपकुमार-कुमारी···यमुने, क्या याद नहीं तुझे सखियों के वे हास, कान्हा के वे परिहास, राधा के नयनों में छिपा लज्जा का आभास···

भुवन : उर्मि···उर्मि, सुनो···

उर्मि : पाषाणी, उस भोले-भाले नटवर को अपनी गोद खिलाकर, दे दिया तूने उसे अपने जैसा ही श्याम-हृदय··· अरी, ओ ! ब्रज-बरसाने की समस्त मटकियों का दूध-छाछ लेकर भी तू रही काली की काली···तनिक भी गोराई न आई तेरे गात में···और दृष्टि की ओट होते ही, राधा को भुला दिया उस हठीले तात ने···राधा को, जिसके विरह-गीत से आज भी गोकुल की धरती काँप रही है। काँप रहा है गगन, वह नील सदन···

भुवन : उर्मि, कुछ मेरी भी···

उर्मि : श्-श्-श् ! चुप रहो, भुवन···! देखते नहीं यमुना की गति इस समय मानो रुक गई है। उसकी लहर-लहर इस करुण-रागिनि के संग रो रही है। समीर सहम गया है। वृक्षों का पत्ता-पत्ता, जड़-अचल हो उठा है··· कोयल अपनी बोली भूल गई है···देखो, उन मयूरों के नयन भी गीले हो उठे हैं। और···और, देखो···

देखो···वह कौन है ? मैं कहती थी न—वह राधा है ···युग-युग की वही पुरानी राधा···आँचल धूल में लोटता हुआ, केश बिखरे हुए, अंक में छाछ की गगरी छिपाये हुए, वह अपने कान्हा की खोज में भटक रही है···क्या नहीं सुनेंगे करुणानिधान उसकी करुण पुकार ?

भुवन : (घबराकर) क्या होश खो बैठी हो, उर्मि ! वह तो कोई पगली है। कहीं हमला न कर बैठे। चलो, हम चलें।

उर्मि : (कुछ हँसकर) पगली ? हाँ ! प्रेम पागल ही बना देता है, भुवन ! और फिर राधा ? वह तो मानो कृष्ण की श्वासों पर जीती थी।

भुवन : (व्याकुल स्वर में) चलो, उर्मि। चलो अब। रात बहुत बीत गई। अब घर चलना चाहिए। चलो, जल्दी।

उर्मि : ठहरो, भुवन। माँ राधा ने कृपाकर मुझे दर्शन दिए हैं, तो उनसे दो बातें कर लूं। ठहरो···मुझे अकेला छोड़कर तुम कहाँ जा रहे हो ?

भुवन : जाता हूँ, उर्मि। उधर सड़क के किनारे मोटर अकेली खड़ी है। देखूं, कहीं इस पगली ने पत्थर मार, उसकी खिड़की-शीशे न तोड़ दिए हों। आओ तुम भी। देर हो गई तो मां नाराज़ होंगी।

[भुवन के भागते पैरों की ध्वनि]

उर्मि : चले गए ? भाग गए ? एक निरीह नारी से डर गये? छिः ! भुवन ! मैं न जानती थी कि तुम इतने कायर हो। चलूं, देखूं, कौन है यह निर्भया। रात के अँधियारे में इस निर्जन सरिता-तट पर, यह अकेली

क्यों भटक रही है।

[बंशी का स्वर तीव्र हो एकाएक थम जाता है]

उर्मि : बहन, इस अँधियारे में यमुना के तीर क्यों भटक रही हो ? कौन हो तुम ?

नारी : मैं ?…यमुना के इसी तट पर हम खेला करते थे। वह वंशी बजाया करता था। एकटक उसकी ओर निरखते, मैं विभोर-सी सुना करती थी। उसके मुख से नित्य वही एक बात सुनते, मैं सच ही समझने लगी थी कि वह मेरा कृष्ण है, और मैं उसकी राधा हूँ।

उर्मि : और आज वह अभी तक नहीं आया ? तुम उसी की प्रतीक्षा कर रही हो ?

नारी : नहीं, सखी। प्रतीक्षा के दिन तो बीत गए। प्रणय के उन्माद में, मैं भूल गई थी कि कृष्ण कभी राधा का न हो सका। उस छिन भर के चितचोर का कुछ विश्वास नहीं। छलिया गोकुल छोड़कर जो गया तो फिर एक बार भी वापस नहीं आया।

उर्मि : भूलती हो, बहन। यह बैलों के कन्धों पर चलने वाले रथों का युग नहीं, कि अकेली राधा कृष्ण के समीप न जा सके। इस यन्त्र युग में, गगन की दूरी पलकों में पूरी होती है। मुझे उस छलिया का पता बता दो। उसे तुम्हारे चरणों में लाकर न पटक दिया तो कहना।

नारी : नहीं। वह कायर था, विश्वासघाती…आज मैं उसकी परछाईं भी नहीं देखना चाहती। पश्चात्ताप तो इस बात का है कि किसी ने मुझे कभी कुछ बताया क्यों नहीं। अवस्था आ जाने पर यदि मैं वह साधारण-सा आवश्यक ज्ञान पा जाती तो…तो…

[अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा देती है]

उर्मि : (भयाकुल स्वर में) उफ़ ! यह क्या ? तुम्हारी बाँहों में शिशु ?

नारी : हाँ, शिशु ! भगवान् ने नारी के शरीर में इतनी अक्षमता भर दी थी, तो उसे इतनी शक्ति भी क्यों नहीं दी कि वह पुरुष के प्रबल आक्रमण का विरोध कर सके ?

[शिशु के वक्ष में मुख छिपा वह सिसक उठती है।]

उर्मि : रो मत, बहन। रोने से क्या होगा ? अब तो प्रतिकार का केवल एक ही उपाय शेष है—वह नारकी जहाँ भी हो, उसे खोजकर लाना होगा। अपने इस भार को, उसे स्वयं ही वहन करना होगा।

नारी : (सिसककर) यह, केवल आकाश कुसुम है, सखी। जो आज से आठ महीने पूर्व ही इस शिशु की चुपके से हत्या कर डालने का दम्भ भरता था, वह आज इसकी रक्षा क्या करेगा ? उस पापात्मा के हाथ में, मैं अपने रक्त-बिन्दु को कदापि न सौंप सकूंगी।

उर्मि : चलो, तब तुम मेरे संग चलो।

नारी : तुम्हारे साथ ? पर तुम्हारा घर तो इसी नगर में है, न, जहाँ उस अधम के कदम घूमते रहते हैं। मैं वहाँ जाऊँगी, जहाँ कोई मुझे पहचान न सके। जैसे कि जमुना की इन जल-बूंदों में से प्रत्येक का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होते हुए भी कोई उन्हें अलग-अलग पहचान नहीं सकता, ऐसे ही मैं भी संसार में कहीं खो जाऊँगी।

उर्मि : तो फिर लौट जाओ, बहन। आधी रात यहाँ क्यों भटक रही हो ?

नारी : यमुना के इस तीर पर, इस बालुका के कण-कण में, किसी की स्मृति छिपी है, सखी। यहाँ कभी प्रेम-शिखा

जल उठी थी। अब शेष हैं, केवल बुझती चिंगारी।

उर्मि : सखी मेरी, अभागिन···

नारी : बुझती चिंगारी! हाँ, तुमने कभी देखी है, राख से ढकी चिंगारी। चिंगारी जब बुझ-बुझकर सुलगने लगती है; व्यथा उर में सौ-सौ करवटें बदलने लगती है, और उसके कँटीले दाह से, मानव जीवित हो, सौ-सौ मौत मर उठता है।

उर्मि : उस मृत्यु से निष्कृति पाने का केवल एक ही उपाय है, सखी! भूल जाओ उस गुमराह को जो दो दिन को तुम्हारा साथी बना था। दूसरी राह पर मुड़कर, अब तुम जीवन की नई मंज़िल खोज लो।

नारी : यही मैंने भी सोचा था। इसी उद्देश्य से, आज मैं अन्तिम बार इस तट पर आई थी। यमुना की इन लहरों से टकराकर, किसी दिन कन्हैया ने माँ यशोदा की सूनी गोद भर दी थी। आज मैं इसे, इस डोंगी में लिटाये जाती हूँ। कल यह भी किसी की सूनी गोद की शोभा बन जायेगा।

उर्मि : (दोनों हाथ फैलाकर)—तो इसे मुझे ही दे दो। मेरी भी गोद सूनी है, बहन।

नारी : (अविश्वास से) सच कहती हो?

उर्मि : देख नहीं रही हो, मेरे भाल पर सिन्दूर की यह रेखा, और मेरी यह सूनी बाँहें? विश्वास करो, माँ अपने शिशु को जितना प्यार कर सकती है, उतना ही स्नेह यह मेरे आँचल की छाया में पाएगा।

नारी : तो, बहन···लो। (शिशु का मुख चूमकर) मेरे लाल, तुझे जन्म देकर भी, मैं तेरी माँ न बन सकी। मेरे इस दुःख को, कोई क्या समझ सकेगा!

उर्मि : तुम्हारी व्यथा समझने का झूठा दम्भ मैं नहीं करूँगी, बहन। मैंने कभी दुःख नहीं पाया। फिर भी नवजात बछड़े के दूर हटा दिए जाने पर, मैंने गाय को रम्भाते देखा है। नवजात बच्चे को छू देने पर मैंने कुत्ते का गुर्राना सुना है। अपने सिर में तनिक-सी पीड़ा होते ही अपनी माँ के मुख पर घिर आई पीड़ा का अनुभव किया है। तुम निश्चिन्त रहो—तुम्हारे शिशु को माँ का अभाव कभी न खलने पाएगा।

नारी : (सिसककर) विदा···विदा, मेरे शिशु आ, जाने से पहले एक बार और तुझे गोद में ले लूं···एक बार और तेरा मुख देख लूँ···तेरी ये नन्हीं-नन्हीं उँगलियाँ बड़ी होकर कलम पकड़ेंगी, या कटार, यह आज कौन जान सकता है!

उर्मि : कुन्ती का कर्ण, सारथी की गोद में पलकर भी विश्व-जयी बना था, बहन। तुम्हारा बेटा, बड़ा होकर कुछ भी क्यों न करे, परन्तु वह तुम्हारा नाम कभी नहीं लजाएगा।

नारी : (सिसककर) मुझे तुम्हारा भरोसा है, बहन, अच्छा, मैं चली। विदा···

उर्मि : एक पल ठहरो। तुम्हारा नाम मैं नहीं पूछती। परन्तु जाने से पहले, इसके पिता का नाम बता दो। ईश्वर न करे, यदि कभी किसी कारण···

नारी : तो सुन लो, मैं तुम्हारी इच्छा में बाधा न डालूंगा। अब यह तुम्हारा है। इसका मंगल-अमंगल किसमें है और किसमें नहीं, यह भार भी अब तुम्ह रा है। इसके पिता का नाम है—डाक्टर भुवन। इसी नगर के विख्यात जौहरी खीमामल-काँचनमल का पुत्र है वह।

शिशु···अभागा, तू नहीं···अभागा है तेरा वह पिता, जो अपने-आपको तेरे मीठे प्यार से वंचित करना चाहता है···देख, वो आ रहा है, उधर से···

भुवन : तुम अभी तक यहीं खड़ी हो, उर्मि···आओ, जल्दी। हैं ! यह क्या ? तुम्हारे हाथों में क्या है ?

उर्मि : (व्यंग से हँसकर) वही, जिसे भूल से छाछ की गगरी समझा था।

भुवन : छि: ! किसी के पाप को अपनी बाँहों में सँभालते तुम्हें घृणा भी नहीं आई ?

उर्मि : पाप ? चलो, आज तुम्हें उसकी याद तो आई ?

भुवन : (क्रोध से) उर्मि ?

उर्मि : हाँ,भुवन, पाप-पुण्य की परिभाषा भूल, पुरुष ने स्वेच्छाचार किया; नारी पर अत्याचार हुआ; और उसका शिकार हुआ यह···यह अबोध शिशु !

भुवन : (खीझकर) क्या पागल हो तुम भी ? न जाने कहाँ से, किसका बच्चा उठा लाईं। अब इसे अनाथालय भेजने का झंझट करना होगा।

उर्मि : (व्यंग से) केवल अनाथालय ? यमलोक नहीं ?

भुवन : (क्रोध से कड़ककर) उर्मि ?

उर्मि : (हँसकर) आज मैं खूब समझ गई हूँ —जिसे शेर की दहाड़ समझा करती थी, वह केवल भेड़ का मिमियाना है। बता सकते हो, भुवन, इस शिशु में क्या दोष है ? संसार के अन्य बालकों से, यह किस बात में भिन्न है ?

भुवन : कविता बहुत हो चुकी, उर्मि ! रात बीत रही है। घर वाले चिन्तित होंगे। चलो, मोटर में बैठो।

उर्मि : सुनो, भुवन। सृष्टि के निर्माता केवल दो हैं—पुरुष

और नारी। नारी का काम है जन्म देना और पुरुष का लालन-पालन के साधन जुटाना। तुम मुझे कोई कारण बता सकते हो कि क्यों इसके पिता को इसका पालन-पोषण नहीं करना चाहिए ?

भुवन : (खीझ भरे स्वर में) ठीक तो है। यदि इसके पिता का नाम जानती हो, तो चलो, राह में इसे उसी के द्वार पर पटक देंगे, मुझे कोई आपत्ति नहीं।

उर्मि : (शिशु को आगे बढ़ाकर) तो, लो, संभालो, तुम ही इसके पिता हो। यह तुम्हारा ही पुत्र है।

[एकाएक वह सिसक उठती है]

भुवन : (व्याकुल स्वर में) उर्मि·· उर्मि !

[उर्मि केवल सिसकती रहती है]

भुवन : (अविश्वास से) तो यह सच है ? और···और इसकी माँ ?

उर्मि : (सिसकी भरकर) यमुना के तट पर से, यमुना की-सी लहरों में खो गई है वह।

भुवन : (हतबुद्धि हो) डूब गई···जल में समा गई···और तुम खड़ी-खड़ी देखती रहीं ? नारी होकर तुम नारी की व्यथा नहीं समझ सकीं ? उसे मौत से नहीं बचा सकीं ?

उर्मि : (सहसा तीखे स्वर में) हाँ, नारी हूँ। इसीलिए तो मैंने उसे नहीं रोका। क्या तुम मुझसे यह आशा करते हो कि अपने हाथों, मैं अपना सोने का संसार लुटा देती ? पल भर की भावुकता में भूल···

[वह फिर से सिसकने लगती है]

भुवन : उर्मि···उर्मि···यह तुम कह रही हो ? तुम ! नहीं। मेरी जो सरल स्नेहातुरा उर्मि थी, वह आज ईर्ष्या में

कहीं खो गई है। उसके स्थान पर खड़ी है केवल एक ···एक···

[सहसा भुवन भागने को पैर बढ़ा देता है]

उर्मि : (घबराकर) भुवन, ठहरो, भुवन···तुम कहाँ भागे जा रहे हो ?

भुवन : (अपना हाथ छुड़ाते हुए) न रोको। हटो, छोड़ दो मेरा हाथ। जान-बूझकर मैं उसे डूबने नहीं दे सकता। उस जल-समाधि में से उसे निकालना ही होगा।

उर्मि : (कसकर उसका हाथ पकड़ते हुए) ठहरो, भुवन। रुको···सुनो, मेरी बात। तुम गलत समझ रहे हो। देखती हूँ—उसी के शब्दों को दोहराकर, मैंने बड़ी भूल की।

भुवन : (ठिठककर) उसी के शब्द ?

उर्मि : हाँ। वह मरी नहीं। जिसमें इतना साहस था कि समाज की लांछना सहकर भी इस शिशु को जन्म दे सकी, वह मृत्यु की बात कैसे सोच सकती है ? वह अभागिन पराजिता अवश्य है, किन्तु कायर नहीं।

भुवन : (उर्मि को झकझोरकर) तब कहाँ है वह ? बोलो, बताओ, वह कहाँ है ?

उर्मि : उसकी आशा छोड़ दो, भुवन। जिस संसार में वह खो चुकी है, उससे, तुम उसे कभी नहीं खोज पाओगे।

भुवन : तुम झूठ बोल रही हो, केवल मुझे धोखा दे रही हो। जिससे कि···

उर्मि : नहीं, भुवन। मेरा विश्वास करो। अपने स्वार्थ के लिए मैं एक गृहस्थी कदापि विनष्ट नहीं कर सकती थी। यह सत्य है कि किसी दिन उसने अपने समस्त मन-प्राण से तुमको चाहा था। परन्तु तुम्हारे कपट पूर्ण छल ने

उसके उसी असीम प्रेम को अतीव घृणा में बदल डाला।

भुवन : यह असम्भव है। ऐसा नहीं हो सकता।

उर्मि : सत्य यही है, भुवन। आज वह तुमसे इतनी घृणा करने लगी है कि तुम्हारा मुख भी नहीं देखना चाहती। आज उसे स्वयं अपने से इतनी घृणा हो गई है कि वह किसी को अपना मुख नहीं दिखलाना चाहती। उसके सामने जाकर, उसकी व्यथा का भार और न बढ़ाना। भुवन।

भुवन : (भयाकुल स्वर में) उर्मि!

उर्मि : एक नारी के विषय में, नारी के वचनों पर विश्वास करो, भुवन। हम स्नेह करती हैं, तो अपने स्नेह के पात्र के लिए प्राण तक उत्सर्ग कर देने को प्रस्तुत हो उठती हैं, और यदि हम घृणा करती हैं, तो उस घृणा के पात्र के संसर्ग से बचने के लिए, हम स्वयं अपने हाथों अपने को मिटा देने के लिए सन्नद्ध हो उठती हैं। वह प्राण तज देगी, किन्तु अब तुम्हारा स्पर्श सहन न कर सकेगी।

भुवन : यदि यह सच है, यदि वास्तव में, मुझसे इतनी घृणा की जा सकती है, तो मैं संसार में किसी को अपना मुख दिखाने योग्य नहीं। सरिता की इस बहती धारा में ही, मुझे मुक्ति खोजनी होगी। हट जाओ, छोड़ दो मेरा हाथ···

उर्मि : (दृढ़ स्वर में) होश में आओ, भुवन। पागल न बनो। क्या तुम चाहते हो कि मैं सुहाग का अर्थ समझे बिना ही विधवा हो जाऊँ? कि यह नन्हा शिशु निपट अनाथ हो जाये, संसार में हमारा कोई सहारा, कुछ

आधार न रह जाये ?

भुवन : (कातर स्वर में) मैं संसार में किसी को सहारा देने योग्य नहीं, मुझे छोड़ दो, उर्मि। मेरे भाग्य में, मेरे इस निष्फल जीवन का यही अन्त लिखा है।

उर्मि : इस निष्फल जीवन को सफल बनाने वाले भी तो तुम ही हो, आज तुम प्रायश्चित्त की अग्नि में तप रहे हो, दहकती आँच में तपकर ही स्वर्ण निखरता है, यह तुम···

भुवन : शब्दों के जाल में मुझे न बाँधो, उर्मि। आज ही तो मैं वास्तव में अपने को ठीक से पहचान पाया हूँ। क्या तुम चाहती हो कि किसी दिन मैं तुम्हें भी धोखा दूँ···

उर्मि : भुवन, सुनो···

भुवन : (अधीरता से) तुम्हें भी धोखा दूँ, तुमसे भी छल करूँ। यमुना के तीर तुम भटकती रहो, और, मैं··· मैं ? देख रही हो, सामने फूल-फूल मँडराती उस तितली को ? एक पुष्प की सुगन्ध का आनन्द लेकर, दूसरे पर उड़ जाना, छिः। इसी तरह···नहीं, नहीं। यमुना की इस सुशीतल गोद में ही अब मुझे शान्ति मिल सकेगी। छोड़ो, छोड़ो, मुझे छोड़ दो।

उर्मि : (सहज स्नेह से) दुःख के तनिक-से आघात से इतने पागल न बनो, भुवन ! अभी आधा घण्टे पूर्व, जिसका तुम्हें ध्यान भी नहीं था, उसी के लिए सहसा तुम्हारे मन में इतना प्रेम जाग गया कि उसे खोकर तुम जीवित भी नहीं रहना चाहते।

भुवन : प्रेम ? नहीं···आज खोजने पर भी, मुझे अपने हृदय में उस मोह को कहीं कोई चिह्न नहीं मिलता। फिर भी मुझे कुछ ऐसा लग रहा है कि आज के दिन जब

कि मैं जीवन के इस दोराहे पर आ खड़ा हुआ हूँ, भगवान् ने उसे मेरे पथ के बीच पहुँचाकर, मुझे राह सुझाने का प्रयत्न किया है······

उर्मि : यह तुम्हारे मन की भ्रान्ति नहीं, भुवन, यह सत्य है। इस शिशु को तुम्हारी गोद में डालकर, आज वह तुम्हें एक नया पाठ पढ़ा गई है। 'तुम स्वयं जीवित रहो, और उसे भी जीवित रहने दो···आज वह तुम्हें यही मंत्र सिखा गई है।

भुवन : शायद···शायद तुम्हारा कथन ही ठीक है। परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि जीवन के इस अध्याय तक पहुंच जाने पर अब मैं यह नया पाठ सीख सकूंगा। भँवर बनकर फिर कहीं उड़ जाने से मुझे कौन रोक सकेगा ?

उर्मि : (मीठे स्वर में) रोकने वाला भी है, भुवन !

भुवन : (व्यंग से) कौन ? तुम !

उर्मि : नहीं। यह नन्हा शिशु। इसके निष्पाप नयनों में झाँक कर देखो—उनमें कितनी सरलता भरी है। इसकी असहायता, इसकी निर्बोधता, इसकी कोमलता का अनुभव करो, भुवन। सहज में अपना सारा भार तुम्हारे ऊपर डालकर, यह कितना निश्चिन्त हो गया है।

भुवन : मुझ पर ? नहीं, नहीं। तुम पर।

उर्मि : (मुस्कराकर) इसके डगमग करते नन्हे-नन्हे पग, जब घर की धरती पर डोल उठेंगे; जब सूने घर के कोने-कोने में इसका रुदन और हास छा जाएगा; तब तुम्हें पता लगेगा कि इस विश्व में प्रीति और विश्वास के अतिरिक्त कहीं कुछ शेष नहीं।

भुवन : नहीं, उर्मि, मकड़ी के तार की भाँति नाज़ुक है यह

सहारा। मुझे विश्वास नहीं होता, कि इस कोमल तन्तु के तार में बँधकर, मैं जीवन-पथ पर चल सकूँगा, आगे बढ़ सकूँगा।

उर्मि : तुम्हें सहारा देने के लिए मैं भी तुम्हारे साथ हूँ, भुवन।

भुवन : (विस्मय तथा अविश्वास से)···तुम! तुम क्या सच्चे मन से कभी मुझे क्षमा कर सकोगी? क्या फिर कभी वही पुरानी प्रीति···

उर्मि : तुम्हारे पथ पर बिछा सकूँगी? क्यों नहीं, भुवन? जिसके निकट तुम सब से अधिक अपराधी थे, जब वही तुम्हें यों क्षमा कर गई, तब···क्या तुम समझते हो कि उस महिमाशालिनी महीयसी से मैंने कुछ भी नहीं सीखा?

भुवन : तब चलो, उर्मि। तुम्हारा सहारा पाकर मैं चलता रहूँगा।

उर्मि : हमारे पथ पर किसी के त्याग का दीप जलता रहेगा। नित्य-प्रति अधिकाधिक बढ़ते उसके ज्योतिपुंज आलोक में प्रकाशित रहेगी वह राह, जो सरल है, बाधाहीन है, निष्पाप है···

भुवन : चलो, उर्मि।

उर्मि : चलो। लो सँभालो अपने इस खिलौने को। (दूर कहीं वंशी बज उठती है, और साथ ही किसी नारी का करुण स्वर लहराता आता है)

गीत : कहन लगे मोहन मैय्या मैय्या,
पिता नन्द सों, बाबा बाबा,
औ यशुमति को मैय्या।
कहन लगे······

[भुवन और उर्मि एक-दूसरे की ओर देखकर मुसकराते हैं। उर्मि की हँसती आँखों में गीले आँसू हैं,जिन्हें भुवन हाथ बढ़ा हल्के से पोंछ देता है।]

निन्यानवे का चक्कर

पात्र :

शील : एक अठारह-वर्षीया किशोरी
चन्द्रा : शील की माँ
सुखिया : चन्द्रा की नौकरानी
मिस रिज़वी : मुस्लिम लेडी डॉक्टर
मिस चैटर्जी : बंगाली लेडी डॉक्टर
मिस मिराजकर : इंगलैंड रिटर्न लेडी डॉक्टर

समय :

दोपहरी के कुछ बाद ।

पात्र-परिचय

शील

अठारह-वर्षीया शील, अपनी माता की इकलौती बेटी और उसकी समस्त धन-जायदाद की वारिस है। उसके किशोर मन में यौवन-सुलभ कोमल भावनाएँ हैं। कल्पना की सुनहली-रुपहली रूपरेखाएँ हैं। अपनी माता के प्रति उसे असीम प्रेम है, और उनके लिए वह सहर्ष अपना जीवन भी अर्पित कर देने को प्रस्तुत है। यह सुन्दर, आधुनिका किशोरी बी० ए० की छात्रा है, किन्तु इधर कुछ दिन से बीमारी के कारण उसका कालेज जाना छुटा हुआ है। दिन-रात शैय्या में पड़े रहने के कारण मुख की कान्ति कुछ श्रीहीन हो गई है।

चन्द्रा

नगर की सम्भ्रान्त महिला हैं। पति की मृत्यु हो जाने के बाद से, उनका सारा कार्य-व्यापार उन्होंने अपने हाथों में संभाल लिया है। समाज में उच्च स्थिति होने के कारण उन्हें सामाजिक कार्यों से अवकाश नहीं मिल पाता। सदा कोई न कोई घेरे रहता है। अपनी स्थिति के अनुसार सुन्दर रेशमी वस्त्र पहनने का उन्हें शौक है। नाक में हीरे की छोटी-सी लौंग, कानों में हीरे के टॉप्स, कण्ठ में सच्चे मोतियों की दोहरी माला और मोती की ही चूड़ियाँ वे सदा पहने रहती हैं। बालों के जूडे में फूल लगाना और अधरों पर हलकी-सी लिपस्टिक लगाना भी नहीं भूलतीं। उनकी कार्यकुशलता, योग्यता व चतुरता की सारे नगर में धाक है, किन्तु जहाँ उनकी बेटी का प्रश्न सामने आता है, वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठती हैं।

मिस रिजवी

कुशल लेडी डॉक्टर हैं। नगर में उनका मान-सम्मान है। भगवान्

में उनका अखण्ड विश्वास है, शायद यही कारण है कि मध्यवर्गीय घरानों में, उनका अधिक आदर होता है । वे अधिकतर सलवार, कमीज़ ही पहनती हैं। कालेज की विद्यार्थिनियों की तरह दुपट्टा उनके वक्ष पर ही पड़ा रहता है । अपना सफेद कोट पहन लेने पर वे डाक्टर-सी लगती हैं, नहीं तो प्रथम दृष्टि में देखने पर कोई उन्हें किसी भद्र घर की महिला ही समझ सकता है । शरीर से तनिक स्थूल हैं । फैशन के प्रति उन्हें अरुचि है । उनकी कुछ अपनी मान्यताए हैं, और उन्हें उन्हीं के अनुसार चलना पसन्द है । बात करते समय, बीच-बीच में अपनी ऐनक उतारकर, रेशमी रूमाल से उसके शीशे रगड़ने की उनकी पुरानी आदत है। आयु उनकी लगभग पेंतीस वर्ष है ।

मिस चटर्जी

हँसमुख, विनोदी स्वभाव की बंगाली महिला हैं। रंग-रूप सुन्दर है । अत्यन्त आधुनिका होते हुए भी साड़ी बंगाली रीति से ही बाँधती हैं, जो उनके इकहरे शरीर पर बड़ी सुन्दर लगती है । अभी नई-नई डॉक्टरी आरम्भ की है, अतः उन्हें अनुभव अधिक नहीं, किन्तु अन्य डाक्टरों का सहयोग ले, वे इस त्रुटि की पूर्ति कर लेती हैं। अपने कालेज जीवन में उन्होंने किसी साथी युवक से प्रेम किया था । नगर में सभी जानते हैं कि शिक्षा पूर्ण कर उसके विलायत से लौट आने पर उन दोनों का विवाह होगा । वह युवक पंजाबी है, अतः वेचारी हिन्दी बोलने की पूरी कोशिश करती है, किन्तु शैशव से अभी तक बंगाल में ही रहने के कारण उनकी बोली पर जो बंगाली पुट है, वह सहज ही छूट नहीं पा रहा है । आयु लगभग छब्बीस वर्ष है ।

मिस मीराजकर

अभी हाल में ही इंगलैंड से डॉक्टरी की विशेष शिक्षा प्राप्त कर लौटी हैं। साड़ी पहनने में उन्हें उलझन लगती है। सिल्क का ब्लाउज़ और सुन्दर रंगीन ट्राउज़र्स पहनती हैं। बौबकट बाल कन्धों पर लहराते रहते हैं । उनकी चाल-ढाल में, भावभंगी में, इंगलैंड की छाप है। यहाँ

तक कि वे हिन्दी के पूर्ण शुद्ध वाक्य भी नहीं बोल पातीं। बीच-बीच में अनायास ही अंग्रेज़ी के शब्द बोल जाती हैं। निन्यानवे के चक्कर ने उन्हें डॉक्टर तो अवश्य बना दिया है, किन्तु डाक्टरी की अपेक्षा उन्हें घूमना-फिरना और गप्पें ठोकना ही अधिक रुचिकर लगता है। अभी नई-नई प्रैक्टिस प्रारम्भ की है, किन्तु 'इंग्लैण्ड रिटर्न' होने के कारण, नगर में उनका विशेष मान-सम्मान है। आयु उनकी लगभग अट्ठाईस वर्ष है।

सुखिया

सीधी-सादी अनपढ़ नौकरानी है। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य और उद्देश्य अपनी स्वामिनी को सुखी रखना है। काम तत्परता से भाग-भागकर करती है। काम में यदि कुछ भूल हो जाती है, तो यह उसका दोष नहीं, उसके सरल और सीधे स्वभाव का दोष है। परिश्रमी और ईमानदार है। उसकी आयु लगभग बीस वर्ष है।

[शील का शयन-कक्ष। आधुनिक रीति से सजा हुआ है। दीवारों पर कुछ उसके अपने बनाये हुए चित्र टँगे हुए हैं। कोने वाली खिड़की के पास, पूरे शीशे की ड्रैसिंग टेबिल है, जिस पर प्रसाधन की सामग्री सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाकर रखी गई है। कमरे की खिड़कियों पर हलके धानी रंग के पर्दे हैं, जो नीचे बिछे कालीन और मेज़पोश तथा कुर्सी कवर आदि से मेल खाते हैं। कमरे के बीचोंबीच में शील का पलंग पड़ा हुआ है। सिरहाने छोटी-सी मेज़ है, जिसपर थर्मामीटर, दवा का गिलास, छोटी-छोटी दवा की दो-तीन शीशियाँ आदि रखी हुई हैं। एक कोने में शील की पढ़ने की मेज़-कुर्सी और पास ही किताबों की अलमारी है। वस्तुओं पर यद्यपि धूल का नाम नहीं, किन्तु उनके रखे जाने के ढंग को देखकर ही कहा जा सकता है कि इधर कुछ दिन से उनका उपयोग नहीं किया जा रहा है।

इस समय दिन का डेढ़ बजा है। शील अपने पलंग पर हलकी-सी चादर गले तक ओढ़े लेटी है। छत का पंखा धीरे-धीरे घूम रहा है। शील की निगाहें उसी पर टिकी हुई हैं।

समीप ही आरामकुर्सी पर बैठी चन्द्रा कोई उपन्यास पढ़ रही है।

एकाएक शील करवट बदलकर हलके-से स्वर में, धीरे-से कराह उठती है। चन्द्रा के हाथ से पुस्तक छूट पड़ती है और मुख-पर वेदना की रेखाएँ उभर आती हैं—कैसा है यह निन्यानवे का चक्कर, जिसने उसकी बेटी को यों फाँस लिया है। कब यह समाप्त होकर नॉर्मल पर आएगा? चन्द्रा के मन में निरन्तर घुमड़ने वाले इस प्रश्न का उत्तर क्या डाक्टरों के पास भी नहीं है?]

निन्यानवे का चक्कर

शील : (कराह कर) माँ···आह ! माँ···

चन्द्रा : (घबराकर) शील, कैसी तबियत है, बेटा ?

शील : बुखार तो आज भी नहीं उतरा, माँ !

चन्द्रा : न जाने कब उतरेगा ! इस बीमारी ने मेरी भूख-प्यास सब छीन ली है। ये कमबक्त डॉक्टर भी बस सिर्फ़ रुपये लेने के मरीज़ हैं। मेरा बस चले तो···

शील : गुस्सा न करो, माँ !

चन्द्रा : गुस्सा कैसे न करूँ, बेटी ? सोचती थी तेरा विवाह कर छुट्टी पा लूँगी। अपना बाकी जीवन तीर्थयात्रा में बिताऊँगी। लेकिन यहाँ तो बस, चिन्ता, चिन्ता, चिन्ता। कभी तेरे सिर में दर्द है, कभी कमर में पीड़ा, कभी पेट में शूल···

शील : माँ, तुम इतनी चिन्ता क्यों करती हो ? डॉक्टरों का इलाज तो हो ही रहा है।

चन्द्रा : बेटी, तू क्या जाने मेरे दिल का हाल ? कैसी आग-सी जलती रहती है, हर दम मेरे मन में !

शील : माँ !

चन्द्रा : शाम-सबेरे आँचल फैलाकर अपने भगवान् से भीख माँगती हूँ—'हे मंगलमय, मेरी शील को जल्दी से अच्छा कर दो। वह भली-चंगी हो जाये। उसके सब रोगों को दूर भगा दो। मैं धूमधाम से उसका विवाह करूँ। मेरे द्वार पर शहनाइयाँ बजें। यह आँगन

फुलझड़ियों से भर जाये। ऊँचे घोड़े पर बैठकर, हीरे की कलगी लगाकर, सुन्दर-सा दूल्हा मेरे द्वार पर···

शील : (कराहकर) माँ!

चन्द्रा : क्या हुआ बेटी? बोल न? बोलती क्यों नहीं? हाय! तू सफ़ेद क्यों पड़ती जा रही है? सुखिया, अरी ओ सुखिया,······

सुखिया : (कहीं दूर से) आई, मालकिन।

[सुखिया का प्रवेश]

चन्द्रा : देख सुखिया, मेरी शीला को क्या हो गया! जा, जल्दी से अनार का रस तो ला।

[द्वार पर खट-खट] [सुखिया जाती है।]

चन्द्रा : आई कमबख्ती! आने वालों को यह नहीं सूझता कि बेटी बीमार है। दो घड़ी तो मुझे उसकी खटिया के पास बैठ लेने दें। ना, भला यह कैसे होगा! काम, काम, काम···मानो दुनिया के सारे कामों का ठेका मैंने ही ले रखा है! आज विधवाश्रम का उद्‌घाटन है, कल बालिका विद्यालय में जलसा। और कुछ नहीं तो ये अभागे चन्दा माँगने वाले ही···

[सुखिया का प्रवेश]

सुखिया : महिलामंडल की सिकटरी साहेबा आई हैं, मालकिन।

चन्द्रा : (व्यंग्य से) सिकटरी साहेबा आई हैं। बस एक यही वक्त मिला था उन्हें आने को? मालूम नहीं, मेरी बेटी कितने दिनों से बीमार है? जा, जा, कह दे उनसे, आज मिलना नहीं हो सकेगा। बिटिया रानी की तबियत ठीक नहीं।

शील : (कराहकर) सुन आओ, माँ। कुछ जरूरी काम

होगा, तभी तो···

चन्द्रा : तेरी बीमारी से बढ़कर जरूरी काम और कौनसा होगा, बेटी ? ले, माँ के हाथ से दो-चार दाने अनार के खा ले। लाना तो सुखिया।

सुखिया : जी, अभी लाई मालकिन।

[सुखिया जाती है।] [अनार ले आती है।]

शील : नहीं, माँ, मुझे भूख नहीं।

चन्द्रा : न सही भूख। ले माँ के हाथ से आज बिना भूख ही खा ले, बेटी।

शील : रख दो, माँ ! मैं अभी थोड़ी देर में खा लूँगी।

चन्द्रा : माँ की बात नहीं मानेगी, बेटी ?

शील : (कुछ गुस्से से) लेकिन जब मुझे भूख ही नहीं है ···(माँ का दुखी चेहरा देखकर) अच्छा, लाओ, जब तुम नहीं मानतीं तो···

चन्द्रा : तू मेरी बात माने, तो मैं तेरी बात क्यों न मानूँगी भला? तू बात नहीं सुनती, उदास पड़ी रहती है, तो मेरा रोम-रोम दुखने लगता है। तू हँसा कर बेटी। खुश रहा कर। सौ रोगों की एक दवा हँसी है। ज़रा हँस तो दे।

शील : (ज़रा-सा हँसकर) माँ तुम तो बस···

चन्द्रा : (अपने हाथ से अनार खिलाते हुए) मेरी बेटी तो बड़ी रानी है। अब वह झटपट अच्छी हो जायेगी। मैं धूम-धाम से उसका विवाह करूँगी। मेरे द्वार पर शहनाइयाँ बजेंगी···

शील : (एकदम कराहकर) माँ···

चन्द्रा : (घबराहट में अनार की प्लेट हाथ से छूट जाती है) अरे ? यह बार-बार क्या हो जाता है, तुझे ? क्यों

तू बार-बार सफेद पड़ जाती है ? सुखिया···अरी ओ सुखिया !

सुखिया : (कहीं दूर से) जी अभी आई मालकिन।

चन्द्रा : (ज़ोर से) अरी ओ आई की दादी। डॉक्टर नहीं आई अभी तक ?

[सुखिया का प्रवेश]

सुखिया : जी, डॉगदरनी साहेबा ने तीन बजे आने को बोला था, मालकिन ।

चन्द्रा : (क्रोध से) तीन बजे···तीन बजे···मरीज चाहे दर्द से तड़पता रहे। चाहे उसका दम निकलता रहे, लेकिन डॉक्टरनी साहेबा को दोपहर की नींद में खलल न पड़े ? मेरा बस चले तो···

[द्वार पर खट-खट]

सुखिया : लो वे डॉगदरनी साहेबा आ गईं शायद।

चन्द्रा : अरी, कमबख्त, तो खड़ी-खड़ी मेरा मुंह क्या ताक रही है ? जा, जा, उन्हें जल्दी से अन्दर बुला ला।

सुखिया : जी, मालकिन।

[जाती है]

चन्द्रा : शील, तू साफ़-साफ़ क्यों नहीं कह देती इस डॉक्टरनी से कि इस दवा से तुझे कुछ फायदा न होगा। कितने दिन से तू बीमार है ? ऐसी दवा किस काम की जो··· (सुखिया के संग डॉक्टर का प्रवेश)···

चन्द्रा : (सहसा स्वर बदलकर) आइये, आइये, डॉक्टर।

मिस रिजवी : सलाम वालेकुम। कहिये। मरीज़ का क्या हाल है ?

चन्द्रा : देखिये, आज इसका टैम्परेचर फिर 99.4 हो गया। भूख भी नहीं लगती। सिर भी दुखता है, पेट में रह-रह कर शूल-सा उठता है।

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है, फिकर की बात नहीं है। फिकर नाहीं करना। फिकर करने से बुखार ज्यादा ज़ोर पकड़ता। हम अभी नई दवा तजवीज करता।

चन्द्रा : डॉक्टर, कब तक पीनी पड़ेंगी ये दवायें? कब तक उतरेगा यह बुखार? कितने दिन तो बीत गये इसी चिन्ता में!

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है, फिकर की बात नहीं है। खुदा से दुआ माँगो। खुदा सबकी सुनता है।

चन्द्रा : खुदा मेरी नहीं सुनता, डॉक्टर! चिन्ता के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। उधर इसके विवाह के दिनपास आतेजा रहे हैं, इधर यह दिन-दिन दुबली होती जा रही है। इस वर्ष इसे बी०ए० की परीक्षा भी देनी है।

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है, सब होगा। वक्त-वक्त पर सब काम होगा। खुदा बड़ा कारसाज़ है। अल्लाताला से दुआ कीजिये। आपकी बच्ची फौरन से पेश्तर दुरुस्त हो जायेगी। मिस शील, तुम दवा लिया था?

शील : जी डॉक्टर।

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है, अल्लाताला का फज़ल है। तुम फल खाया था?

शील : नहीं डॉक्टर। मुझे भूख नहीं लगती।

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है। फिकर की बात नहीं है। (चन्द्रा से) डॉक्टर मीराजकर ने आज इनको देखा?

चन्द्रा : आज तो वह नहीं आये।

मिस रिजवी : मिस चटर्जी आया था?

चन्द्रा : जी, वे भी नहीं आईं।

मिसरिजवी : क्यों नहीं आया? आपने बुलाया ही नहीं होगा। उन दोनों को अभी फौरन बुलाना होगा।

चन्द्रा : लीजिये, अभी लीजिये। सुखिया, जा झटपट, भागकर जा।

सुखिया : अभी जाती हूँ, मालकिन।

[झटपट जाती है]

चन्द्रा : डॉक्टर, जो कुछ आपने कहा, मैंने सब किया। तीन-तीन डॉक्टरों को फीस दी। फिर भी इसकी दशा नहीं सुधरती! क्या सोचा था, क्या हो गया! इसका विवाह कर देती तो मुझे संसार के झगड़ों से छुटकारा मिल जाता। आनन्द से सारे देश की तीर्थ-यात्रा करती। पर चिन्ता तो चिता की तरह, मुझे तिल-तिल कर जला रही है।

मिस रिजवी : खुदा बड़ा नेक है, रानी साहेबा, बड़ा रहमदिल है। वह सबकी खबर रखता है। उस परवरदिगार पर भरोसा रखिये। आप फिकर मत करिये। आपकी बेटी···

चन्द्रा : फिकर कैसे न करूँ, डॉक्टर? अब मेरा मन इस दुनिया से ऊब गया है। मैं इसके झगड़ों से छुटकारा पा जाना चाहती हूँ। शील मेरी अकेली बेटी है। आँचल में छिपाकर, अपनी साँसों से जिलाकर, इसे इतना बड़ा किया था। लेकिन यह रोज़ बीमार रहने लगी। अपनी साँसों के बुझने से पहले अगर मैं इसका विवाह कर जाती···

मिस रिजवी : अल्लाह रहम करे! खुदा के वास्ते मरने-जीने की बात जबान पर न लाइये, रानी साहेबा! खुदा आपको और आपकी बच्ची को हज़ारहा साल की उम्र दे···

[बाहर हॉर्न की आवाज़]

मिस रिजवी : ये लीजिये। डॉक्टर आ गईं शायद।

सुखिया : डॉगदरनी साहेबा की मोटर तो रास्ते में ही मिल गई मालकिन।

[सुखिया के संग-संग दोनों डॉक्टरों का प्रवेश]

डॉ० मीराजकर : गुड ईवनिंग रानी साहेबा, गुड ईवनिंग डॉक्टर। आई वाज़ इन दि वे। क्या रोगी की दशा कुछ अधिक चिन्ताजनक है ? गुड ईवनिंग, मिस शील।

मिस चटर्जी : नौमश्कार, नौमश्कार, मिंश शाब। आपका तोबियत आजु केशा है ?

मिस रिज़वी : ठीक है। ठीक है। फिकर की बात नेईं है। रानी साहेबा बहुत घबरा रही थीं, इसीलिए···

मिस चटर्जी : आज का टैम्परेचर कितना रहा ? (हाथ में थर्मामीटर लेकर) ओह ! दुई ठो पाइन्ट जासती है ? 99.4 ?

चन्द्रा : यही तो समझ में नहीं आता, डॉक्टर ! वक्त पर दवा पिला दी थी, फिर भी बुखार क्यों बढ़ गया ?

शील : (कराहकर)···मेरे पेट का दर्द (आह भरते हुए) डॉक्टर, मेरे पेट का दर्द कुछ बढ़ गया है।

मिस चटर्जी : हाँ, शो बोढ़ना तो नेंई चाहिए। इशकी दोवा भी दे दिया गया था।

शील : वह दवा सुबह चार बजे की थी। मुझे नींद आ गई थी, इसलिए मैं उसे पी नहीं सकी।

मिस चटर्जी : आछा, आछा, जागाना ठीक नेईं था। शो तो ठीक ही रेहा।

डॉ० मीराजकर : लेकिन जागने पर तो मैडिसन लेना था, जी। मैडिसन नैगलैक्टेड, इम्प्रूवमैन्ट नैगलैक्टेड।

चन्द्रा : अच्छा, डॉक्टर, अब कोई नई दवा दे दीजिए, जिससे मेरी बेटी जल्दी से···

मिस चटर्जी : तुम फ़िज़ूल घोबराता है। घोबराने से रोगी की

तबियत और जासती खोराब होता है।

चन्द्रा : मैं कहाँ घबराती हूँ, डॉक्टर? लेकिन बस अब आप इसे जल्दी से अच्छा कर दीजिए।

डॉ० मीराजकर : आप विश्वास रखिए। हैव फेद ऑन अस। डॉक्टर चटर्जी कितना विद्वान् है। हज़ारों रोगी इनके हाथों इलाज पा चुके हैं। और मिस रिज़वी ? ओह! ऐव्री बडी नोज़ हाऊ टेलेटेन्ट शी इज़।

मिस रिज़वी : ठीक है, ठीक है। डॉक्टर मीराजकर की दवा में लुक़मान का असर है, और ज़बान में शकर का सरूर। आप हमारे ऊपर पक्का इत्मीनान रखिए। ग़रूर की बात नहीं, अपकी बेटी की ज़िन्दगी, हमारे हाथों में महफ़ूज़ है। अल्लाताला उसको बहुत जल्द सेहत बख्शेगा।

[सुखिया का तेज़ी से प्रवेश]

सुखिया : रानी साहेबा···रानी साहेबा।

चन्द्रा : (गुस्से से झिड़ककर) क्या है?

सुखिया : मालकिन, सिकटरी साहेबा आपको याद कर रही हैं। बोलती हैं, बड़ा ज़रूरी काम है।

चन्द्रा : नहीं, नहीं, कह दे उनसे। इस समय मैं हरगिज़ नहीं मिल सकती। मेरी बेटी की तबियत ठीक नहीं है।

डॉ० मीराजकर : नो, नो, जी। दैट्स नॉट राइट। आप अपना काम कर आइए। हमें भी कुछ म्यूचुअल कन्सल्टेशन करना है।

शील : जाओ, माँ।

चन्द्रा : अच्छा, तो डॉक्टर, मैं जाती हूं। सुन ही आऊँ, वे क्या कह रही हैं···(जाते-जाते लौटकर) देखिए आप लोग खूब होशियारी से कन्सल्टेशन कीजिएगा। कहीं कुछ कमी न रह जाए।

मिस रिज़वी : ठीक है, ठीक है। फ़िकर नाहीं करना। खुदा के इक़बाल से, हम मशविरा करने में कुछ कसर नहीं छोड़ेंगे।

डॉ० मीराजकर : आप निश्चिन्त रहिए। हम बड़ी सावधानी से कन्सल्टेशन करेगा।

मिस चटर्जी : फ़ारक़ पाड़ने नाई शाकता।

चन्द्रा : तो बेटी, मैं जाऊँ। ज़रा उसकी बात भी सुन आऊँ।

शील : जाओ माँ, मेरी तबियत कुछ इतनी बुरी भी नहीं है।

चन्द्रा : (खुश होकर)...ऐसी बात, हमेशा बोला कर न बेटी। जब तू ऐसी बात बोलती है, तो मेरा मन खुशी से जगमगाने लगता है। अच्छा तो मैं जाती हूँ।

[चन्द्रा चली जाती है।]

डॉ० मीराजकर : अच्छा, तो मिस शील, मैं ज़रा तुम्हें एक्ज़ामिन कर लूं ?

[स्टेथस्कोप लगा कर शील को देखते हैं।]

मिस रिज़वी : (कुछ सोचते-से स्वर में) मेरे ख़याल में तो इस बीमारी का कोई ख़ास सबब ज़रूर होना चाहिए।

मिस चटर्जी : हाम तो काल जाँच लिया था। ऐशा कोई बात नेंई।

डॉ० मीराजकर : ओह, यस ! नथिंग सीरियस। (स्टेथस्कोप रखकर शील की नब्ज़ थामते हुए) मिस शील, आपके पेट में दर्द होता है ?

शील : जी हाँ। कभी-कभी।

मिस चटर्जी : दारद किश खाश जागा शे निकोलता है ?

डॉ० मीराजकर : आई मीन टु से, किस ख़ास जगह से शुरू होता है ?

शील : इधर से उठकर, इधर से घूमकर, उधर को चलकर, यूँ चक्कर खाकर, इधर से ऊपर को उठ जाता है।

[कराहती है।]

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है। फ़िकर की बात नेईं है। कल तुमने क्या खाया था ?

शील : वही जो आपने बताया। फ्रूट जूस और बार्ली वाटर।

मिस चटर्जी : अच्छा, मिस शील, ये दारद डाओने शाइड, या बायाँ शाइड ?

डॉ० मीराजकर : शी मीन्स लैफ़्ट साइड, और राइट साइड।

शील : राइट साइड, नो, नो लैफ्ट साइड। नो, नो, राइट···

मिस चटर्जी : कोई बात नेईं। कोई बात नेईं···

डॉ० मीराजकर : तो चलिए डॉक्टर। हम लोग साथ के कमरे में चल कर डिसाइड कर लें, क्या ट्रीटमेंट होना चाहिए।

मिस चटर्जी } मिस रिजवी } : हाँ चलिए।

शील : नहीं डॉक्टर। आप लोग यहीं डिसाइड कीजिए। मैं भी सुनना चाहती हूँ कि मेरे ट्रीटमेंट के विषय में आपने क्या सोचा ?

डॉ० मीराजकर : तुम नरवस तो फ़ील नहीं करोगी ?

शील : नरवस क्यों होने लगी ? मैं बच्ची तो हूं नहीं। बी० ए० में पढ़ती हूं। सुनकर डरूँगी क्यों ?

डा० मीराजकर : ऑल राइट, डॉक्टर। यहीं डिसाइड करें। कोई ऐसी बात तो है नहीं। मिस शील इज़ एन एजूकेटेड मॉडर्न यंग गर्ल।

मिस चटर्जी : ओ, कोई बात नेईं। हम इधर ही डिशाइड कोरने शौकता।

मिस रिजवी : मेरे ख़्याल से तो महज़ दवा से काम नहीं चलेगा।

डॉ० मीराजकर : ओह ! आई क्वाइट एग्री विद यू। आई थिंक वी विल हैव टु ऑपरेट।

शील : (चौंककर) क्या ? ऑपरेशन ?

मिस रिजवी : ठीक है। ठीक है। मेरा भी यही ख़्याल है। ऑपरेशन किए बिना ठीक बीमारी का पता न चलेगा। क्यों डॉक्टर ?

मिसचटर्जी : जोरूर। इशशे शोरल दोवाई दूसरा नेईं है। ऑपरेशन कारने होगा।

शील : (घबराकर) ओह ! ऑपरेशन ?

मिस चटर्जी : हाँ। ऑपरेशन। डारने की कोई बात नहीं मिशबाबा। आपको बिलकूल कोई तकलीफ़ नेईं होगा।

शील : क्या ऑपरेशन के बिना ठीक नहीं हो सकता ?

मिस चटर्जी : जब्रे ऐशो बीमारी होता, तो ऑपरेशन जोरूर कोराना होता, बाबा।

शील : नहीं। मैं ऑपरेशन नहीं कराऊँगी। आप लोग मुझे छोड़ दीजिए। मुझपर दया कीजिए। मैं खुशी-खुशी मर जाऊँगी, लेकिन ऑपरेशन नहीं कराऊँगी। नहीं, हरगिज़ नहीं।

डॉ० मीराजकर : आप इतना क्यों डरती हैं मिस शील ? यू आर ऐन एजुकेटेड यंग गर्ल। इतना नरवस होना आपको शोभा नहीं देता।

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है। डा० मीराजकर ठीक बोलता शील बाबा।

डॉ० मीराजकर : ऑपरेशन कितनी अच्छी चीज़ है। जो बीमारी हज़ार दवाओं से अच्छी न हो, वह ऑपरेशन से झट ठीक हो सकती है। बस, इन्स्ट्रूमैन्ट से पूरे बौडी को ओपिन कर, सब चीज आँख से देखकर, खटाखट ठीक कर दिया जाता।

शील : उफ ! अब मैं क्या करूँ भगवान् !

मिस चटर्जी : ऑपरेशन से मुर्दा शोरीर में नोई जान डाला जाता।

तुमको डारने की कोई बात नेईं है।

डॉ० मीराजकर : यू शुड अन्डरस्टैन्ड आल दिस, मिस शील।

शील : ओह! अब मैं क्या करूँ?

डॉ० मीराजकर : आपको कुछ नहीं करना होगा। सब-कुछ तो हम लोग खुद ही कर लेंगे। आई विल माई सैल्फ कन्विन्स यौर मदर।

शील : लेकिन मैं इस तरह अपनी जान खतरे में नहीं डालना चाहती।

मिस रिज़वी : खतरे में कैसे? फिर हम लोग किसलिए हैं?

डॉ० मीराजकर : अगर रोगी यह समझने लगे, तब तो बस, फिर हम लोगों का प्रोफ़ेशन तो बस हो गया।

शील : तो क्या अपना प्रोफेशन चलाने के लिए आप लोग ऑपरेशन करते हैं?

मिस चटर्जी : कैशा बात बोलता, बाबा! हाम तो मारीज़ को आराम देना वास्ते आपरेशन कारते।

शील : मुझे ऐसा आराम नहीं चाहिए।

डॉ० मीराजकर : ठीक है। तो फिर बीमार रहिए। पढ़ना-लिखना सब चौपट कीजिए। अपनी मदर को वरीड रखिए। पैसा फूँकिए और डाक्टरों का घर भरिए।

शील : मैं इस सबके लिए तैयार हूँ। बी० ए० की परीक्षा में अभी बहुत दिन बाकी हैं। मेरी माँ को हमेशा कोई न कोई चिन्ता घेरे ही रहती है। मेरी इस बीमारी में घिरकर वे कम से कम घर में तो रहती हैं। रही पैसे की बात। सो उसकी मुझे फिक्र नहीं। उस पैसे से अगर आप लोगों का कुछ भला हो सके, तो मुझे खुशी ही होगी।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन। शौत्य वचन। तो फिर आप ऑपरेशन

के वास्ते तैयार कियों नेंई होता ?

शील : (चिढ़कर) मेरी मर्ज़ी।

डॉ० मीराजकर : माफ कीजिए। हम लोग आपकी बात नहीं मान सकते। अगर डाक्टर पेशेन्ट के कहने पर चले, तब तो कर चुका वह डाक्टरी।

मिस चटर्जी : हाँ। शो तो नेंई होने शाकता।

मिस रिजवी : सुनिए, मिस शील। यातो आप हम लोगों का मशविरा मानकर ऑपरेशन करा लीजिए, नहीं तो हमें मजबूर होकर, रानी साहेबा से कह देना पड़ेगा। आप कतई बीमार नहीं हैं। झूठ-मूठ बीमारी का बहाना किए पड़ी हैं।

शील : लेकिन इतना बड़ा झूठ आप माँ से कैसे कह सकती हैं, डॉक्टर ? साफ बात है कि मैं सख्त बीमार हूँ। जब तक मैं बिल्कुल ठीक नहीं हो जाती, तब तक मेरा इलाज करना आपका फर्ज़ है।

मिस रिजवी : मरीज़ का भी कुछ फर्ज़ होता है, मिस शील।

शील : वह क्या ?

मिस रिजवी : डॉक्टर का कहना मानना। अभी आपने फरमाया, आप हमारा कहना नहीं मानेंगी। अभी आप हमें हमारा फर्ज़ सिखाने को आमादा हो गईं। बड़े ताज्जुब की बात है, मिस शील। आप इतनी इल्मदाँ होकर, ऐसी बेवकूफी की बातें करती हैं। वाकई, बड़े अफ़सोस की बात है।

शील : तो क्या ऑपरेशन के बिना काम नहीं चलेगा ?

डॉ० मीराजकर : नहीं। अगर आपको हमारे ऊपर फेद नहीं, तो फिर हमें आपसे कुछ नहीं कहना।

मिस चटर्जी : आपशे की बोलूँ मिश शील ! हाम नाईं जानता था,

जे आप ईतना काचा दिल राखता हाय।

शील : तो फिर मुझे ऑपरेशन कराना ही होगा ?

मिस रिजवी : (खुश होकर) ठीक है, ठीक है। खुदा का फज़्ल है। आपको अक्ल तो आई।

शील : अच्छा तो फिर पहले मैं आप लोगों से एक बात···

डॉ० मीराजकर : स्पीक, स्पीक।

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है। उस परवरदिगार का बहुत-बहुत शुक्र है। आप फरमाइए न।

मिस चटर्जी : जोरूर बोलो, बाबा, जोरूर।

शील : देखिए, असल में बात यह है कि···

मिस चटर्जी : बोलिए मिश शील। मानने वाला होगा, तो हाम आपकी बात जोरूर मानेगा।

शील : बोलती हूँ, अभी बोलती हूँ। माँ किधर हैं ?

मिस चटर्जी : वो ओपने शिकटैरी से बातें कोरता।

शील : अच्छा, तो ये बीच के दरवाज़े बन्द कर दीजिए।

[मिस चटर्जी उठकर दरवाज़ा बन्द कर अपनी जगह लौटती हैं।]

मिस रिजवी : लीजिए, हुज़ूर। अब तो दरवाज़े भी बन्द हो गये। अब तो कुछ बोलिए।

शील : वाह ! यह पर्दा तो आपने खुला ही छोड़ दिया। उसे भी खींच दीजिए।

मिस रिजवी : इतनी नफासत ? मालूम होता है, आप तो ड्रामा कर रही हैं।

[डा० मीराजकर उठकर पर्दा खींच देते हैं]

डॉ० मीराजकर : नाऊ यू मस्ट स्पीक आउट, मिस शील। डोन्ट वेस्ट अवर टाइम।

शील : (उठकर बैठते हुए) असल में बात यह है कि मैं

बिल्कुल बीमार नहीं हूँ।

मिस चटर्जी : की बोलता, बाबा ?

डॉ० मीराजकर : व्हाट डू यू मीन टु से !

मिस रिजवी : ऐं—यह कैसी बात !

शील : सच, डॉक्टर, मैं बिल्कुल बीमार नहीं हूँ। थोड़ा-सा ठैम्परेचर तो यूँ ही बिस्तर में पड़े-पड़े हो गया। मैं बिल्कुल ठीक हूँ।

मिस रिजवी : तब आपको यह ड्रामा खेलने की क्या ज़रूरत थी ? मुफ्त में सबको फिक्र में डाल रखा है।

डॉ० मीराजकर : ओह ! यू फूल ! गुड फार नथिंग ! सबको बेकार परेशान किया। मिस शील, आपके पास पैसा है, इसका यह मतलब तो नहीं कि आप हम लोगों का टाइम वेस्ट करें ?

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। हाम तो बाबा, ऐशा कोभी शुना नेंई।

शील : डाक्टर, सच मैं बहुत परेशान हूँ। मेरा तन रोगी नहीं, मेरा मन रोगी है। मजबूर होकर मुझे बीमारी का बहाना करना पड़ा। लेकिन ऑपरेशन की बात सुन कर मैं अपने को और छिपा न सकी। मुझे सब-कुछ आपसे कहना ही पड़ा।

डॉ० मीराजकर : टैल अस फ्रैंकली, मिस शील। व्हाट डू यू वान्ट टु से ? आखिर इस सब बकवास से आपका मतलब क्या है ?

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। ठीक बात बोलो मिश शील। जे गोलू-मोलू बात हामारी शोमोझ में नेईं आता।

शील : लेकिन वह बात मैं आप लोगों से कहना नहीं चाहती।

मिस रिजवी : लेकिन आप कुछ कहना क्यों नहीं चाहतीं, इसका भी

तो कुछ सुराग़ दीजिये। आप बीमार नहीं हैं, लेकिन बीमार भी हैं। यह कैसा माजरा है? क्या माहौल है? कुछ तो फ़रमाइये।

मिस चटर्जी : बोलो, शील बाबा, ठीक बात बोलो। बोलने शे मौन का पोरेशानी हालका होता।

शील : बता देने से फ़ायदा भी क्या होगा? आप लोग मेरी कुछ भी तो मदद नहीं कर सकेंगी।

डॉ० मीराजकर : क्यों नहीं करेंगे। हम लोग हर तरह से पेशेन्ट की मदद करने को तैयार रहते हैं। आप बात भी तो बोलिये। बी फ्रेंक।

शील : तो क्या आप लोग वाकई मेरी मदद करेंगे?

मिस चटर्जी : जोरूर करेंगे, बाबा जोरूर।

शील : अच्छा तो सुनिये···नहीं, नहीं। रहने दीजिये। आप लोग मुझे बीमार ही रहने दीजिये।

मिस चटर्जी : कोई बात नेंई। जोब रानी शाहेबा हाम शे ईलाज के बारे में पूछेगा तो हाम शाफ़ बोल देगा—जे शील बाबा कोतई बीमार नेई।

शील : देखिये डाक्टर, माँ से ऐसा कहकर, आप मेरी बीमारी और बढ़ा देंगी। इस तरह आप मेरा भी नुकसान करेंगी ही, अपना भी बहुत नुकसान करेंगी।

मिस रिजवी : वह कैसे?

शील : आपके ऐसा बोलते ही, आपकी फ़ीस की इतनी लम्बी रकम फ़ौरन बन्द हो जायेगी।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। लेकिन जब आप बीमार नेईं, तब हाम फोकट में फ़ीश केयों लेगा?

शील : फोकट क्यों? आप अपनी दवा देती रहिये। सिर्फ ऑपरेशन की बात मत बोलिये। आपको अपनी दवा

की पूरी कीमत मिलेगी, और मुझे देखने की फ़ीस भी।

मिस रिज़वी : ठीक है, ठीक है। लेकिन इस तरह रानी साहेबा की दौलत तो बेकार ज़ाया होगी।

शील : सो होने दीजिए। दौलत मेरी है। मैं अकेली उसकी वारिस हूँ। मेरे सिवाय माँ का और है ही कौन? यह सारी दौलत मेरे ख़र्च करने के लिए तो है।

मिस चटर्जी : कैशी बात बोलता बाबा! पैशे का आपको बिलकूल दारद नेई लागता।

शील : मन के दर्द के आगे, पैसे का दर्द कुछ क़ीमत नहीं रखता डॉक्टर। मन का दर्द ठीक करने के लिये, पैसे का दर्द छोड़ना ही पड़ता है।

डा० मीराजकर : मुझे आपसे पूरी सिम्पैथी है, मिस शील। लेकिन जब आप बीमार नहीं हैं, तब आपकी मदर से फ़ीस लेना मेरी काँशस एलाऊ नहीं करता।

शील : तब तो फिर मुझे सारी बात साफ-साफ बोलनी ही पड़ेगी।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन।

मिस रिज़वी : ठीक है, ठीक है। इतनी देर बाद, अब आपका दिमाग़ कुछ दुरुस्त हुआ।

शील : डॉक्टर, आपने कभी किसी से प्रेम किया है?

मिस रिज़वी : अल्लाह रहम करे! मिस शील अभी आप कमसिन हैं। नादाँ हैं। ऐसे ख़यालात को दिल में जगह न दीजिये। इसका इन्तकाम हरगिज़-हरगिज़ ठीक न होगा।

शील : थैंक्स, डॉक्टर, लेकिन अगर यह सलाह आप कुछ दिन पहले दे देतीं, तो मैं बीमार न पड़ती। और आपको

भी मेरे इलाज के लिये इतनी लम्बी फ़ीस न मिलती।

मिस रिज़वी : इस बीमारी का सिर्फ़ एक ही इलाज है, मिस शील। आपको अपने दिल पर काबू रखना होगा। तभी आपकी सेहत ठीक हो सकेगी।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन।

डा० मीराजकर : यस। राइट। मिस शील, हमारी डाक्टरी में, आपकी इस बीमारी का कोई इलाज नहीं। यू विल हैव टु चेन यौरसेल्फ़। आपकी यह बीमारी हम लोगों से नहीं सँभल सकती।

शील : (एकदम बिस्तर से नीचे उतर, उनके ठीक सामने खड़े होकर) यही है आप लोगों की सिम्पैथी ? इसी तरह आप लोग मेरी मदद करना चाहते थे ? अभी यही वादा किया था आप लोगों ने ?

मिस चटर्जी : हाम की कोरेगा, बाबा। ऐशा डाक्टरी हाम नेई किया।

शील : अभी तक नहीं किया, तो अब शुरू कर दीजिये।

डा० मीराजकर : डोन्ट बी एबसर्ड! टौक सेन्स। यू आर नौट ए चाइल्ड एनी मोर, मिस शील।

शील : लेकिन जब आपने आधी बात सुन ही ली है, तो आपको पूरी बात सुननी ही पड़ेगी, और मेरी मदद भी करनी पड़ेगी।

डा० मीराजकर : ऑल राइट। गो ऑन।

शील : इस मर्ज़ का इलाज मैं जानती हूँ। इस बीमारी का सिर्फ़ एक ही इलाज है।

डा० मीराजकर : ऐसा मत कहिये। आप बीमार नहीं हैं।

शील : बीमार ही तो हूँ (कमरे में इधर से उधर टहलते हुए) वह दूसरी बात है कि मेरी यह बीमारी मेरे शरीर की

नहीं, मेरे मन की है।

मिस रिज़वी : ठीक है, ठीक है। तब सही इलाज के लिये आप किसी पहुँचे हुए फ़कीर के क़दमों में जाइये। सिर्फ़ वहीं आपके टूटे दिल को राहत मिल सकेगी।

शील : नहीं। किसी फ़कीर के क़दमों में नहीं, मेरा इलाज एक कलाकर के हाथों में है।

मिस चटर्जी : कलाकार ? आर्टिस्ट ? वो जो तोसवीर बोनाता।

शील : जी हाँ। आज उसे कौन नहीं जानता ! सभी की ज़बान पर उसका नाम है। पिछले महीने जो कला-प्रदर्शनी हुई थी, उसमें उसके चित्र को प्रथम पुरस्कार मिला था।

मिस चटर्जी : ओ ! तुम शुधाकर की बात बोलता ?

शील : हाँ, वही। इस दुनिया में मेरा इलाज सिर्फ़ वही कर सकता है।

मिस रिज़वी : या खुदा ! मालूम होता है, आप उसे चाहने लगी हैं।

शील : आपका अनुमान गलत नहीं।

डॉ० मीराजकर : इस चाह का रीज़न ?

शील : रीज़न ? सबब ? एक आदमी क्यों हँसता है, क्यों रोता है, उसे भूख क्यों लगती है, वह पानी क्यों पीता है, जाड़े में उसे गरम कपड़ों की ज़रूरत क्यों होती है, गर्मी में उसका मन पखे की ठण्डी हवा पाने के लिये क्यों तड़फड़ाता है ?

डॉ० मीराजकर : यह तो नेचर का नैसेसिटी है।

शील : यह भी नेचर की नैसेसिटी है, डॉक्टर, रोटी के बिना आदमी ज़िन्दा नहीं रह सकता। कैलशियम और विटा-मिन की कमी पर वह बीमार पड़ जाता है। सुधाकर का अभाव ही, मेरे इस रोग का कारण है। यह पूरा

हुए बिना, मेरी यह बीमारी दूर न हो सकेगी।

मिस रिजवी : ठीक है, ठीक है, लेकिन अगर आपकी चाहत, इस इन्तहा तक बढ़ चुकी थी, तो आप यूँ ही उससे शादी कर सकती थीं। मुफ्त में यह ड्रामा खेलने की क्या ज़रूरत थी ?

शील : सुनिये डॉक्टर, मैं सुधारक को बचपन से जानती हूँ।

मिस रिजवी : तब तो और भी आसानी थी। आपको इस बीमारी का बहाना करने की क्या ज़रूरत थी ?

शील : बहुत बड़ी ज़रूरत थी, डॉक्टर। सुनिये। आज से दस साल पहले, जब मेरे पिताजी जीवित थे, उन्होंने मेरी शादी की बातचीत, अपने मित्र के लड़के से पक्की कर दी थी। बचपन से ही, एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते, हम जीवन की इस मंज़िल पर पहुँचे। मेरे बचपन का वही साथी, आज कलाकार सुधाकर के नाम से पुकारा जाता है। लेकिन माँ नहीं चाहतीं कि मेरी शादी किसी कलाकार से हो।

मिस चटर्जी : केयों ? कोलाकार भी तो आदमी होता। जानवर नेईं। आपकी माँ को, आपके पिताजी को बात राखना चाहिये।

शील : काश, पिताजी जीवित होते ! डॉक्टर, माँ कहती है — कलाकार पागल होता है। लम्बे-लम्बे बाल बढ़ाकर, घर गृहस्थी से दूर भागता है। दिन-रात ज़मीं-आस्माँ, चाँद-सितारों की बातें करता है।

मिस चटर्जी : ये बात तो शाच हाय। लेकिन जोब आप बोचपने से ही उशको अपना पति मान चुका है, तो आपका शादी, उनशे होना ही चाहिये।

शील : हाँ, मैं उसे अपने दिल से नहीं निकाल सकती। वह मेरे

रोम-रोम में बस चुका है।

डॉ० मीराजकर : लेकिन आपकी माँ क्या कहती हैं, मिस शील ?

शील : वे चाहती हैं कि मेरी शादी उनकी सहेली के बेटे से हो। इसीलिए मैंने यह बीमारी का बहाना किया जिससे न मैं बीमारी से उठूं, और न मेरी माँ जान-बूझकर, मुझे शादी की इस जलती भट्ठी में झोंक दें।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। तुम ठिक किशा शील बाबा।

शील : माँ को ब्लड-प्रैशर है। मैं नहीं चाहती कि उनकी बात न मानकर, मैं उनके सुन्दर सपने को चूर-चूर कर दूँ। ज़रा सोचिये, डॉक्टर। मैं अगर मना कर दूं, तो उनके दिल को कितना गहरा सदमा पहुँचेगा। हो सकता है, इस सदमे से उनका हार्ट-फ़ेल ही न हो जाये। इतना वड़ा ख़तरा मैं कैसे उठा लूँ, डॉक्टर ?

मिस चटर्जी : शौत्य वचन। शौत्य वचन। ऐशा केशेज बहोत होता। शोदमा लागने शे, दिल की धोड़कन एकदाम रुक जाता।

शील : इसीलिये मैंने यही ठीक समझा कि मैं कुछ दिन के लिये बीमार पड़ जाऊँ। मां की सहेली, हमेशा बीमार रहने वाली लड़की से, अपने बेटे की शादी करना हरगिज मंजूर न करेगी। उस लड़के की शादी हो जाने पर, धीरे-धीरे, जब माँ के दिल की हालत सँभल जायेगी, तब मैं···

डॉ० मीराजकर : रियली यू आर वन्डरफ़ुल, मिस शील ! यू आर डुईंग ए ग्रेट सैक्रिफ़ाइस फ़ौर यौर पुअर मदर्स सेक। रियली वन्डरफ़ुल !

मिस चटर्जी : ओदभुत ! ओदभुत !

शील : तभी तो मैं कहती हूँ कि आप लोग मेरा इलाज बन्द मत करिये।

डॉ० मीराजकर : आपने कैसी प्रॉबलम खड़ी कर दी, मिस शील! मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ।

मिस चटर्जी : हाम तो बोश एक बात जानता। जाब रानी शाहेब हाम शे पूछेगा, तो हाम शाफ़ बोल देगा—जे शील बाबा क़ोतई बीमार नेईं।

शील : मेरी इतनी लम्बी कहानी सुनकर भी आप लोगों ने सिर्फ़ इतना ही कहा? तभी तो मैं कहती हूँ—डाक्टर लोगों के पास सिर्फ़ दिमाग़ होता है, दिल नाम की कोई चीज़ नहीं होती।

डॉ० मीराजकर : सचमुच मिस चटर्जी, मिस शील की बात मेरी समझ में आ रही है।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। शील बाबा के कोथन में शचाई है।

मिस रिज़वी : आप भी डाक्टर मीराज़कर की तरह बोलने लगीं, मिस चटर्जी!

शील : सुनिये, मिस रिज़वी—माँ से सच बात बोलकर आप मेरा तो नुक़सान करेंगी ही, लेकिन उससे आपको भी बहुत बड़ा नुक़सान होगा।

मिस चटर्जी : ओ, आप फिर शे फ़ीश की बात बोलता। लेकिन जब आप बीमार नेईं, ताब हाम फोकट में फ़ीश केयों लेगा?

शील : फोकट में क्यों? दवा तो आप देंगी ही। और मुझे देखने आने में आपकी मोटर का पैट्रोल, और आपका वक्त दोनों ही खर्च होंगे।

मिस चटर्जी : नेईं, नेईं, बाबा, ऐशा तो मुझशे नाहीं होना शाकेगा।

डॉ० मीराजकर : हम लोग इस तरह आपकी मदर की वैल्थ में फ़िज़ूल ऑपरेशन जारी नहीं रख सकते, मिस शील।

शील : सोच लीजिये। आप भी सोच लीजिये डॉक्टर चटर्जी। ऐसे मौके बार-बार नहीं आते।

मिस चटर्जी : शो तो ठीक हाय। तो फिर इश पर भी कौन्सलटेशन कर लें, डॉक्टर ?

डॉ० मीराजकर : मैं तो तैयार हूँ। अगर इस तरह मिस शील का वास्तव में भला होता है, तो मुझे कोई ऑबजैक्शन नहीं। हम डॉक्टर ठहरे। हमें केवल बॉडी का ही नहीं, माइण्ड का ट्रीटमेंट भी तो करना है।

मिस चटर्जी : डॉक्टर रिज़वी, आप कुछ नेईं बोला ?

मिस रिजवी : मुझे तो यह सब फ़ालतू बात बिल्कुल मंजूर नहीं। मैं तो आप लोगों को यही मशविरा दूँगी कि···

[चन्द्रा का प्रवेश। शील हड़बड़ाकर शैया में घुस जाती है।]

चन्द्रा : शील, मैं आ गई। देख, मैं आ गई, बेटा। मैं कितनी जल्दी से सब काम ख़तम कर तेरे पास लौट आई। कहिये, डॉक्टर, आप लोगों ने कन्सल्टेशन कर लिया ?

मिस चटर्जी : (हँसकर) हाँ, हाँ, बहोत बाढ़िया कसन्लटेशन।

चन्द्रा : कब तक ठीक हो जायेगी, मेरी बच्ची ?

मिस चटर्जी : फ़िकर की कोई बात नेईं। शील बाबा शीघ्र आछा होगा। थोरा दिन लागेगा। कोई बात नेईं।

चन्द्रा : ओह, डॉक्टर ! आज मुझे सच्ची शान्ति मिली। आप लोगों ने सचमुच मुझे बचा लिया, नहीं तो शील की चिन्ता मुझे खाए डाल रही थी। शील, मेरी बेटी, सुना तूने ? अब तो झटपट अच्छी हो जायेगी।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। ऐशा कोई खाश बात नेई है। ऐशा बीमारी में घोबराना नेई चाहिये। पेशेन्ट के मोन में शान्ती राहना चाहिए।

चन्द्रा : मैं भी तो यही चाहती हूँ, डाक्टर, हमेशा मैं अपनी शील को समझाती रहती हूँ कि वह शान्त रहे। प्रसन्न रहे। सौ रोगों की एक दवा मन की हँसी है। पर वह मेरी सुने तब तो। न जाने क्यों इतनी उदास रहती है! शील, तुमने सुनी डाक्टर की बात? अब तुम हरगिज़ कभी उदास मत होना।

डॉ० मीराजकर : यह उदासी सिर्फ़ एक तरह से दूर हो सकती है।

चन्द्रा : कैसे? किस तरह? जल्दी बोलिए, डाक्टर। अपनी बेटी की आँखों में खुशी की तस्वीर देखने के लिए, मैं दुनिया की दौलत निछावर कर सकती हूँ।

डॉ० मीराजकर : सारी दुनिया की दौलत लुटाकर भी, आप इनके लिए ख़ुशी नहीं ख़रीद सकेंगी। नो, नौट एट आल। हां, अगर आप इनकी शादी कर दें, तो आपके मन की मुराद फ़ौरन पूरी हो जाएगी।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। तुम मेरे मोन की बात बोला हाय, डाक्टर, मेरे मन की बात बोला हाय।

मिस रिज़वी : ठीक है, ठीक है। इस बीमारी का सिर्फ़ एक यही इलाज है। जिस लड़के को आपने पसन्द किया है, उसके साथ फ़ौरन से पेश्तर इनका निकाह कर दीजिए।

चन्द्रा : आह! तुमने मेरे मन की बात कह दी, डॉक्टर? मैं तो खुद ही चाहती हूं कि झटपट अपनी बेटी की भाँवरें डाल दूँ। उसके लिए बड़ा खूबसूरत लड़का खोज रखा है, मैंने। इतना सुन्दर, इतना सुशील···

डॉ० मीराजकर : केवल सुन्दर और सुशील ही है, या कुछ काम-धाम

भी जानता है? किसी बेकार घूमने वाले छोकरे से…

चन्द्रा : नहीं, डॉक्टर, बेकार क्यों होने लगा? वह तो बड़ा भारी वकील है। शहर के नामी सरकारी वकील का बेटा।

मिस चटर्जी : नेंई, नेंई। बकील होने से नेंई चाल शाकेगा। आगर आपनी बेटी का हाथ, किशी वोकील के हाथ में थामा देगा, तो वह शदा दुःख पाएगा, शदा बीमार रहेगा।

चन्द्रा : कैसी बात बोलती हैं, डॉक्टर! वह लड़का तो बड़ा ही बुद्धिमान, बड़ा ही सुशील, बड़ा भारी काम-काजी…

डॉ० मीराजकर : यही तो असल बात है, रानी साहेबा। दैट इज़ द रियल पॉइन्ट। वकील लोगों को सिर्फ़ बहस करना आता है, वे बात-बात पर सिर्फ बाल की खाल निकालने बैठ जाते हैं। आपकी बेटी बड़ी ही सैंटीमेंटल है। वह यह हरगिज़ बर्दाश्त न कर सकेगी। है न, डॉक्टर रिज़वी?

मिस रिजवी : मैं…मैं यह सब-कुछ नहीं जानती। मेरे ख़्याल में तो…

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। रिजवी, तूम बिलकूल ठीक बात बोलता। तुम्हारा खोयाल बिलकूल टीक हाय। किशी वोकील शे शादी कर, मिश शील कोदापि शुखी नेंई राहने शकेगा।

मिस रिजवी : आप लोग बातें कीजिए। मुझे देर हो रही है। मैं जाती हूं।

चन्द्रा : अरे, अरे, आप कहाँ जा रही हैं? ज़रा ठहरिए, डॉक्टर।

मिस रिजवी : नहीं। मुझे देर हो रही है। सलाम वालेकुम।

[मिस रिज़वी उठकर चल देती है]

डॉ०मीराजकर : वालेकुम अस्लाम। गहरी-नींद सोइएगा, मिस रिज़वी !

मिस चटर्जी : शौत्य वचन। हैव स्वीट ड्रीम्स।

चन्द्रा : तो फिर डॉक्टर, आपके विचार में, मेरी शील के लिए कैसा लड़का ठीक रहेगा? कोई डॉक्टर हो तो कैसा रहे ?

मिस चटर्जी : ओ, नेईं, नेईं। डॉक्टर होने शे तो बिलकूल नेईं चाल शाकेगा। वो श्कैलिटैंन, टी० बी०, टाइफ़ाइड, कैन्शर की बातें कोरेगा, तो तुम्हारा बेटी भौय शे बेहोश हो जाएगा।

चन्द्रा : आपका कहना ठीक है, डॉक्टर। तब मैं किसी इंजीनियर की तलाश करूँ ?

डॉ० मीराजकर : व्हाट नॉनसैन्स ! रानी साहेबा, आप इतनी समझदार होकर भी, कभी-कभी कैसी बातें करती हैं ! किसी इंजीनियर के संग बाँध दीजियेगा, अपनी बेटी को। जिससे वह उसे अपने पीछे-पीछे, पहाड़ों, जंगलों और खाइयों में घसीटता घूमे ? मेरी बात मानिये। इस तरह, यू विल सिम्पली मर्डर हर।

चन्द्रा : (घबराकर) नहीं, नहीं, मैं तो सिर्फ आपकी राय लेना चाहती थी। तब फिर उसके लिये कोई व्यापारी ही ठीक रहेगा।

मिस चटर्जी : ओ, नो। शेयर-बाजार के बुल्स, और बियर्स की बातें शुन-शुन आपका बेटी का दिमाग पागल हो जायेगा। नेईं, नेईं, ब्योपारी ठीक नेईं राहने शाकेगा।

चन्द्रा : उफ़ ! यह नहीं, वह नहीं, अजब मुसीबत है। कैसी विचित्र है यह लड़की ! क्या संसार में इसके योग्य कोई भी दूल्हा नहीं ?

डॉ० मीराजकर : है क्यों नहीं ?

चन्द्रा : कौन है वह ? बोलो, डॉक्टर। जल्दी बताओ।

डॉ० मीराजकर : कोई भी आर्टिस्ट, कलाकार, जिसकी भावुकता में आपकी बेटी अपना दुःख भूल जाये।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन। डॉक्टर मीराजकर ठीक बोलता। आपकी बेटी को जो बीमारी हाय, उशका बश जे ही एक ईलाज हाय।

डॉ० मीराजकर : राइट, राइट, क्वाइट राइट। आपकी बेटी हमेशा गमगीन रहती है। इट इज़ मोस्ट एसेन्शल टु डाइवर्ट हर अटेन्शन। और उसका सिर्फ एक ही इलाज है। मैरी हर टु सम आर्टिस्ट। उसकी रंगीन भावनाओं में डूब, वह अपने इन गमगीन सपनों को भूल जायेगी।

चन्द्रा : उफ ! कैसी मुसीबत है ? अब मैं उसके लिए कलाकार खोजने कहाँ जाऊँ ?

शील : तुम्हें कहीं नहीं जाना होगा, माँ। मैं अभी शादी नहीं करूँगी।

डॉ० मीराजकर : पेशेन्ट को डॉक्टर का आदेश मानना चाहिये, मिस शील। यू मस्ट ओबे अस।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन। शौत्य वचन।

शील : लेकिन ज़रा आप ही सोचिये, डॉक्टर। आपने तो एक इम्पौसिबिल-सी बात कह दी। भला यह कब सम्भव है कि माँ, मेरी शादी किसी निकम्मे कलाकार से···

चन्द्रा : (झटपट) इम्पौसिबिल कुछ भी नहीं है, शील। तेरी खुशी के लिये, मैं डॉक्टर की सब बातें मान सकती हूँ, बेटा।

डॉ० मीराजकर : आपकी माँ को कष्ट नहीं उठाना होगा, मिस शील। नो, नो, नौट एट आल। मैं एक कलाकार को जानती हूँ। वह मेरा परिचित मित्र है। बेचारे के माँ, बाप,

भाई, बहन कोई नहीं। पुअर बौय। ही विल रैस्पैक्ट यौर मदर, लाइक हिज़ ओन।

मिस चटर्जी : आप शुधाकर की बात बोलता, डॉक्टर ?

डॉ० मीराजकर : यस, यस, द सेम फैलो। बड़ा ही अच्छा लड़का है। बड़ा ही शीलवान। रियली, आई से···

मिस चटर्जी : शौत्य वचन। वह लड़का आपके लिए··· नहीं, नहीं, आपकी बेटी के लिए, बिलकुल ठीक राहने शाकेगा, रानी शाहेब।

शील : नहीं, माँ। तुम इनकी बात न सुनो। मैं अभी शादी नहीं करूँगी।

चन्द्रा : तू चुप रह, डॉक्टर, मैं उसके घर नहीं जाऊँगी। किसी बहाने आप उसे यहाँ बुलाकर ला सकेंगी ?

डॉ० मीराजकर : श्योर, श्योर। जब उसे पता चलेगा कि आप उसकी पेंटिंग्स की एडमायरर हैं, तो वह ऐसा खिचा चला आएगा, ऐसा खिचा चला आएगा, जैसे शहद पर मक्खी।

शील : लेकिन, डाक्टर, मैं शादी नहीं करूँगी, नहीं करूँगी,।

चन्द्रा : क्यों नहीं करेगी, बेटी ? आखिर किसी न किसी से तुझे शादी करनी ही है। तब किसी भोले-भाले कलाकार से ही सही।

शील : लेकिन···माँ···

डॉ० मीराजकर : यू मस्ट ओबे अस मिस शील।

मिस चटर्जी : शौत्य वचन, शौत्य वचन।

शील : अच्छा, जब आप लोग नहीं मानते तो···

चन्द्रा : आहा ! अब मेरी बेटी झट से ठीक हो जायेगी। मैं धूमधाम से उसका विवाह करूँगी। मेरे द्वार पर शहनाइयाँ बजेंगी। यह आँगन फुलझड़ियों से भर

जायेगा । ऊँचे घोड़े पर बैठकर, हीरे की कलगी लगाकर, सुन्दर-सा दूल्हा मेरे द्वार पर···

शील : माँ, तुम तो बस···(शर्मा जाती है ।)

[सब हँसते हैं, पर्दा गिरता है ।]

आँचल का छोर

पात्र :

राधा : एक अष्टवर्षीय बालिका।
किशोर : राधा का पिता।
बीना : राधा की माँ।
रमेश : एक विद्यार्थी।
पार्वती : राधा के घर की नौकरानी।
नन्हा : राधा का नन्हा मुन्ना दस महीने की आयु का भाई।

समय :

दोपहर के कुछ बाद।

पात्र-परिचय

किशोर

इस नगर के मध्यम वर्ग का युवक है। आयु उसकी लगभग तीस वर्ष है। किसी दफ्तर में काम करता है। पत्नी से उसे स्नेह है। अपने बच्चों से ममता है। पर वह उनमें लिप्त नहीं रहता। संगीत का उसे कुछ विशेष शौक है। परन्तु उसकी पत्नी को नहीं। अतः प्रायः दोनों में इस बात पर मीठी नोंक-झोंक हो जाया करती है।

बीना

किशोर की पत्नी। सभ्य-सुसंस्कृत, बी० ए० पास। घूमने-फिरने की शौकीन है। अपने बच्चों से वह विशेष प्रेम करती है, और घर में रहती है तो उन्हीं में डूबी रहती है। कालेज में उसने सिविक्स, पालिटिक्स और इतिहास कितना ही क्यों न पढ़ लिया हो, यह निश्चित है कि गृह-विज्ञान सम्बन्धी उसका ज्ञान अधूरा है। आयु लगभग पचीस वर्ष है।

रमेश

आयु लगभग बाईस वर्ष है। कालेज का विद्यार्थी। इस वर्ष एम० ए० की परीक्षा देने वाला है। चंचल, चपल, हँसमुख और बातूनी है। लेकिन अवसर पड़ने पर प्रत्येक समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकता है, क्योंकि वह मनोविज्ञान का विद्यार्थी है। केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से ही नहीं, अपितु व्यावहारिक जीवन में भी वह उसका प्रयोग करके देखना चाहता है।

राधा

किशोर की बेटी। आयु लगभग आठ वर्ष। माँ की लाड़ली बेटी होने कारण बड़ी हठीली हो गई है। इसी कारण वह प्रत्येक बात में अपनी

इच्छा पूरी होते देखना चाहती है, और उसके पूर्ण न होने पर उसके मन में विद्रोह भड़क उठता है।

पार्वती

किशोर की नौकरानी। आयु लगभग बीस वर्ष। अधिक बोलती नहीं। अपने काम से काम रखती है। चुपचाप अपना काम करती रहती है। उस काम से उसे लगन है या अरुचि, यह उसकी शक्ल या बातों से जाना नहीं जा सकता।

नन्हा

किशोर का नन्हा-मुन्ना दस महीने का बेटा, जिसे केवल रोना आता है। सोने और दूध पीने के अतिरिक्त जिसे और कुछ काम नहीं।

स्थान : लखनऊ।

समय : अपराह्ण।

[किशोर के मकान का भीतरी भाग। कमरा सजा हुआ है। दीवारों पर चित्र लगे हैं, जो नव-दम्पती की सुरुचि का पता देते हैं। बीचोंबीच में सोफा सेट पड़ा है। उसीके किनारे छोटी-सी मेज़ पर रेडियोग्राम रखा है। मेन्टलपीस पर फूलदान और चीनी मिट्टी के कुछ खूबसूरत खिलौने सजे हैं जिनके दोनों किनारों पर तिलक और गांधी के बुत सुशोभित हैं। उनकी विरुद्ध दिशा में लेनिन और स्टालिन के चित्र टँगे हैं। कमरे में अगरबत्ती की हलकी सुगन्ध महक रही है।

इस समय दिन के दो बजे हैं। किशोर आराम से सोफा पर अधलेटा-सा बैठा है। उसके हाथ में अखबार है। दृष्टि कभी-कभी बीच में मैन्टलपीस पर रखी घड़ी की ओर उठ जाती है।

रसोई के अन्दर से कुछ बर्तनों की खटपट की आवाज़ बीच-बीच में आ जाती है।]

आँचल का छोर

किशोर : (उठकर, अँगड़ाई लेते हुए) उफ, कैसा मनहूस दिन है ! आज किसी काम में मन ही नहीं लगता । बीना···मैंने कहा, अजी सुनती हो ।

पार्वती : (रसोई से) साब, बीबीजी पड़ोस में गई हैं ।

किशोर : (खीझकर) मेम साहब का कभी घर में पैर ही नहीं टिकता । हफ्ते में एक दिन घर पर रहता हूँ, तभी उन्हें पड़ोसिनों की याद आती है । राधा, अरी ओ राधा !

पार्वती : (वहीं से) बिटिया रानी खेलने गई हैं, सरकार ।

किशोर : जैसी माँ, वैसी बेटी । अच्छा भाई, अपन तो रेडियो सुनें । अपने अकेले मन का बस वही एक सहारा है ।

[किशोर गुनगुनाते हुए उठता है और रेडियो खोल देता है । तभी नन्हे के ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़ आती है ।]

किशोर : यह नन्हा कब से रो रहा है! किसीसे इतना नहीं होता कि इसे गोद में उठा ले । ज़रा चुप करा ले । घूमने-फिरने से छुट्टी मिले तब तो । रानी जी घर पर रहेंगी तो उससे ऐसी चिपटी रहेंगी, मानो घर में उसके अलावा और कोई है ही नहीं । और बाहर जाएँगी तो उसे बिल्कुल भूल ही जाएँगी । सहेलियों के साथ गप्प मारने से ज़रा छुट्टी मिले तभी तो याद आए कि मैं एक बेटे की माँ भी हूँ । नन्हे-से बेटे की, जिसे समय पर दूध और नींद की ज़रूरत है । अपनी गप्पें सलामत

रहें, बेटा चाहे भूखा बिलखता रहे। उफ, कितना रो रहा है, बेचारा ! पार्वती, अरी ओ पार्वती !

पार्वती : (पुकारकर) जी, आई सरकार।

किशोर : और किस्मत के ठाठ, कि नौकरानी भी मिली तो ऐसी। काम जो कुछ कह दिया सो कर दिया, नहीं तो कुछ मत-लब नहीं। देख रही है कि बीबीजी घर में नहीं हैं। नन्हा बुरी तरह रो रहा है। पर क्या मजाल कि जरा गोद में उठा ले। ना। कोई यह न कह देगा कि 'आहा ! आज तो पार्वती ने अपनी अकल से काम कर लिया···

पार्वती : मुझे बुलाया था, साब।

किशोर : हाँ। यह नन्हा कब से रो रहा है, तुझे सुनाई नहीं देता ?

पार्वती : सुनाई देता है, साब।

किशोर : सुनाई देता है तो उसे गोद में उठाकर चुप क्यों नहीं कराया ?

पार्वती : मैं उसे अच्छी तरह देख रही थी, साब।

किशोर : देख रही थी, क्या मतलब ?

पार्वती : साब बीबीजी जाते समय कह गई थीं 'पारो नन्हा पालने में सो रहा है, उसे देखते रहना। गफलत मत करना।' मैं बहुत अच्छी तरह देख रही थी साब।

किशोर : कम्बख्त, यह क्या बकवास है ? अगर मान लिया कि तू बेवकूफ है भी, तो अपने को इम्प्रूव करने का प्रयत्न क्यों नहीं करती ?

पार्वती : (कुछ न समझकर) जी, साब !

किशोर : (खीझकर) ओफ ! कुछ नहीं। जा नन्हे को उठा ले। और देख, बीबीजी कहाँ गई हैं, उन्हें बुला-कर ला।

पार्वती : (जाते-जाते) समझ गई, साब।

किशोर : (माथे पर हाथ रखकर) शुक्र खुदा का। तू कुछ समझी तो सही।

[दरवाज़ा ज़ोर से खुलता है। बदहवास बीना, तेज़ी से अन्दर आते हुए, चौखट से टकराकर धरती पर गिर पड़ती है।]

किशोर : (चिढ़कर) देखकर नहीं चला जाता? और कुछ नहीं तो चौखट से ही टकरा गई। श्रीमती जी, इतनी देर से आप थीं कहाँ?

बीना : (एकदम रोकर) राधा···मेरी···नन्हीं-सी···बच्ची।

[बीना फफक-फफककर रो उठती है।]

किशोर : (घबराकर) क्या हुआ राधा को? कहां है वह?

बीना : (सिसककर) न जाने कहाँ चली गई। उसका कहीं पता नहीं।

किशोर : (अचरज से) क्या कह रही हो?

बीना : (सिसककर) ठीक कह रही हूँ। मैं उसे सारे में खोज आई। वह आज सुबह से ही ग़ायब है। मैं खोज-खोजकर हार गई, पर वह कहीं भी नहीं मिली।

किशोर : अरे, तो इसमें इतना रोने की क्या बात है? किसी सहेली के घर खेल रही होगी। आ जायेगी, अपने-आप।

बीना : नहीं, अब वह नहीं आयेगी। कभी नहीं आयेगी।

किशोर : छि: ! कैसी बात बोलती हो? होश-हवास क्या आज सहेली के घर ही छोड़ आई हो?

बीना : वह रोते-रोते घर से भाग गई थी। आज मैंने उसे मारा था। अपनी नन्हीं-सी बेटी को···(ज़ोर से रो उठती है।)

किशोर : मारा था? क्यों? किस बात पर?

बीना : अपनी जिस बेटी को मैंने कभी कड़ी बात नहीं बोली थी, कभी नहीं धमकाया था, आज उसी को मैंने छड़ी से मारा। अब वह नहीं आयेगी, कभी नहीं आयेगी।

[दोनों हाथों में मुख छिपाकर सिसकती है।]

किशोर : कैसी बात बोलती हो? नन्हे-से बच्चे को भी कोई छड़ी से मारता होगा?

बीना : न जाने उस समय मेरी कैसी मति हो गई थी। क्रोध के वशीभूत हो, मैं मानो सब-कुछ भूल गई। सामने छड़ी पड़ी थी। उठाकर उसे पीट डाला। उफ़! माँ नहीं, उस समय मैं राक्षसी बन गई थी, राक्षसी। धिक्कार है मुझे, धिक्कार है···

किशोर : (तीखे स्वर में) बीना···

बीना : (सिसककर) क्या हो गया था मुझे? क्यों नहीं उस समय मेरा हाथ टूटकर गिर पड़ा? क्यों मैंने अपनी बेटी को···

किशोर : (बात को हँसकर उड़ाने की कोशिश करते हुए) पगली! सुन मेरी बात सुन। (दो उँगलियों से उसका चिबुक पकड़कर ऊपर उठाते हुए) बीना, सुन···

बीना : (दृष्टि उठा किशोर की ओर देखती है, मानो पूछ रही हो—"क्या?")

किशोर : अब, बेकार रोने से क्या होगा, बीना! यह रोना-धोना बन्द करो। गुस्सा होकर भाग भी गई तो क्या, थोड़ी देर में खुद ही लौट आयेगी।

बीना : नहीं। मेरा मन कहता है, अब वह नहीं आयेगी, कभी नहीं आयेगी।

किशोर : मन तो बड़ा धोखेबाज़ है, बीना। वह हमेशा धोखा देता है। उसकी कही बात कभी सच नहीं होती। मैं

कहता हूँ—वह अभी लौट आयेगी।

बीना : (सिसककर) वह रोते-रोते भाग गई। उसके बोल अभी भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। उसकी बरसती आँखें, अब भी मुझे चारों तरफ़ नज़र आ रही हैं। फिर भी तुम कहते हो कि मैं तुम्हारी बात पर विश्वास कर लूँ?

किशोर : हाँ, तुम देखना। मेरी बात ज़रूर सच होगी। बच्चे कभी कोई बात देर तक याद नही रखते। वह अब तक उस बात को भूल भी गई होगी। देखना, अभी हँसते-गाते आकर, वह तुम्हारे आँचल का छोर पकड़कर लटक जायेगी।

बीना : तुम्हारे कहने से क्या होता है? मैं जानती हूँ। वह अब नहीं आयेगी।

किशोर : माँ होकर तुम्हें सन्तान के मन का ज्ञान नहीं। मैं कहता हूँ···

बीना : मेरा मन कहता है—वह मुझसे रूठ गई है। मैंने उसे कसकर पकड़ रखा था। वह मेरे हाथों से छूटकर भाग गई। जाते-जाते बोल गई—'मैं जा रही हूँ। अब कभी नहीं आऊँगी। फिर तुम मार लेना, जी भरकर मार लेना। देखूँ कैसे मारती हो?'

किशोर : (हँसकर) ज़रा-सी बच्ची तुम्हारे हाथ से छूटकर भाग गई? इतनी कमजोर हो तुम?

बीना : (चिढ़कर) तुम्हें हँसी सूझ रही है?

किशोर : नहीं, नहीं। वाह! किसने कहा?

बीना : और कौन कहेगा? तुम्हारी ये दो आँखें क्या कम हैं, तुम्हारे दिल का हाल कहने के लिए?

किशोर : समझ गया। ये आँखें ही मेरी दुश्मन हैं। इन्हें बन्द

करने के लिए आज मुझे कोई न कोई उपाय खोजना ही होगा।

बीना : हटो, कैसी बात बोलते हो ?

किशोर : ठीक तो कहता हूँ। जो बात मैं कभी मन में भी नहीं सोच पाता, वही तुम न जाने कहाँ से, मेरी इन आँखों में पढ़ लेती हो ! तब फिर मैं मजबूर होकर, इन्हें बन्द करने का उपाय न करूँ, तो क्या करूँ।

बीना : (चिढ़कर) फिर वही ?

किशोर : लो, अब न बोलूंगा। कुछ न कहूंगा। न मुख से, न आँखों से। लाओ, ज़रा एक रूमाल तो दो।

बीना : रूमाल ? रूमाल का क्या करोगे ?

किशोर : ओफ्फोह ! तुम दो तो सही।

बीना : तुम्हें रूमाल की पड़ी है। मेरा दिल डर से धड़क रहा है, तड़फड़ा रहा है। मैं···

किशोर : अच्छा है। थोड़ी एक्सरसाइज़ हो जायेगी। मोटापे का डर नहीं रहेगा।

बीना : (सुनी-अनसुनी करके) मेरी नन्हीं-सी बेटी न जाने कहाँ भटक रही होगी ? कहीं वह रास्ता न भूल गई हो। कहीं वह किसी मोटर के नीचे न आ गई हो। कहीं वह किसी कुएँ में···अरे ! यह क्या ? तुमने अपनी आँखों पर पट्टी क्यों बाँध ली ?

किशोर : पट्टी न बाँध लूं, तो क्या करूँ ? कलियुग का ज़माना जो ठहरा।

बीना : (विस्मय से) यहाँ कलियुग, सतयुग कहाँ से आ पहुँचे ?

किशोर : और नहीं तो क्या ? एक वह ज़माना था जब पति के सन्तोष के लिए, पत्नी अपनी आँखों पर रूमाल बाँध

लेती थी। एक आज का ज़माना है जबकि अपनी आँखें सुन्दर न होने के कारण, पत्नी, पति की बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों से डाह करती है। सब कलियुग की माया है।

बीना : हाँ, कलियुग की माया तो है ही। बेटी का सुबह से पता नहीं, और बाप को हँसी-मज़ाक से फ़ुरसत नहीं। वह बेचारी भूखी-प्यासी न जाने कहाँ भटक रही होगी, तुम्हें क्या ? आराम से रेडियो सुनो बैठकर।

किशोर : (चिढ़कर) समझ में नहीं आता, तुम्हें संगीत से इतनी चिढ़ क्यों है ?

बीना : (तेज़ी से) संगीत से मुझे चिढ़ क्यों होने लगी, मुझे भी फ़िल्मी गाने सुनने का शौक़ है, लेकिन यह हर समय का राग तो अच्छा नहीं लगता। सच, कभी-कभी जी चाहता है, तुम्हारे इस रेडियो में दियासलाई लगा दूँ।

किशोर : तब फ़िल्मी गीत कहाँ से सुनने को मिलेंगे ?

बीना : न मिलें। इस दिन-रात की टाँय-टाँय से तो वही ज़्यादा अच्छा रहेगा।

किशोर : जानती हो—शैक्सपियर ने कहा है—जिस मानव को संगीत में आनन्द नहीं आता, वह हत्या तक कर सकता है।

बीना : फिर मज़ाक ?

किशोर : ख़ूब ! मेरी सीधी-सादी बातें तुम्हें हँसी-मज़ाक-सी लगती हैं ? जब मज़ाक़ करूँगा, तब क्या कहोगी ?

बीना : हे राम ! तुम्हें हँसी सूझ रही है। मेरे प्राणों पर बनी है। ईश्वर के लिए ये बातें बन्द करो। कहीं जाओ, कुछ करो। जैसे भी हो, जहाँ से भी हो, मेरी बेटी को खोजकर ला दो।

किशोर : कैसी नादानी की बातें करने लगती हो तुम कभी-कभी! अरे! छड़ी की मार किसे अच्छी लगती है? हाथ से छूटकर भाग गई, तो क्या हुआ? लौट आयेगी थोड़ी देर में।

बीना : (सिसककर) सुबह की गई है। अभी तक नहीं लौटी। बड़े-बूढ़े तो इतनी देर भूखे रह नहीं सकते। वह नन्हीं-सी जान···

किशोर : वह नन्हीं-सी जान, किसी सहेली के घर बैठी मज़े से लड्डू-पूरी उड़ा रही होगी।

बीना : कैसे पिता हो तुम? और कोई होता तो ऐसी बात सुन व्याकुल हो उठता। नंगे पैर गलियों की खाक छानने को निकल पड़ता। एक तुम हो कि सुनकर तुम्हारा रोम तक नहीं हिला।

किशोर : रोम हिलने की कोई बात भी तो हो?

बीना : इतनी बड़ी बात हो गई, वह तुम्हारी समझ में कुछ भी नहीं?

किशोर : मैं तुम्हारी तरह पागल नहीं हूँ। आओ, रेडियो सुनो थोड़ी देर, मन बहल जाएगा।

बीना : (सुनी-अनसुनी करके) हाँ, पागल तो हूँ ही। माँ का दिल जो पाया है। पलकों में छिपाकर बेटी को पाला था। आँचल की छाया में छिपाकर, दुनिया की नज़रों से बचाया था। मेरे आँचल का छोर पकड़, उसके नन्हे-नन्हे पैरों ने डगमग-डगमग चलना सीखा था। आज वही उन्हीं नन्हे-नन्हे पैरों से भागकर···

किशोर : अरे! तो रोती ही रहोगी, या कुछ बताओगी भी? आखिर इतना घबराने की कुछ वात भी हुई? बात क्या थी? क्यों तुमने इस बुरी तरह उसे मारा?

बीना : नहीं। कुछ नहीं हुआ। तुम चैन से घर में बैठो। आराम से अपना रेडियो सुनो। मैं खुद जाकर अपनी बेटी को खोज लाऊँगी। (रोती है।)

किशोर : न जाने कैसी आदत है तुम्हारी ! बेकार तिल का ताड़ बनाने बैठ जाती हो। खुद भी परेशान होती हो, और मुझे भी परेशान करती हो। अरे ! कहाँ जा रही हो? ठहरो···सुनो तो सही।

बीना : नहीं। मुझे सुनने-सुनाने की फुरसत नहीं। इतनी देर यहाँ बैठ तुम्हें गाथा सुनाऊँगी, न जाने उसका क्या हाल होगा ! न जाने वह कहाँ भटक रही होगी ? कहीं वह रास्ता न भूल गई हो, कहीं वह किसी मोटर के नीचे न आ गई हो। कहीं वह······हटो, छोड़ दो मेरा हाथ। मुझे जाने दो। मैं कहती हूं। हट जाओ।

किशोर : लेकिन कुछ पता भी तो चले। आखिर तुम जा कहाँ रही हो ?

बीना : अपनी बेटी की खोज में।

किशोर : तो क्या राधा सच ही भाग गई ? क्या वह वास्तव में कहीं चली गई ?

बीना : नहीं जी ! वह क्यों कहीं जाने लगी ? तुम्हारे सपनों के पालने में आराम से झूल रही होगी। बेटी की हित-चिन्ता से तुम्हें अपना दर्शन-ज्ञान अधिक प्यारा है। ना। अपना संगीत अधिक रुचता है तुम्हें तो खोए रहो उसी में। डूबे रहो। दुनिया मरे या जिये, तुम्हारी बला से।

किशोर : (अचरज से) बीना ?

बीना : बड़े ज्ञानी, दार्शनिक, संगीतवेत्ता बनते हो। तुम अपना ज्ञान लिए बैठे रहो। हटो, मुझे जाने दो।

किशोर : लेकिन तुम मेरे शास्त्र-ज्ञान की बातें सुनती कहाँ हो ? मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि तुम दिन-रात मुन्ने में ही न उलझी रहा करो। इससे राधा के मन पर बुरा असर पड़ सकता है।

बीना : (चिढ़कर) क्या बातें करते हो ! भाई को प्यार किया जाता देख, बहन के दिल पर बुरा असर होगा ? तुम्हारे शास्त्र की सभी बातें अद्भुत और निराली हैं। तभी तो दार्शनिकों को सनकी और पागल कहा जाता है। जाओ, अपना काम करो। मुझे अपना करने दो।

किशोर : तुम उसे कहाँ-कहाँ देख आईं ? मुन्सिफ साहब के घर पता लगाया ? मोहन दादा के यहाँ पूछा ?

बीना : मैंने कहीं पूछा हो, या न पूछा हो, तुमसे मतलब ? तुम आराम से घर बैठे रहो। हटो, रास्ता छोड़ो। मुझे जाने दो।

किशोर : तुम कहाँ जाओगी ?

बीना : जहाँ तुम नहीं जा सकोगे। बेटी के गुम हो जाने की बात सुनकर भी तुम यों खड़े-खड़े हंसते रहे ? तुम्हारे शरीर में दिल नहीं, पत्थर है पत्थर। तुम शिला से अचल बन, घर में बैठो। मैं माँ हूँ अपनी बेटी को कहीं न कहीं से खोज ही लाऊँगी। (रोती है।)

किशोर : (अधीर भाव से) इस तरह रोने से तो बेटी मिल नहीं जायेगी ?

बीना : नहीं जी। इस तरह खड़े-खड़े बातें बनाने से ज़रूर मिल जायेगी।

किशोर : बीना, आज तुम्हें हुआ क्या है ?

बीना : वही, जो अपनी बेटी से बिछुड़ जाने पर किसी भी माँ

को होता है।

किशोर : तुम माँ हो, तो मैं भी उसका पिता हूँ। मेरे मन में भी उसके लिए ममता है। लेकिन मैं तुम्हारी तरह झूठ-मूठ रोने-धोने में विश्वास नहीं करता।

बीना : अच्छा जी, तो मैं झूठमूठ रोती हूँ।

किशोर : नहीं, नहीं। यह मैंने कब कहा ? लेकिन तुम्हीं बताओ इस तरह रोने से कुछ फायदा है।

बीना : अच्छा तो कुछ काम करने से तो फायदा है ? कर्म करने में तो तुम विश्वास करते हो न। जाओ फिर, यहाँ क्यों खड़े हो ?...जाओ न, जाते क्यों नहीं ?

किशोर : मुझे अब भी विश्वास नहीं होता कि...

बीना : तो तुम अपना विश्वास लिए बैठे रहो, लेकिन मेरे रास्ते में रुकावट तो मत डालो। मैं न जानती थी कि तुम इतने कठोर हृदय भी हो सकते हो।

किशोर : (नरमी से) कठोर-हृदय मैं बिल्कुल नहीं हूँ, बीना। लेकिन...(बीना को रोते देख, एकदम क्रुद्ध होकर) पहले मारती हो, फिर रोती हो। मुसीबत आती है, मेरी। अब कहाँ खोजने जाऊँ, बताओ।

[उत्तर में बीना केवल रोती है।]

किशोर : (क्रोध से) अब बैठकर रोने से क्या होगा ? इधर-उधर पड़ोस में पूछो। पता लगाओ। मैं पुलिस-स्टेशन जाता हूँ। रेडियो से भी ब्राडकास्ट कराने की कोशिश करूँगा। पार्वती...पार्वती।

पार्वती : (दूर से) जी, सरकार, अभी आई।

किशोर : देखो, कान खोलकर सुन लो, जब मैं उसे लेकर लौटूँ तब...

[पार्वती का प्रवेश]

पार्वती : जी, साब। आपने मुझे बुलाया।

किशोर : देख, पार्वती। राधा बड़ी देर से घर नहीं आई है। जा तू ज़रा मुन्सिफ साहब के घर देख आ। कहीं वह वहाँ न खेल रही हो। मोहन दादा के घर भी जाना। समझी।

पार्वती : समझ गई, साब। (जाने को मुड़ती है।)

किशोर : और देख, सुन, हरभजन काका से भी पूछना, और लच्छो मौसी के घर भी पता लगाना।

पार्वती : जी साब। समझ गई सरकार।

बीना : समझ तो गई, पर लौटना जल्दी। वहाँ बैठकर सुखिया से ज़बान लड़ाने न बैठ जाना कहीं।

किशोर : अब जाने भी दोगी उसे, या बातों में ही खड़ा किए रखोगी ?

बीना : लो, और सुनो। बातों में तुमने खड़ा कर रखा है, या मैंने।

किशोर : अच्छा, बाबा, मैंने, मैंने, मैंने। सब कसूर मेरा ही है। बस, अब तो हुआ। जा पार्वती, तू आँधी की तरह से जा और तूफान की तरह से लौटकर आ। समझी।

पार्वती : जी साब, समझ गई, साब सब समझ गई।

[पार्वती तेज़ी से चली जाती है।]

किशोर : उठो तुम भी। यह रोना-धोना बन्द करो। नन्हे को सँभालो। मैं जा रहा हूँ। पता लगाकर ही लौटूँगा।

[नेपथ्य में धीमा संगीत। पट-परिवर्तन। बाज़ार की किसी सड़क का दृश्य। अकेली राधा सड़क पर धीरे-धीरे चल रही है। उसके फ्राक पर कीचड़ के धब्बे हैं। एक रिबन खुलकर कहीं गिर पड़ा है। दूसरा ढीला हो गया है। पैरों में थकन है। मुख पर क्लेश।]

राधा : (हौले-हौले, स्वयं अपने-आपसे ही) बहुत थक गई। अब तो चला नहीं जाता। लेकिन भूख भी तो लगी है। पर खाना कहां से मिलेगा? घर पर माँ मेरे लिए खाना लिए बैठी होगी। क्या बनाया होगा आज अम्माँ ने? मटर की तरकारी और आलू के पराँठे? सोच रही होंगी। अभी राधा आएगी, तो उसे खाने को दूँगी। तब फिर घर लौट चलूँ? देर भी तो कितनी हो गई? कैसी ज़ोर की भूख लगी है।

[राधा लौट पड़ती है। लेकिन दो पग चलकर ही ठिठककर रुक जाती है।]

राधा : नहीं। मैं नहीं जाऊँगी। क्यों जाऊँ? खाना लिए बैठी होंगी, तो बैठी रहें न। खा लें अपना खाना। मुझे नहीं चाहिए। क्यों उन्होंने मुझे मारा? क्यों छड़ी से पीटा? कोई उन्हें पीटे तो पता चले। कैसी चोट लगती है, उस मोटी-सी छड़ी से। बड़ी आई मारने वाली? नहीं, मैं नहीं जाऊँगी, हरगिज़ नहीं जाऊंगी। ज़रा-सा थक गई तो क्या? यहाँ बैठ जाती हूँ। अभी थकान उतर जाएगी, तो फिर चल पड़ूँगी।

[सड़क के एक किनारे बैठ चप्पलों की धूल झाड़ने लगती है।]

राधा : छिः! कितनी मिट्टी है! सारी सड़क पर मिट्टी ही मिट्टी है, तभी तो मेरे पैरों पर···आहा! कितना मज़ा होता, अगर सड़क पर मिट्टी के बजाय रोटियाँ बिछी रहतीं। तब आने-जाने वाले चलते-चलते मज़े से रोटियाँ उठा-उठाकर खाया करते। फिर किसीको घर लौटने की ज़रूरत न पड़ती। न इतनी ज़ोर की भूख ही बरदाश्त करनी पड़ती। लेकिन हमें भूख क्यों लगती

है और रोटी खाने से हमारा पेट क्यों भर जाता है ? अच्छा,एक बात है, जब रोटी हमारे लिए इतनी ज़रूरी चीज़ है, तब वह मुफ्त में क्यों नहीं मिलती ? पैसे से क्यों मिलती है। किसीके पास पैसे न हों, तो वह क्या करे ? भूखा रहे ? उस दिन मास्टरजी कहते थे। दुनिया में सबसे ज़्यादा ज़रूरी चीज हवा है—हवा जिसमें हम साँस लेते हैं। कोई इन्सान हवा के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता। लेकिन इन्सान रोटी के बिना भी तो नहीं रह सकता। और जब हवा पैसे से नहीं मिलती तो रोटी क्यों पैसे से मिलती है ? अरे ! मैं भी कैसी बुद्धू हूँ। इस सवाल का जवाब मास्टरजी से पूछ लिया होता तो मज़ा आ जाता। इम्तहान में अगर वो ये सवाल दे देते, तो मैं चट से उत्तर दे देती। लेकिन क्या हुआ ? मास्टरजी से ज़्यादा अच्छी तरह तो मेरे पापा ही बता सकते हैं। हाँ, यही ठीक है। उनसे ही पूछूँगी।

[राधा उठकर चल पड़ती है, लेकिन फिर रुक जाती है।]

राधा : लेकिन पापा तो घर में हैं। और घर में माँ भी हैं। मैं घर जाऊँगी, तो अम्माँ मुझे देख लेंगी, और फिर छड़ी से मारेंगी नहीं। मैं घर नहीं जाऊँगी। हरगिज़ नहीं जाऊँगी। लेकिन मुझे भूख भी तो लग रही है। रोटी के लिए पैसे कहाँ से···आहा। यह गुब्बारे वाला ? कैसे प्यारे-प्यारे गुब्बारे बेच रहा है।

[सामने से एक गुब्बारे वाला, बाँस में बहुत सारे रंग-बिरंगे गुब्बारे लगाये, गीत गाता हुआ आता है।]

गुब्बारे वाला : आओ चुन्नू, आओ मुन्नू, आओ बिटिया रानी। ले लो ये गुब्बारे, लाल, सुनहरे औ' धानी। आओ चुन्नू, आओ मुन्नू···

राधा : (पुकारकर) ए गुब्बारे वाले! हमको भी गुब्बारे दो।

गुब्बारे वाला : लो, लो, बिटिया, गुब्बारे लो। बोलो, कौनसा दूँ?

राधा : एक हमको यह दो, एक यह पीला दो। और चार ये लाल दो, और बस, चार यह हरे रंग के दे दो।

गुब्बारे वाला : लो, यह लो। एक यह बैंजनी। एक यह पीला। चार यह लाल और चार ये हरे। बस?

राधा : बस।

[गुब्बारे हाथ में ले, हवा में हाथ ऊँचा कर राधा गुब्बारे वाले के स्वर में गाने का प्रयास करती है।]

राधा : आओ चुन्नू, आओ मुन्नू, आओ बिटिया रानी। ले लो ये गुब्बारे, लाल, सुनहरे औ' धानी। आओ चुन्नू···

गुब्बारे वाला : अरे! वाह, बिटिया! यह क्या कर रही हो?

राधा : गुब्बारे बेच रही हूँ।

गुब्बारे वाला : वाह री मुन्नी! मुन्नी रानी गुब्बारे बेचती नहीं, खरीदती हैं। लो देखो, और कौनसा लोगी? बोलो, बताओ।

राधा : नहीं, हमें और गुब्बारे नहीं चाहिए। हम बस इन्हीं को बेच लेंगे।

गुब्बारे वाला : अच्छा भाई, तुम्हारी मर्ज़ी। आज यह खेल खेलना चाहती हो तो यही सही। लाओ, हमारे पैसे तो दो।

राधा : पैसे तो हमारे पास नहीं हैं।

गुब्बारे वाला : पैसे नहीं हैं?

राधा : नहीं, हम ये गुब्बारे बेचेंगे। बेचकर हमको पैसे मिलेंगे। पैसे से हम पूरी खायेंगे। हमको भूख लगी है।

गुब्बारे वाला : ओह! भूख भी लगी है? पूरी भी खरीदोगी। बड़ा अद्‌भुत खेल है तुम्हारा। अच्छा, आज हम जाते हैं। कल इसी जगह आकर हमको पैसे दे देना।

राधा : वाह, पैसे कहाँ से देंगे? उनकी तो हम पूरी खा लेंगे न?

गुब्बारे वाला : इन पैसों की तुम पूरी खा लेना। हमारे पैसे अम्माँ से ला देना।

राधा : नहीं, अम्माँ से हमारी लड़ाई हो गई है। अब हम अम्माँ के पास नहीं जाएँगे। आखिर अम्माँ समझती क्या है? क्या हम उसके बिना रह ही नहीं सकते? हम भी दिखा देंगे अम्माँ को, अगर उन्हें हमारी परवाह नहीं, तो हमें भी उनकी परवाह नहीं। अब हम हरगिज़ घर नहीं जाएँगे। अगर हमें भूख न लगी होती तो···

[राधा की आँखों में आँसू भर आते हैं।]

गुब्बारे वाला : (आँसू पोंछकर) भूख लगी है, तो घर जाओ बेटी!

[उत्तर में राधा ज़ोर से सिर हिलाकर मना करती है।]

गुब्बारे वाला : जाओ, मुनिया घर जाओ। अम्माँ रोटी भी देगी, पैसे भी देगी। ये गुब्बारे ले जाओ। कल मैं फिर आऊँगा। जाओ, बिटिया, घर जाओ।

[गुब्बारे वाला गाता हुआ चला जाता है—
आओ चुन्नू, आओ मुन्नू, आओ बिटिया रानी,
ले लो ये गुब्बारे···]

राधा : घर? नहीं, नहीं। अब मैं कभी घर न जाऊंगी। घर

जाऊँगी तो, अम्माँ फिर मुझे मारेगी। अम्माँ मुझे प्यार नहीं करती। ज़रा भी नहीं। वह तो बस मुन्ने को प्यार करती है। अब मैं घर नहीं जाऊँगी, हरगिज़ नहीं जाऊँगी। कभी नहीं जाऊँगी। इन गुब्बारों को बेचकर मुझे बहुत सारे पैसे मिलेंगे। उनसे मज़े से पूरी-पराँठे खरीदकर खाऊँगी।

[एक हाथ से आँसू पोंछते, दूसरे हाथ से गुब्बारे हवा में उड़ाते, गाती हुई आगे बढ़ती है।]

राधा : आओ चुन्नू, आओ मुन्नू, आओ बिटिया रानी, ले लो ये गुब्बारे, लाल, सुनहरे···

[पल भर को राधा नज़रों की ओट होती है। उसी समय मोटर के हार्न की तीखी आवाज़, राधा की चीख और ब्रेक लगने की कर्कश ध्वनि। एक पुरुष स्वर गूंज उठता है।]

रमेश : ए लड़की, क्या तेरी मौत आई है ?

[आगे-आगे डरी-सी राधा, पीछे-पीछे रमेश स्टेज पर आते हैं।]

राधा : किधर ? मुझे तो दिखाई नहीं देती।

रमेश : मैं कहता हूँ क्या तुझे मौत पाने की लगी है, मरना चाहती है ?

राधा : नहीं, मुझे भूख लगी है। मैं खाना चाहती हूँ।

रमेश : भूख लगी है तो घर क्यों नहीं जाती ? अम्माँ खाना देगी।

राधा : नहीं, अम्माँ खाना नहीं देगी। वह तो मुझे मारती है।

रमेश : (हँसकर) मारती है, तो क्या हुआ ? माँ की मार तो सभी को खानी पड़ती है, बेबी रानी।

राधा : नहीं, आप कुछ नहीं जानते। यह बात नहीं है।

रमेश : तब क्या बात है ? हमें समझा दो।

राधा : पहले मेरी माँ मुझे कभी डाँटती तक नहीं थी, लेकिन...

रमेश : पहले कब ?

राधा : जब मुन्ना घर में नहीं आया था, तब माँ मुझे बहुत प्यार करती थी। मेरा सब काम ख़ुद अपने हाथ से करती थी। मुझे नहलाती थी, खिलाती थी, सुलाती थी, बाज़ार ले जाती थी। जब से मुन्ना अस्पताल से आया है, माँ को मेरा काम करने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती। दिन-रात उसी शैतान के काम में फँसी रहती है।

रमेश : लेकिन बेबी रानी, मुन्ना छोटा भी तो है। तुम तो अब बड़ी हो गई हो। अपना काम ख़ुद कर सकती हो। लेकिन वह तो अभी बहुत छोटा है। माँ अगर उसका काम नहीं करे, तो फिर कौन करे ?

राधा : क्यों ? पार्वती जो है ?

रमेश : पार्वती ? वह कौन है ?

राधा : हमारी नौकरानी। वह जो हमारे घर काम करती है।

रमेश : लेकिन पार्वती मुन्ने की माँ तो नहीं है। जैसे माँ पहले तुम्हारा सब काम अपने हाथ से करती थी, ऐसे ही अब मुन्ने का करती है। इसमें इतना गुस्सा करने की क्या बात है ? वह तुम्हारा ही तो भाई है।

राधा : नहीं। मुझे ऐसा भाई नहीं चाहिए, जिसकी वजह से बात-बात पर दिन-रात मार खानी पड़े। क्यों लाई माँ उसे अस्पताल से ? हमने तो नहीं कहा था लाने को ? (एकाएक वह रो पड़ती है।)

रमेश : च्-च्-च् बुरी बात। रानी बेबी कहीं रोती भी होगी ! देखो...हमारी बात सुनो...अरे, भई, कुछ

हमारी भी तो सुनो।

राधा : (सिसककर) क्या ?

रमेश : देखो बेबी, माँ कभी-कभी मारती है, तो हमेशा प्यार भी तो करती है। मीठी-मीठी मिठाई खाने को देती है, नये-नये कपड़े···

राधा : नहीं। मेरी माँ अब मुझे प्यार नहीं करती। बस, वह तो सिर्फ़ मुन्ने को ही प्यार करती है।

रमेश : किसने कहा ?

राधा : कहेगा कौन ? क्या मैं इतना भी नहीं देखती, इतना भी नहीं समझती ? क्या मैं नन्हीं-सी बच्ची हूँ ?

रमेश : नहीं, नहीं, तुम तो बहुत बड़ी हो। बड़ी समझदार हो। तभी तो मैं कहता हूँ कि घर लौट जाओ। समझदार बच्चे ऐसे बेवकूफ़ी के काम नहीं किया करते।

राधा : कैसी बेवकूफ़ी ?

रमेश : यही। चुपके से घर से निकल भागना और माँ-बाप को बेकार परेशान करना। यह बेवकूफ़ी ही तो है। जाओ, बेबी, घर लौट जाओ।

राधा : नहीं। अब मैं घर नहीं जाऊँगी, हरगिज़ नहीं जाऊँगी, कभी नहीं जाऊँगी। घर जाऊँगी तो माँ फिर मारेगी।

रमेश : क्यों मारेगी ?

राधा : देखते नहीं ? यह मेरे फ्राक पर कीचड़ लग गया है। क्या मैंने जान-बूझकर लगाया है ?

रमेश : नहीं, नहीं, कौन कहता है ?

राधा : माँ तो यही समझती है कि मैं जान-बूझकर सब काम बिगाड़ देती हूँ। मेरा फ्राक गन्दा हो गया, इसलिए वह मुझे मारेगी। खाना खाने के लिए, मैं वक्त पर घर न पहुँची, इसलिए भी वह मुझे मारेगी। नहीं, अब मैं

घर नहीं जाऊँगी, हरगिज़ नहीं जाऊँगी। कभी नहीं···
(सिसकने लगती है।)

रमेश : रोते नहीं, बेबी। रोना बुरी बात है। देखो कुछ ग़लती हो जाने पर ही माँ मारती है। आज तुमने कुछ ग़लती की होगी, तभी तो माँ ने मारा होगा।

राधा : (चिढ़कर) वाह! हमने क्या ग़लती की? माँ बैठी मुन्ने के कुर्ते पर गोटा टाँक रही थी। हमने कहा···

[दृश्य-परिवर्तन]

राधा : माँ, भूख लगी है, ओ माँ, सुनती हो कि नहीं, हमें भूख लगी है।

बीना : हा, राधा। तंग न कर। मुझे काम करने दे।

राधा : हम कुछ नहीं जानते। हमें कुछ खाने को दो। उठो, नहीं तो मैं अभी तुम्हारा सारा गोटा मसल दूँगी।

बीना : हट यहाँ से। जा पार्वती से माँग ले।

राधा : (चिढ़कर) पार्वती, पार्वती, जब देखो, तब पार्वती। बस एक पार्वती ही तो रह गई है मेरा काम करने के लिए। मैं जाती हूँ।

[कोने में बैठी पार्वती का पल्ला खींचते हुए राधा उससे बोलती है।]

राधा : ए पारो उठ। मुझे कुछ खाने को दे। उठ ना। छोड़ यह आलू। इन्हें बाद में काटना। उठ। तू उठती है या नहीं। कहूँ मैं माँ से ?

पार्वती : हटो बिटिया! तंग न करो। वहाँ अलमारी में केला रखा होगा, जाओ ले लो।

राधा : हुंह! केला भी कोई खाने की चीज है? मैं तो नहीं खाऊँगी केला। क्यों खाऊँ? भैया तो खाए बिस्कुट और हम खाएँ केला? अरे हाँ! खूब याद आया।

चुपके से चलकर···क्या पता चलेगा माँ को ! हाँ, हाँ यही ठीक है। तो चलूँ, धीरे-धीरे चुपके-चुपके···

[राधा आड़ में रखी कोने की अलमारी की ओर बढ़ती है। उस ओर माँ की पीठ है। वह अलमारी खोलती ही है कि सहसा मुन्ना रो पड़ता है। हाथ की सलाई नीचे फेंक, बीना लपक कर मुन्ने को गोद में उठा लेती है।]

बीना : मुन्ना, मेरा राजा बेटा। मुन्ने को भूख लगी है ? मुन्ना दूध पिएगा ? मैं अभी मीठा-मीठा दूध बनाकर लाती हूँ। अपने राजा बेटे को···अरे ! यह क्या ? राधा, तू क्या कर रही है ?

राधा : (भय से काँपकर डरे स्वर में) कुछ नहीं माँ, कुछ नहीं, मैं तो वह···मैं तो जरा इस डिब्बे की तस्वीरें देख रही थी।

बीना : (क्रोध से) लाख बार मैंने तुझसे कहा कि ये बिस्कुट न खाया कर। ये मुन्ने के लिए हैं। पर जब देखो तब, तू इन्हींको खाने बैठ जाती है। फिर खाएगी ? बोल ?

राधा : माँ !

बीना : जब तक एक बार कान नहीं खींचे जाएंगे, तब तक तुझे अक्ल न आएगी। (उसका कान पकड़कर) फिर खाएगी ? बोल-बोल ?···

राधा : (गुस्से से) कान क्यों पकड़ती हो ? मेरा कान दुखता है। छोड़ दो, माँ, छोड़ दो।

बीना : एक तो कसूर करती है, ऊपर से बात मानने को तैयार नहीं होती ! ठहर मैं बताती हूँ तुझे।

[सामने पड़ी छड़ी उठाकर, बीना ज़ोर से एक छड़ी राधा को मारती है। राधा एकदम रो

पड़ती है।]

राधा : (रोकर) हाय, माँ ! मारो नहीं...अब नहीं खाऊँगी। कभी नहीं खाऊँगी। न मारो माँ, मत मारो माँ...

बीना : मारूँगी, जी भरकर मारूँगी। आज मैं तुझे मार ही डालूँगी। तू बहुत सिर पर चढ़ गई है। सदा मुझे तंग करती रहती है। कभी मेरा कहना नहीं मानती, कभी मेरी बात नहीं सुनती। आज मैं...(सटासट उसके चार-छः छड़ी जमा देती है।)

राधा : मारोगी ? लो, मैं जाती हूं। फिर मार लेना। देखूं किसे मारती हो।

बीना : ए राधा, कहाँ भागी जा रही है ? सुन, ठहर, ओ राधा...

राधा : मैं जा रही हूं। अब कभी नहीं आऊँगी। कर लो तुम मुन्ने को प्यार। बना लो उसके लिए नए-नए कपड़े। ...अब मैं कभी तुम्हें परेशान नहीं करूँगी। मैं जा रही हूं। अब मैं कभी लौटकर नहीं आऊँगी। हरगिज़ नहीं आऊँगी। मैं जा रही हूँ। अभी, इसी दम... (बाहर भाग जाती है।)

[दृश्य-परिवर्तन]

राधा : (सिसककर) अब मैं घर नहीं जाऊँगी, कभी नहीं जाऊँगी।

रमेश : (गहरी साँस भरकर) कितनी नादान है तुम्हारी माँ ! माँ बन गई, लेकिन माँ बनना सीखा नहीं।

[राधा केवल सिसक-सिसककर रोती है।]

रमेश : रोओ नहीं, बेबी रानी। रोती क्यों हो ? घर नहीं जाना चाहती ?

राधा : नहीं।

रमेश : न जाना भई, न जाना। मेरे घर तो चलोगी ?

राधा : तुम्हारे घर ? क्या तुम्हारी माँ मुझे प्यार करेंगी ?

रमेश : क्यों नहीं ? ज़रूर करेंगी।

राधा : वे मुझे मारेंगी तो नहीं ?

रमेश : नहीं, नहीं, मारेंगी क्यों ? तुम तो बड़ी अच्छी लड़की हो। बड़ी समझदार। समझदार बच्चों को मेरी मां बहुत प्यार करती हैं।

राधा : (ताली बजाकर) ठीक है। तब मैं तुम्हारे घर चलूँगी।

रमेश : अच्छा, तो आओ बैठो मोटर में।

राधा : चलो। अरे, वाह ! अंकिल। तुम्हारी मोटर तो बड़ी सुन्दर है।

रमेश : पसन्द आई तुम्हें ?

राधा : उहूँ ! ज़रा भी नहीं।

रमेश : सच ?

[दोनों हँस पड़ते हैं। दृश्य-परिवर्तन]

[रमेश और राधा घर के सामने खड़े हैं। राधा की आँखों पर रूमाल बँधा है। वह रमेश की गोद में चढ़ी हुई है।]

रमेश : लो राधा-रानी, हमारा घर आ गया।

राधा : आहा ! घर आ गया ? अच्छा, भैया, अब हमारी आँखों पर से रूमाल खोल दो।

रमेश : वाह ! अभी से कैसे खोल दें ?

राधा : क्यों, अभी क्यों नहीं ?

रमेश : इतनी जल्दी भूल गई ? अभी क्या वादा किया था ?

राधा : क्या ?

रमेश : माँ की गोद में बैठकर, आँखों पर से रूमाल खोला जाएगा, यही तो फैसला किया गया था न ? आओ, अन्दर चलें।

राधा : तुम बड़े नटखट हो, अंकिल।

रमेश : अपनी राधा से अधिक नहीं। लो पकड़ो मेरा हाथ। नीचे उतरो।

राधा : अब हम तुम्हारे घर की, छोटी-सी बजरी की सड़क पर चल रहे हैं न, अंकिल ?

रमेश : हाँ। इस छोटी-सी सड़क पर लाल-लाल बजरी बिछी है। लो, यह हमारे घर का दरवाज़ा आ गया और यह हमने घण्टी बजा दी।

[रमेश द्वार पर लगी घण्टी का बटन दबा देता है।]

राधा : तुम्हारे घर में भी बगिया है, अंकिल ? क्या उसमें भी फूल खिलते हैं ?

रमेश : हाँ, हाँ, क्यों नहीं ? हमारी बगिया में बड़े सुन्दर फूल खिलते हैं। बेला, जूही और गुलाब। लो, अभी तक कोई दरवाज़ा खोलने ही नहीं आया। एक बार फिर घण्टी बजा दें।

[रमेश पुनः घण्टी का बटन दबाता है।]

रमेश : वह देखो। शायद कोई आ रहा है। पैरों की आवाज़ सुन रही हो न ? यह उसने दरवाज़ा खोला, और···

राधा : और, यह हमने अपनी आँखों पर से रूमाल खोल दिया। अरे, वाह ! अंकिल, खूब !

रमेश : क्या हुआ राधा ?

राधा : तुम्हारा घर तो बिल्कुल हमारे घर जैसा ही है, अंकिल !

रमेश : अच्छा ! क्या तुम्हारा घर भी ऐसा ही है ?

राधा : हाँ, आँ बिल्कुल। वैसे ही पर्दे ! वही मेज़ ! (अन्दर झाँककर) वैसा ही रेडियो !

[अन्दर कहीं शिशु रोता है।]

राधा : (चौंककर) अरे ! मेरा नन्हा भैया भी बिल्कुल इसी-तरह रोता है।

रमेश : तुम्हारा भैया कितना बड़ा है ?

राधा : यही कोई सालभर का होगा। तुम्हारा भैया कितना बड़ा है ?

रमेश : हमारा भैया भी इतना ही बड़ा है।

राधा : (विस्मय से) अरे ! सच !

[दोनों ज़ोर से हँस पड़ते हैं।]

राधा : अंकिल, तुम्हारी मां किधर हैं ? हमें उनके पास ले चलो न !

रमेश : यह दरवाज़ा खोलकर कोई झटपट लौट गया है। वह उन्हें बुलाने ही गया होगा। बस वे आती ही होंगी। सुनो वह चप्पलों की आवाज़। लो वे आ गईं···

राधा : (एकदम चीखकर) अरे, माँ, तुम ?

बीना : राधा, मेरी बच्ची, तू आ गई ? आ, आ, मेरी गोद में आ। राधा, मेरी बेटी, तू कहाँ चली गई थी ? आ, रानी। माँ की गोद में आ। कब से मैं तुझे खोज रही थी, राधा, मेरी बेटी···

[बीना दौड़कर राधा को गोद में उठा लेती है। राधा छूटने को छटपटाती है।]

राधा : (चीखकर) छोड़ दो। मुझे छोड़ दो। मुझे जाने दो।

रमेश : राधा, कहाँ जा रही है ?

राधा : अंकिल, तुम बहुत बुरे हो। तुम मुझे मेरे ही घर ले

आए। तुमने अपना वादा पूरा नहीं किया। तुम बड़े बुरे हो। छोड़ दो, मुझे जाने दो।

बीना : राधा, बेटी, बात सुन···

राधा : नहीं। नहीं सुनूँगी। मैं कुछ भी नहीं सुनूँगी। तुम मुझे ज़रा भी प्यार नहीं करतीं। तुम तो मुझे मारती हो। हटो, हट जाओ। मुझे जाने दो।

किशोर : (नेपथ्य से बोलते हुए, सामने स्टेज पर आता है।) बीना, मैंने कहा, अजी सुनती हो, राधा का तो कहीं भी···अरे! क्या राधा आ गई? मेरी बेटी मिल गई? ए, नटखट, कहाँ चली गई थी, तू? आ, इधर, मेरी गोद में आ।

राधा : नहीं, हम नहीं आएँगे।

किशोर : क्यों? पापा की गोद में नहीं आओगी?

राधा : पापा। (दौड़कर उसकी गोद में चली जाती है।)

किशोर : यह बात। अच्छा, पहले पापा के गले में हाथ डालो। हाँ, ऐसे। अच्छा अब पापा को एक खट्टी-मिट्ठी चुम्मी दो। हाँ, ऐसे। अच्छा, अब एक खट्टी-मिट्ठी अम्माँ को भी दो।

राधा : नहीं।

किशोर : क्यों?

राधा : जब अम्माँ हमें प्यार नहीं करती, तो हम अम्माँ को क्यों प्यार करें?

बीना : कैसी बात बोलती है, बेटी! मैंने कब तुझे प्यार नहीं किया?

राधा : मत बोलो हमसे। हम तुमसे नहीं बोलते।

किशोर : देखो बीना! बेटी को तुमने नाराज़ कर दिया है। अब उसके लिए गरम-गरम पकौड़ी तो बनाकर लाओ

और अपने हाथ से खिलाओ। तब वह मानेगी। है न राधा ?

राधा : नहीं। हमें नहीं चाहिए पकौड़ी।

रमेश : अरे, वाह ! पकौड़ी नहीं चाहिए ? हमसे तो कोई पकौड़ी को पूछे, तो हम कभी मना न करें।

राधा : हुँह ! क्या खाएँ ? पकौड़ी की प्लेट लाकर माँ मेज़ पर रख देंगी। कहेंगी ए राधा, देख वहाँ मेज़ पर पकौड़ी रखी हैं। जा, खा ले। मैं मुन्ने को दूध पिला रही हूँ।

बीना : नहीं, बेटी ! आज मैं तुझे अपने हाथ से पकौड़ी खिलाऊँगी। पहले की तरह, तेरा सब काम अब मैं हमेशा खुद ही किया करूँगी। आ, मेरे पास तो आ।

राधा : मत बोलो हमसे। जब हम तुमसे नहीं बोलते, तो तुम क्यों हमसे बोलती हो ? पापा, इन्हें जानते हो, कौन हैं ?

किशोर : कौन हैं ?

राधा : ये मेरे अंकिल हैं। यही तो मुझे मोटर में बैठाकर यहाँ तक लाए हैं।

रमेश : जी। मेरा नाम रमेश है। मैं एम० ए० का विद्यार्थी हूँ। मेरा विषय मनोविज्ञान है।

किशोर : बड़ी खुशी हुई तुमसे मिलकर। रमेश, कृतज्ञता प्रगट करने के लिए आज मेरे पास शब्द नहीं।

रमेश : ऐसा न कहिए, भैया। वह तो मेरा कर्तव्य था।

किशोर : इस घर को अपना ही घर समझना। दूसरे-तीसरे दिन···

राधा : जानते हो पापा, इनकी मोटर बड़ी सुन्दर है। और, हाँ, रास्ते में इन्होंने मुझे बहुत सारी चीज़ें खिलाईं।

तरह अपना सब काम अपने हाथ से कर सकता है ?

राधा : यह सब हम कुछ नहीं जानते ।

रमेश : वाह ! तुम नहीं जानोगी, तो और कौन जानेगा ? मुन्ना भी तो तुम्हारा ही है ।

राधा : नहीं । हमें ऐसा रोना मुन्ना नहीं चाहिए । क्यों माँ मुन्ने को लाई, हमने तो नहीं कहा था लाने को ?

रमेश : राधारानी, हम बताएँ, माँ मुन्ने को किसलिए लाई है ।

राधा : बताओ ।

रमेश : जिससे संग खेलने के लिए राधा को एक नन्हा-सा भाई मिल जाए ।

राधा : पर वह खेलता कहां है ? पड़ा सोता रहता है । आलसी कहीं का !

रमेश : अभी तो वह बहुत छोटा है । जब बड़ा हो जाएगा, तभी तो खेलेगा ।

राधा : मेरे संग खेलेगा ? मेरी उँगली पकड़कर घूमेगा ?

किशोर : इतना ही नहीं । तेरा काम करेगा । प्यार से तुझे दीदी कहकर बुलाएगा । सब बात में तेरा कहना मानेगा ।

राधा : तब माँ ने ऐसा क्यों नहीं कहा ?

किशोर : माँ ने समझा होगा कि तू इतनी समझदार है कि यह ज़रा सी बात तुझे ज़रूर मालूम होगी । बताने की ज़रूरत ही नहीं ।

रमेश : अच्छा राधा, ऐसा करो । मुन्ना तुम्हारा नन्हा-सा भैया है, न ?

राधा : हाँ ।

रमेश : तो आज से उसका सब काम तुम किया करो । माँ को फुरसत मिल जाएगी, तो तुम्हारा काम वह किया करेगी ।

राधा : (विस्मित होकर) मैं ? मुन्ने का काम मैं किया करूँ ?

किशोर : क्यों नहीं ? क्या वह तेरा नन्हा-सा भाई नहीं है ?

राधा : (ताली बजाकर) हाँ···हाँ···वह मेरा नन्हा-सा भैया है । मैं उसे अपने हाथ से दूध, बिस्कुट खिलाऊँगी। पलने में झूला झुलाऊँगी। उँगली पकड़-कर चलना सिखाऊँगी। माँ, ओ, माँ···

बीना : (अन्दर से ही) आई, बेटी ! अभी आई। (बाहर आते हुए) क्या है राधा, बोल बिटिया !

राधा : माँ, दूध की शीशी हमें दो । हम मुन्ने को दूध पिलाएँगे।

बीना : अच्छा, अच्छा, पिलाना। ले पहले तू कुछ खा ले।

राधा : (उसका आँचल पकड़कर लटकते हुए) नहीं। पहले हमें दूध की बोतल लाकर दो।

बीना : देती हूँ, बाबा, देती हूं। मेरा आँचल तो छोड़।

रमेश : छोड़ दो, राधा रानी ! चलो, तुम मेरे साथ चलो।

राधा : (अचरज से) तुम्हारे साथ ? कहाँ ?

रमेश : मेरे घर। यहाँ इस घर में तो तुम नहीं रहोगी न ?

राधा : आप बड़े नटखट हैं । जाइए, हम आपसे नहीं बोलते ।

बीना : न बोलना, री ! मुझे तो छोड़।

किशोर : (हंसकर) अरे, यह क्या, बावरी ! आँचल में अपना मुख क्यों छिपा रही है ?

बीना : भली चाचा-भतीजी की लड़ाई हुई। बीच में, मेरा आँचल मुफ्त में फंस गया।

रमेश : मुफ्त में नहीं फंसा, भाभी ! इस पर लगे काजल के ये दाग इस बात की खुली गवाही दे रहे हैं कि पल

भर को भी इसका यह छोर छूट जाने पर तुम्हारे मन की क्या दशा होती है।

बीना : हटो, अब मुझसे ही मसखरी करोगे।

[सब ज़ोर से हँस पड़ते हैं।]

आहुति

पात्र :

राज्यश्री : हर्ष की बहन
हर्ष : थानेश्वर का युवक सम्राट्
रूपलेखा : राज्यश्री की प्रमुख सहचरी
श्रीरंग : हर्ष का विश्वासपात्र राजदूत
भिक्षु : एक बौद्ध भिक्षु
सैन्यनायक : शत्रु सेनापति

राज्यश्री तथा हर्षवर्धन के जीवन की इस छोटी-सी झांकी का आधार, हर्षवर्धन के राजकवि बाण द्वारा विरचित 'हर्षचरित' है।

वह सातवीं शताब्दी का प्रारम्भ था, जब स्थाण्वीश्वर के राजवंश ने प्रबलता प्राप्त की। शक्ति संचय करके उन्होंने हूणों के आक्रमणों का सामना किया।

उस समय कान्यकुब्ज में मौखरियों का प्राधान्य था और मालव में गुप्तवंश के कुछ राजकुमार प्रबल हो गए थे। यशोधर्म देव के साम्राज्य के अनेक विभाग हो गए थे और स्थान-स्थान पर नवीन राजवंश अधिकार जमा रहे थे। गुप्तवंश के महाराजाधिराज मगध में सिकुड़कर अपनी मान-मर्यादा लिए दिन बिता रहे थे, फिर भी पूर्वी मालव, मगध तथा गौड़ उन्हीं के अधिकार में थे।

गौड़-वंशीय राजकुमार शशांक नरेन्द्रगुप्त ने मौखरी और वर्धनों की सम्मिलित राज्यशक्ति को उलट देने का संकल्प किया। वर्धन वंश के सम्राट् प्रभाकरवर्धन की मृत्यु होते ही शशांक नरेन्द्रगुप्त के उकसाने से मालव नरेश देवगुप्त ने प्रभाकरवर्धन के दामाद गृहवर्मा से कान्यकुब्ज छीन लिया और उसकी पट्टमहिषी राज्यश्री को बन्दी बना लिया।

बहनोई के वध और बहन के अपहरण से क्रुद्ध हो राज्यवर्धन ने कान्यकुब्ज पर चढ़ाई की और उसको

अपने अधिकार में कर लिया, किन्तु शशांक नरेन्द्रगुप्त ने छल से उसकी हत्या करा डाली।

हर्षवर्धन की आयु यद्यपि अभी केवल सोलह वर्ष की थी, किन्तु उसके हृदय में अपार शौर्य था। अपने चारों ओर घुमड़-घुमड़कर घिरती विपत्तियों का उसने अतुल पराक्रम से सामना किया, तथा मालव और गौड़ के षड्यन्त्र को ध्वस्त कर दिया।

राजनीति के विषम जाल में फँसकर भी वह पारिवारिक स्नेह को नहीं भूला था। नवीन विचारों को ले, एक नवीन साम्राज्य का स्वप्न देखने वाले, उस युवा शासक ने, चितारोहण करती अपनी बहन के प्राणों की रक्षा कर, देश की नारियों के सम्मुख कर्तव्य का नया दीप जला दिया। उसके झिलमिल-आलोक में यह सत्य स्पष्ट हो उठा कि जिन्हें प्रगति के पथ पर चलना है, उन्हें अपना समग्र मनोबल एकत्र कर, रूढ़ियों में लिपटी गलित-जर्जरित, विकारग्रस्त परम्परा की आहुति देनी ही होगी।

[संगीत के स्वरों के साथ नूपुर छनक रहे हैं। जैसे-जैसे संगीत अधिक तीव्र हो प्रखर होता जाता है, नृत्य की छमछमाहट बढ़ती जाती है।]

आहुति

राज्यश्री : (कड़ककर) ठहरो !

रूपलेखा : (चौंककर) महादेवी!

राज्यश्री : (गम्भीर स्वर में) नृत्य बन्द कर दो, लेखा !

रूपलेखा : (विनीत भाव से) अपराध जान सकूंगी, देवी ?

राज्यश्री : अपराध ? नहीं···लेखा कभी कुछ अपराध नहीं कर सकती।

रूपलेखा : (दृढ़ स्वर में) बिना किसी अपराध के महादेवी भी लेखा के नृत्य की अवमानना नहीं कर सकतीं।

राज्यश्री : तू सच कहती है, लेखा ! आज तेरे नृत्य करते नयनों में विषाद के काले बादल घिर आये हैं, जो उमड़-उमड़-कर बरस जाने को आकुल-व्याकुल हो रहे हैं। तब फिर तू ही कह दे—क्या नृत्य पर से मेरा ध्यान हट जाना अस्वाभाविक है ?

रूपलेखा : महादेवी !

राज्यश्री : सच कह दे, लेखा ! आज क्या संवाद सुन लिया है इन कानों ने, जो ये नयन यों बरसने को प्रस्तुत हो उठे हैं।

रूपलेखा : कुछ भी नहीं, महादेवी !

राज्यश्री : कब तक छिपायेगी, लेखा ?

रूपलेखा : (रुँधे स्वर में) मेरी वाणी आज बोलने में असमर्थ है, महादेवी !

राज्यश्री : वाणी भले ही मूक रह जाये, पर तेरे नयनों ने उसके मौन को अकारथ कर दिया है। बोल दे, लेखा ! ऐसी

क्या बात है, जो इन हँसती आँखों में ये बादल घिर आये हैं ?

[सहसा रूपलेखा सिसक उठती है]

राज्यश्री : अरे ! यह क्या ? तू तो रोने लगी ? लेखा···

[रूपलेखा की सिकसियाँ और भी बढ़ जाती हैं]

राज्यश्री : (घबराकर) क्या है, लेखा ? तू बोलती क्यों नहीं ? महाराज तो कुशल से हैं ? भाई हर्ष पर तो कुछ संकट नहीं आया ? भ्राता राज्यवर्धन पर किसी नए शत्रु ने धावा तो नहीं किया ?

रूपलेखा : (सिसकी भरकर) न, पूछो, स्वामिनि ! मैं असमर्थ हूँ। वह बात मैं अपने मुख से न कह सकूँगी।

राज्यश्री : (गम्भीर स्वर में) तुझे कहना ही होगा, लेखा ! क्या तू चाहती है कि मेरा व्याकुल हृदय औरअधिक चिन्ता-कुल हो उठे ? कि मेरे मानस पर घिरी शंकाओं की ये घटाएँ उमड़-घुमड़कर, मेरी शेष-अवशेष, सुख-शान्ति को भी नष्ट-विनष्ट कर डालें ?

[दोनों हाथों में अपना मुख छिपा रूपलेखा धीरे-धीरे सिसकती है।]

राज्यश्री : (व्याकुल होकर) आज मेरे चारों ओर अग्नि जल रही है। पिता की मृत्यु हो गई। माँ ने सहमरण का पथ खोज लिया। भ्राता राज्यवर्धन युद्ध की दहकती लपटों में घिर गया। वह किशोर हर्ष, जिसकी अभी आयु की रेखाएँ भी नहीं फूटीं, अपने नाज़ुक, कोमल हाथों से हिलते-डगमगाते सिंहासन की डोर संभालने में कब तक समर्थ रहेगा ? कब तक मुझे धड़कते हृदय से, आर्यपुत्र के युद्ध से लौटने की प्रतीक्षा करनी होगी? कब तक···

रूपलेखा : (अधीर स्वर में) इतना दुःख न करें, महादेवी !

राज्यश्री : (आह भरते हुए) आह ! कैसी विभीषिका है ! यह कैसी विडम्बना है, भगवन् ! क्यों तूने मुझे काँटों का यह स्वर्ण-मुकुट पहना दिया ? क्यों नहीं मुझे भी वन का वैभव दिया, फूलों का ताज दिया ? अपनी उस हरीतिमा-जटित, पल्लव-आच्छादित कुटिया में, मैं सुख की नींद तो सोती ! मेरे दिन और मेरी रातें, प्रिय हरिजनों की चिन्ता में आकुल-व्याकुल होकर छटपटाते हुए तो न बीततीं। मेरा मन निराशा और दुःखों की इन आँधियों में तो न उड़ा करता। पूर्वजन्म में, मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था, जो मुझे राजा की बेटी बनकर जन्म लेना पड़ा। राजा की वधू बनकर जीवन बिताने को विवश होना पड़ा।

रूपलेखा : (रूँधे कंठ से) ऐसा न कहिए, महादेवी !

राज्यश्री : और तू ? लेखा···मेरी सखी, मेरे शैशव की सहचरी होकर भी अग्नि की उन धधकती लपटों को और अधिक दहका रही है ! अपने इन गरम-गरम आँसुओं से बार-बार उनमें नई आहुति डाल रही है ! क्या यही तेरा प्यार है ? क्या यही तेरा अपनापन है ? क्या इसी तरह तू अपनी स्वामिनी को अपने प्यार के बंधन में बाँध लेना चाहती है ?

[द्वार खुलने का भारी शब्द। सैनिकों के भारी जूतों का कोलाहल]

राज्यश्री : (कठोर स्वर में) कौन हो तुम ? बिना सूचना दिए हमारे सम्मुख उपस्थित होने का दुस्साहस तुमने कैसे किया ?

सैन्यनायक : (हल्के से हँसकर) साम्राज्ञी की सेवा में उपस्थित

होते समय आज्ञा लेनी पड़ती है, किसी शत्रु पत्नी को बन्दी बनाते समय नहीं। लाओ, इधर, अपने दोनों हाथ।

[लोहे की हथकड़ी झनझना उठती है।]

राज्यश्री : (कड़ककर) ठहर, पामर! एक कदम भी आगे न बढ़ाना। जानता नहीं, मैं कौन हूं!

सैन्यनायक : (अट्टहास) हा-हा-हा।

रूपलेखा : अवश्य यह कोई पागल है। नहीं तो किसमें इतना साहस है कि परम-प्रतापी राज्य-राजेश्वर गृहवर्मा की पट्टमहिषी को बन्दी बनाने की बात बोल सके!

सैन्यनायक : उन्हीं मालव-नरेश वीरवर्मा सम्राट् देवगुप्त के लौह-सैनिकों में, जिन्होंने पापी गृहवर्मा के प्राण लिए।

राज्यश्री : (चौंककर) महाराज के प्राण ले लिए? महाराज का घात कर दिया गया? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। सैनिक, तुम झूठ बोलते हो। ऐसा नहीं हो सकता।

[बोलते-बोलते उसका स्वर रुंधने लगता है। स्वर क्षीण होता जाता है, मानो वह बेसुध हो रही हो। उस कातर वाणी के ऊपर सैनिकों का प्रबल अट्टहास छा जाता है।
नेपथ्य में करुण संगीत उभरता है।]

सैन्यनायक : (गरजकर) विक्रम! बांध लो इन सबको।

[अनेक नारी-कण्ठ एक संग चीख उठते हैं। संगीत स्वर एकदम तीव्र होकर, एकाएक थम जाते हैं।]

श्रीरंग : स्थाण्वीश्वर की जय हो!

हर्ष : कहो, श्रीरंग, क्या समाचार है?

श्रीरंग : (रुंधे कंठ से) महाराज!

हर्ष : (गम्भीरतापूर्वक) तुम राजदूत हो श्रीरंग। विचलित होना तुम्हें शोभा नहीं देता।

श्रीरंग : प्रियदर्शी सम्राट्, कितना अच्छा होता, यदि यह क्लेशकारी समाचार सुना पाने से पूर्व, मेरे ये प्राण इस देह से छूट गए होते।

हर्ष : (अधीरतापूर्वक) भावुक न बनो, श्रीरंग। जो कुछ कहना है, शीघ्र कहो।

श्रीरंग : (काँपते स्वर में) युद्ध में शशांक नरेन्द्र वर्मा की विजय हुई। हमारे महाराज राज्यवर्धन का छल-कौशल से घात कर दिया गया।

हर्ष : हा! भैया!

श्रीरंग : इस तरह अधीर न हों, देवपुत्र! धैर्य रखें। साम्राज्य की इस डगमगाती नौका की पतवार अब आपके ही हाथों में है।

हर्ष : (काँपकर) उफ! यह जीवन कितना कटु है! इसमें अभी और न जाने क्या-क्या होने को है!

श्रीरंग : साहस से काम लीजिए, सम्राट्! थानेश्वर की प्रभा-पुंज राजकुमारी का तिमिराच्छन्न भाग्य भी अब आपके ही अधीन है।

हर्ष : (घबराकर) श्रीरंग, सम्राट् गृहवर्मा सब भाँति समर्थ हैं। उनके रहते, तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।

श्रीरंग : नहीं कहना चाहता था, देव, किन्तु कहे बिना अन्य कोई उपाय भी तो नहीं। मौखरि-नरेश ने वीर गति पाई। दस्यु सैनिक साम्राज्ञी को बन्दी बनाकर ले गए।

हर्ष : (दोनों हाथों में अपना मुख छिपाकर) उफ! यह मैं

क्या सुन रहा हूँ ! यह कैसा हृदय-विदारक समाचार है ! क्या यह सच है, या कोई भीषण सपना है ? मैं स्वस्थ हूं, या मेरा मस्तिष्क विकृत हो गया है ? क्यों मेरा सिर चक्कर खा रहा है ? मेरी आँखों के आगे अन्धकार-सा छाता जा रहा है···

श्रीरंग : (घबराकर) महाराज ! महाराज ! अरे ! केतन, पुष्पक, दौड़कर आओ, हमारे सम्राट् मूर्च्छित हुए जा रहे हैं। जल लाओ, चंवर···अरे, जल···

हर्ष : (साहस समेटकर) कौन मूर्च्छित हो रहा है ? हर्ष ? नहीं। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। शत्रु युद्धभूमि में विजयपताका फहराता रहे, और हर्ष मूर्च्छित हो महलों में लोटता रहे ? थानेश्वर की राजकुमारी, बन्दी-घर में प्यासी पड़ी तड़फड़ाती रहे, और हर्ष अपने अंग पर शीतल चंदन-जल छिड़कड़ाता रहे ? नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। यह कदापि सम्भव नहीं। हटो, हट जाओ, मेरे सामने से।

श्रीरंग : प्रियदर्शी सम्राट्, धीरज रखिए। आप ही इस भाँति अधीर होंगे, तो हमें कौन धीरज बँधाएगा।

हर्ष : अधीर ? हा, हा, हा ! हिमालय भी कभी अधीर होता है, श्रीरंग ? आज धीरज तो उन दस्युओं को खोना है, जिन्होंने मेरी बहन की देह को स्पर्श करने का दुस्साहस किया है। अधीर तो उन पामर-कायरों को होना है, जिन्होंने मेरे वीर भाई के प्रति विश्वास-घात किया है।

श्रीरंग : महाराज !

हर्ष : सुनो, श्रीरंग, तुम भी सुनो, केतन, पुष्पक···तुम तीनों को साक्षी बनाकर, आज मैं पिता की पुनीत समाधि

की शपथ खाकर कहता हूँ। "जब तक थानेश्वर की सीमा ब्रह्मपुत्र के पार न पहुँचा दूँगा, मैं शैया पर पैर न रखूंगा। जब तक मैं शत्रु को धूलि-धूसरित न कर दूँगा, मेरे शूरवीर-सैनिक आँधी बन, धरती पर धूल के समान उड़ते रहेंगे।" विकराल आँधी के समक्ष, प्रकृति की समस्त सत्ता नत हो, शीश झुका देती है। मेरे सैनिकों के सम्मुख, विश्व की कोई भी सत्ता सिर न उठा सकेगी। जाओ, तुरन्त जाओ···अविलम्ब युद्ध की तैयारी करो।

श्रीरंग : (उत्साहभरे स्वर में) जो आज्ञा, महाराज !

[युद्ध के नगारे बज उठते हैं। धीमे-धीमे, फिर ज़ोर से। ध्वनि धीरे-धीरे दूर जाने लगती है।]

श्रीरंग : उत्तरापथेश्वर प्रियदर्शी सम्राट् श्रीहर्ष की जय !

हर्ष : आओ, श्रीरंग। आज हम बहुत प्रसन्न हैं।

श्रीरंग : सेवक कारण जान सकेगा, सम्राट् ?

हर्ष : आज प्रस्थान का दिन है, श्रीरंग। हमारी चतुरंगिणी सेना टिड्डी दल-सी शत्रु-देश पर छा जाने को आतुर है। अपने शूरवीरों का प्रबल उत्साह देख, हमारे अन्तर्मानस में उत्साह का सागर लहरा रहा है। आज हमारे अन्तर्प्रदेश में सौ-सौ सूर्यों का आलोकबिखर रहा है, लक्ष-लक्ष चन्द्राओं की चाँदनी छा रही है।

श्रीरंग : (रुंधे कंठ से) यह श्रीरंग बड़ा अभागा है, महाराज!

हर्ष : (विस्मित हो) ऐसी भी क्या बात है, भद्र ?

श्रीरंग : जब भी महाराज प्रसन्न होते हैं, वह कुछ ऐसा समाचार ले आता है कि महाराज को बाध्य हो, अपनी प्रसन्नता का त्याग कर देना पड़ता है।

हर्ष : (कुछ दुखित-से स्वर में) यही तो जीवन की विडम्बना

है, सखे ! मनुष्य का सुख मानो विधि से देखा नहीं जाता। आज क्या नवीन समाचार है ?

श्रीरंग : (रुँधे स्वर में) विधि ने मुझे इस योग्य क्यों नहीं समझा कि कभी तो मैं मंगलकारी समाचार ला सकूँ ! क्यों वह सदा मुझे अशुभ समाचारों का वाहक बना देने को प्रस्तुत रहती है।

हर्ष : (दुखी मन से हलके-से हँसकर) समाचार सुखदायी नहीं, यह कहकर मेरा आधा दुःख तो तुम पहले ही छीन लेते हो, मित्र ! बोल दो, क्या बात है ?

श्रीरंग : देवी राज्यश्री कारागार के बन्धनों से छूटकर भाग गईं, उनका कहीं पता नहीं।

हर्ष : (अत्यन्त विस्मित हो) क्या कहा ?

श्रीरंग : जी हाँ सम्राट्, महादेवी की चतुराई ने बन्दीगृह के तालों की सार्थकता को व्यर्थ सिद्ध कर दिया, वे न जाने कहाँ जा छिपी हैं। हमारा अनुमान है कि उनकी प्रमुख सहचरी रूपलेखा उनके साथ है।

हर्ष : (आश्चर्य से) परन्तु वह जाएगी कहाँ ? उसे तो यहीं आना था। कारागृह से निष्कृति पा लेने पर, उसका पितृ-गृह ही तो उसके लिए एक मात्र सुरक्षित स्थान था।

श्रीरंग : महाराज का कथन सत्य है। देवी राज्यश्री को यहीं आना चाहिये था। परन्तु न जाने क्यों, वे यहाँ न आ कर किसी अज्ञात स्थान में जा छिपी हैं। हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उनकी पूरी खोज कर रहे हैं।

हर्ष : उफ ! राज्यश्री ! यह तूने क्या किया ! राजकुमारी होकर, कहाँ तू काँटों में भटक रही है। मेरे पास क्यों नहीं आई, बावरी ! क्या तुझे विश्वास नहीं

था कि तेरा भाई तेरी रक्षा कर सकेगा ?

श्रीरंग : इस भाँति, अधीर न हों, सम्राट् !

हर्ष : (रुँधे कण्ठ से) आज मैं रो देना चाहता हूं, श्रीरंग ! जैसे प्यासी धरती के शुष्क अधरों से उठती आहों से विदग्ध हो, गगन अविरल धाराओं में ढुलक पड़ना चाहता है, वैसे ही आज मैं भी हृदय में आलोड़ित सन्ताप को सहस्रों धाराओं में बहा देना चाहता हूँ।

श्रीरंग : सम्राट्···!

हर्ष : उफ ! मेरी बहन आज अनाथों की तरह धरती पर न जाने कहाँ भटक रही है ? सूर्यवंशीय प्रभाकर सम्राट् प्रभाकरवर्द्धन की पुत्री आज निराश्रिता है। स्वनाम-धन्य नरेश गृहवर्मा की पट्टमहिषी आज गृहविहीन हो···

श्रीरंग : (अधीरतापूर्वक) ऐसे वचन न बोलें, महाराज ! आपके रहते कौन मूढ़ महादेवी को निराश्रिता कहने की मूर्खता कर सकेगा ?

हर्ष : न कहने से सच बात मिथ्या नहीं हो जाती, भद्र ! निश्चय ही राजकुमारी मुझे अपना नहीं समझती, पराया मानती है, नहीं तो क्या वह मेरे पास न आकर इस भाँति अज्ञात में खो जाती।

श्रीरंग : महादेवी के प्रति ऐसे विचार मन में न लायें, सम्राट् ! निश्चय ही उन्हें यहाँ आने की राह न मिली होगी। शत्रु के गुप्तचरों का सशक्त-जाल पथ में बिछा है, इसी कारण वे कहीं अन्यत्र जा छिपी होंगी।

हर्ष : नहीं। ऐसी बात नहीं है, श्रीरंग। जो कारागार की लौह-शृंखलाओं से भयभीत नहीं हुई, वह मिट्टी के पुतलों से क्या डरेगी ? मुझे तो किसी और ही बात

का भय है ।

श्रीरंग : किस बात का, देव ?

हर्ष : वह सती हो जाना चाहती है । निश्चय ही वह जानती है कि मैं बाधा डालूँगा, इसीलिए···

श्रीरंग : कदापि नहीं, सम्राट् । हमारी राजकुमारी इतनी कायर नहीं कि ऐसे कायरतापूर्ण विचारों को अपने मन में लाएँ । आपके लिए ऐसा सोचना भी अनर्थ है ।

हर्ष : नहीं, श्रीरंग ! आज इस बात को न सोचना ही अनर्थ होगा । वास्तव में यही बात है । वह सूर्यवंशीय कुल की सन्तान है । उसकी देह में, अपने पिता-पितामहों का रक्त लहरा रहा है । अपनी माता का दृष्टान्त उसके सामने है । अब उसके मन में जीवन की इच्छा शेष नहीं रही । निश्चय ही, वह जीवित ही मृत्यु को अपना लेना चाहती है ।

श्रीरंग : (दृढ़ स्वर में) ऐसा नहीं हो सकेगा, देव ! महादेवी कुछ अनर्थ कर सकें, इससे पूर्व ही हम उन्हें खोज लेंगे ।

हर्ष : तुम्हारी सामर्थ्य पर मुझे विश्वास है, भद्र ! परन्तु अपनी बहन के दृढ़-निश्चयी स्वभाव को भी मैं पहचानता हूं । यदि उसको पुनः पाना है, तो उसकी खोज में मुझे स्वयं ही जाना होगा ।

श्रीरंग : (विस्मित होकर) अनुसंधान की रीति हमने सीखी है, सम्राट्, आपको उसका ज्ञान नहीं । आपका जाना निष्फल ही नहीं, व्यर्थ भी होगा । हमारे रहते आप क्यों कष्ट करेंगे ?

हर्ष : बहन को पाने का प्रयास भी क्या भाई के लिए कष्ट हो सकता है, श्रीरंग ? जाओ, बन्द कर दो युद्ध की इन तैयारियों को ।

श्रीरंग : सम्राट् !

हर्ष : जाओ श्रीरंग, इस भाँति मेरी ओर देखते खड़े न रहो। स्थगित कर दो सेना का प्रयाण। शत्रु कहीं भागा नहीं जा रहा है, शपथ फिर भी पूरी की जा सकती है, किन्तु बहन का जीवन यदि खो गया, तो इस जन्म में, वह फिर कभी न मिल सकेगी।

श्रीरंग : जी हाँ, आपका यह कथन तो सत्य है, सम्राट् !

हर्ष : (अत्यन्त अधीर हो) अरे ! तुम अभी तब यहीं खड़े हो ? जाओ, जल्दी करो। कुछ चुने हुए सैनिकों को लेकर मेरे पीछे-पीछे आओ। मैं जा रहा हूँ।

श्रीरंग : ठहरिए, सम्राट् ! इस तरह नितान्त अकेले न जाइए।

हर्ष : मैं अकेला नहीं, मेरी बहन की स्मृति मेरे साथ है।

श्रीरंग : परन्तु पैदल···

हर्ष : पैदल नहीं, मैं दृढ़ आशा के अश्व पर सवार हूं।

श्रीरंग : किन्तु आपने कभी नंगी धरती पर पैर नहीं रखा। कुश-कंटकों से आपके पैरों में छाले पड़ जाएँगे, सम्राट्।

हर्ष : वह तो अच्छा ही होगा। हृदय का उत्ताप उनकी राह ढुलककर बाहर बह जाएगा।

श्रीरंग : ठहरिये, सम्राट् ! सुनिये···

हर्ष : नहीं, श्रीरंग, ठहरने का अवकाश नहीं, सुनने का समय नहीं। मैं जा रहा हूं। जिसे साथ आना हो, वह मेरे पीछे-पीछे आ जाए।

श्रीरंग : समस्त थानेश्वर आपके संग है, सम्राट् ! महादेवी राज्यश्री केवल आपकी ही बहन नहीं, वे हमारी भी कृपालु बहन हैं। वे हमारी सन्तानों की वात्सल्यमयी माता हैं। हम पूरी तैयारी से उनकी खोज में···

हर्ष : इधर तुम तैयारी करते रहो, उधर उसकी चिता के शोले भी ठंडे पड़ जायेंगे। हटो, हट जाओ। छोड़ दो मेरी राह। मुझे जाने दो।

श्रीरंग : महाराज! उफ़! चले गए? हमें भी शीघ्र जाना चाहिए। अभी, तुरन्त, केतन···पुष्पक···

[तीव्र संगीत में उसका स्वर डूब जाता है]

रूपलेखा : महादेवी!

राज्यश्री : क्या?

रूपलेखा : एक बात कहूँ, महादेवी!

राज्यश्री : बोल न?

रूपलेखा : मैं भली भाँति पता लगा चुकी हूँ। दस्यु देवगुप्त के गुप्तचर निराश होकर लौट चुके हैं। चलिए, अब घर लौट चलें। विलम्ब करने से कुछ लाभ नहीं।

राज्यश्री : (कुछ सोचते-से स्वर में) तू ठीक कहती है, लेखा! विलम्ब करने से अब कुछ लाभ नहीं। मैं भी घर लौट जाना चाहती हूँ। मृत्यु से पूर्व, एक बार फिर सहोदर भाई के भोले मुखड़े को निरख लेना चाहती हूँ। परन्तु···

रूपलेखा : परन्तु क्या, महादेवी?

राज्यश्री : यदि···यदि हर्ष ने मेरे कर्तव्यपालन में बाधा डाली तो···

रूपलेखा : ऐसी शंका न कीजिये, महादेवी! हमारे महाराज वीर हैं, कायर नहीं। वे कदापि आपके कर्तव्य-पथ में रोड़ा बनकर न अड़ेंगे।

राज्यश्री : तू नहीं जानती, लेखा। वह बचपन का हठीला है। माँ जब सहमरण के लिए प्रस्तुत हो उठी थीं, उसने उनकी राह रोककर कहा था—'किसका अनुकरण

कर, तुम यह गर्हित राह अपनाने जा रही हो, माँ ? क्या तुम नहीं जानतीं कि तुम किसकी माँ हो, किसकी पत्नी हो ! राम की माँ ने, या अभिमन्यु की पत्नी ने, क्या इस राह को अपनाया था, जो तुम इसे आलिंगन कर लेने को प्रस्तुत हो उठी हो ?

रूपलेखा : मुझे स्मरण है, महादेवी।

राज्यश्री : माँ के सामने उस वीर की एक नहीं चली थी। उसकी बाल-हठ पर हँसकर, उसका मुख चूम, वे हँसती-हँसती चिता पर चढ़ गई थीं। पर मैं छोटी हूं। यदि उसने हठ ठान ली, तो मैं उससे कैसे जीत सकूंगी ?

रूपलेखा : कायर न बनिये, महादेवी।

राज्यश्री : कायर मैं नहीं बनना चाहती, लेखा। जीवित लपटों का आलिंगन कर, मैं आज ही पति के समीप पहुँच जाना चाहती हूं, पर अन्त समय एक बार भाई का मुख देख लेने का मोह मेरे पैरों को पीछे खींच रहा है।

रूपलेखा : यह मोह नहीं, आपका कर्तव्य है, जो आपको पुकार रहा है। तनिक सोचिये तो सही—पिता गये, मां गई, भाई भी गया। संसार में आपके सिवा उनका अब कौन है ! इस किशोरावस्था में यदि आप भी उन्हें यूँ निराधार छोड़कर चली जायेंगी, तो उनकी देखभाल कौन करेगा ? कौन उनके दुःखी मन को धीर बँधायेगा।

राज्यश्री : धीरज ? (हलके-से हँसती है) मेरी यह अवस्था देखकर, उसके मन को धीरज नहीं बँधेगा, लेखा। वह और अधिक अधीर होगा। कौन ऐसा भाई होगा जो अपनी बहन का सूना माथा देखकर रो नहीं देगा ! कौन ऐसा भाई होगा, जो अपनी बहन के श्वेत वस्त्र देख, अपना सुख-भोग नहीं त्याग देना चाहेगा !

[करुण संगीत में उसके स्वर डूब जाते हैं]

[दृश्य-परिवर्तन]

हर्ष : ओह! घूमते-घूमते कितने दिन बीत गए। धरती का कण-कण खोज डाला, पर बहन का पता न लगा। कहाँ होगी आज वह? कहाँ सोती होगी, क्या पहनती होगी, क्या खाती होगी? किस प्रकार, कैसे उसके दिन बीत रहे होंगे?

श्रीरंग : अधीर न हों, महाराज! दुःख के दिन सदा नहीं रहते। क्लेश की यह काली रात अब मिटने ही वाली है।

हर्ष : नहीं, श्रीरंग, यह रात अब कभी न जायेगी, कभी न मिटने पाएगी। मेरे जीवन की भोर अनन्त कालिमा में डूब चुकी है। अपने जीवन के शेष दिन, अब मुझे दुःख की इस अँधियारी में ही भटक-भटककर विताने होंगे।

श्रीरंग : ऐसा न कहें, देव!

हर्ष : कैसे न कहूं, भद्र! यही बात तो दिन-रात मेरे तन-मन में कसकती रहती है। इसने मेरे नयनों की नींद छीन ली है, मेरी पलकों का विश्राम हर लिया है। मुझे लगता है, मानो मेरे जीवन में, अयश के अतिरिक्त अब किसी भी वस्तु के लिए स्थान शेष नहीं। मानो दुर्भाग्य के अतिरिक्त अब मेरा और कोई भी संगी नहीं। मेरा मन दिन-रात रो-रोकर मुझसे पूछा करता है—'इस नरक तुल्य जीवन में अब क्या यह अवसादपूरित दुर्भाग्य ही शेष है? इसका क्रूर-कराल नूतन आघात, जो कुछ अवशेष है, उसे भी निःशेष कर डालेगा, या कभी मेरे मन की टिमटिमाती आशा पूरी भी हो सकेगी? अब मुझे जीवन भर अकेले ही भटकना होगा,

या मैं कभी बहन का मुख फिर देख भी सकूँगा।

श्रीरंग : धैर्य रखिये, देव ! महादेवी का पता शीघ्र ही मिलेगा।

हर्ष : यह तो तुम नित्य कहते हो, श्रीरंग। पर वह दिन कब आयेगा ? जब आशा की डोर टूट जायेगी, जीवन का ज्योतिर्मय दीप बुझ जायेगा ? नहीं, नहीं···चलो, उठो अब। बहुत विश्राम कर लिया।

श्रीरंग : ठहरिये, सम्राट् ! आपके पैरों से लहू निकल रहा है। पुष्पक जल लाने गया है। एक बार उन्हें धो देने से···

हर्ष : लहू की इन बूँदों को तू धोयेगा ? हा-हा-हा ! ये लहू की बूँदें नहीं श्रीरंग, ये मेरे मानस के आँसू हैं। जल की बूँदों से ये न धुल सकेंगे। इन्हें तो राज्यश्री की मधुर हँसी ही धोकर मिटा सकेगी। आओ, उठो। पुष्पक पीछे आता रहेगा।

श्रीरंग : महाराज, तनिक रुकिए, सुनिए, एक पल तो ठहरिए।

हर्ष : तुम रुको, ठहरो। पुष्पक को लेकर आना। मैं आगे जाता हूँ।

श्रीरंग : (पुकारकर) महाराज ! उफ़ ! चले गए···क्या दशा हो गई है हमारे सम्राट् की ! भूख नहीं, प्यास नहीं, नींद नहीं, पलभर को भी विराम नहीं, दिन-रात अहर्निश चलते रहना ही मानो उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया है। यदि सच ही देवी राज्यश्री इस जग से नाता तोड़ गई हों, तो क्या होगा ? हे प्रभो ! कुशल करना। वर्धन-वंश के इस अन्तिम दीप को बुझा न देना। प्रजा की कामना पूर्ण करना। उसकी वात्सल्यमयी माता उसे लौटा देना। यह युगल ज्वलन्त ज्योति युगों-युगों तक ज्योतित होती रहे, अपनी प्रभा से युगों तक विश्व को आलोक-दान

देती रहे।

[हलके संगीत द्वारा दृश्य-परिवर्तन]

राज्यश्री : यह कैसी प्रभा है, कैसा आलोक है ! आज कौन तिथि है, लेखा ?

रूपलेखा : आज पूर्णिमा है, राज्य राजेश्वरी।

राज्यश्री : (कुछ विस्मय से) आज पूर्णिमा है।

रूपलेखा : हाँ, महादेवी, आज गगन में मेला लगा है। पूर्ण चन्द्र की प्रभा चहुँ ओर छिटक रही है। नन्हे-नन्हे तारे अपनी उज्ज्वल ज्योति विकीर्ण करते मंगल मना रहे हैं। आकाश-गंगा, पथ-भूलों को राह दिखा रही है। चलिए, देवी ! हम भी इस पुण्य-तिथि को प्रस्थान की तिथि बना लें। आज ही, इसी रात, थानेश्वर की ओर प्रयाण कर दें। अब विलम्ब करने से लाभ ही क्या है ?

राज्यश्री : तू ठीक कहती है, लेखा ! अब विलम्ब करने से कुछ लाभ नहीं। ला, चिता चिन दे। आज महापर्व है। यही महाप्रस्थान की शुभ तिथि है।

रूपलेखा : (सहसा चीखकर) महादेवी !

राज्यश्री : (हलके से हँसकर) इतना भय क्यों ? उठ, अब देर न कर।

रूपलेखा : मैं ऐसा न कर सकूँगी, स्वामिनी !

राज्यश्री : क्यों नहीं कर सकेगी ?

रूपलेखा : अपने शैशव की सहचरी को, वर्धनवंशीया राजकुमारी को, मैं अपने हाथों अग्नि में न ढकेल सकूँगी। नहीं। यह महापातक मुझसे न हो सकेगा।

राज्यश्री : (हलके से हँसकर) बावरी ! नहीं जानती, वर्धन वंश की नारियाँ चिरकाल से अग्नि को अपनी परम-पुनीत

सहचरी मानती आई हैं। जननी यशुमति का शौर्य भी क्या तू भूल गई ?

रूपलेखा : मैं भूली कुछ भी नहीं हूँ, महादेवी। परन्तु···

राज्यश्री : सत्य में शंका को स्थान नहीं, लेखा। माँ की याद कर। वैदेही के समान, उन्होंने पति के समक्ष ही ज्वलन्त ज्वाला का आलिंगन किया था। उनकी निश्चयरूपिणी शिला से टकरा, हम सबके अश्रु छिन्न-विच्छिन्न-से हो गए थे। उनके उस उग्र आग्रह के समक्ष, समस्त प्रजा-वर्ग के आकुल-अनुरोध धूल से उड़ गए थे। उनका वह सतेज शौर्य ही मेरे प्राणों में समा गया है, सखी !

रूपलेखा : यह कथन आपके ही योग्य है, महादेवी ! परन्तु एक बार शान्त-चित्त से विचार तो कीजिए। अग्रज के आकस्मिक वध से महाराज यूँ ही उद्भ्रान्त हो रहे होंगे। आपके चितारोहण से उनकी क्या दशा होगी ?

राज्यश्री : (भय-विस्मय से) अग्रज का वध ? तू क्या कह रही है, लेखा ? क्या भाई राज्यवर्धन···

रूपलेखा : हाँ, महादेवी ! उसी दिन, जिस दिन दस्यु आपको बन्दी बनाने आए थे, उसी दिन मुझे यह समाचार मिला था। इसी कारण···

राज्यश्री : (सिसक उठती है) हाय ! यह मैं क्या सुन रही हूं ? अभी मैंने यह क्या सुना ! हा, भाई ! गए ! तुम भी गए ? दुर्दैव न जाने और कौन-कौन-से भीषण समाचार सुनाएगा अभी ! कैसा है मेरा भाग्य! मानो कोई अखण्डित-अटूट लौह-शिला, जिस पर दुर्दैवरूपी करालदण्ड बारम्बार प्रहार करता है, पर वह टूट नहीं पाती। उसकी प्रबल चोट से केवल लाल-लाल दहकती चिंगारी ही चिटखती हैं, मैं आमूल भस्म नहीं

हो पाती।

रूपलेखा : शोक करने से क्या होगा, महादेवी ! धीरज रखिए। रात्रि-दिवस-सा गतिमान, सुख-दुःख का यह चक्र अपनी अविराम गति से निरन्तर घूमता ही रहता है। हँसते-हँसते इसका भार वहन करने में ही सच्चा शौर्य है।

राज्यश्री : नहीं, लेखा, नहीं। मेरे मन में बवण्डर झूम रहा है। मेरे समक्ष कलंकरूपिणी कालिमा रौद्र रूप रच, तांडव में निरत हो उठी है। यह विषम विभीषिका, सम-विभीषिका का ताप सहे बिना शान्त न हो सकेगी। तू चिता का निर्माण कर, अभी इसी क्षण। अब मैं पल भर का भी विलम्ब सहन नहीं कर सकती।

रूपलेखा : (सिसककर) देवी !

राज्यश्री : उठ, लेखा ! विलम्ब न कर। यह तेरी सखी के वचन नहीं, तेरी स्वामिनी का आदेश है। अविलम्ब आज्ञा-पालन तेरा कर्तव्य है।

रूपलेखा : (रुंधे स्वर में) स्वामिनी की आज्ञा सेविका को शिरोधार्य करनी ही पड़ेगी, महादेवी !

राज्यश्री : उठ, मैं भी तेरी सहायता करती हूं। हंस दे, लेखा। आँसुओं की यह बरसात बन्द कर दे। लकड़ियाँ गीली हो गईं, तो यह चिता जल भी न सकेगी।

रूपलेखा : उफ ! महादेवी, तुम्हारी यह हंसी, मेरे हृदय में फफोले डाल रही है।

राज्यश्री : अरे ! देख उधर। वह मोटी-सी लकड़ी है। चल, दोनों मिलकर, पहले उसे उठा लाएँ।

रूपलेखा : महारानी, मेरे पैर लड़खड़ा रहे हैं। भय से मेरा हृदय काँप रहा है।

राज्यश्री : और मेरा हृदय हर्ष से उछल रहा है। आज मैं अपने

कुल की परम्परा को अमर रखने के लिए बलिदान बन जाऊँगी···देख लेखा, कितनी सुन्दर सेज है, कितना सुन्दर है इसका आकार ! बस, अग्नि स्पर्श करने की देर है, इसकी विस्तृत ऊँचाई लपककर गगन का छोर छू लेगी। मेरी व्याकुल आत्मा, उसी के सहारे···

रूपलेखा : (सिसककर) महादेवी !

राज्यश्री : (हलके से हँसकर) रोती है ? बावरी ! आज रोने का अवसर नहीं, हँसने की बेला है। ला, चिता में अग्नि प्रज्वलित कर।

रूपलेखा : महादेवी, यह चिता यहीं बनी रहने दो। एक बार थानेश्वर के दर्शन कर आओ। फिर लौटकर···

राज्यश्री : (कड़ककर) रूपलेखा ?

रूपलेखा : (रुँधे स्वर में) जो आज्ञा, महादेवी···मैं अभी अग्नि उत्पन्न करती हूँ।

राज्यश्री : (विस्मय से) यह क्या ? तेरे हाथ काँप रहे हैं ! तेरी देह गिरी जा रही है ! तेरी आँखें आँसुओं से अन्धी हो गई हैं ! छिः ! ला चकमक मुझे दे।

रूपलेखा : नहीं, यह मेरे वश की बात नहीं, महादेवी।

राज्यश्री : मन को इतना कमजोर न बना। रुदन द्वारा इस मंगलमय बेला को अशुभ न बना दे। आ, आज मेरा पूर्ण श्रृंगार कर दे। वधू-वेश बना दे मेरा। भर दे मेरी माँग में सिन्दूर की लाल-प्रज्वलित रेखा। अक्षय-अमिट सुहाग की लाली—जिसके सहारे मैं अपने खोए सुहागधन को पुनः पा सकूँगी।

रूपलेखा : (कातर स्वर में) महादेवी !

राज्यश्री : तुझसे कुछ नहीं होगा। सब-कुछ मुझे स्वयं ही करना होगा। देख ये लपटें किस तरह बाँहें बढ़ाकर मुझे

बुला रही हैं। वह कौन सती-साध्वी है, जो इस पुनीत आमंत्रण की उपेक्षा कर सके? आज···अरे! यह क्या!

[दूर अश्व-समूह के टापों की ध्वनि गूँज उठती है।]

रूपलेखा : (कम्पित स्वर में) महारानी, यह तो किसी अश्व-समूह के आगमन की दौड़ती ध्वनि है। सुनिए! वह तो इधर ही बढ़ती आ रही है।

राज्यश्री : हाँ! तू ठीक कहती है। सम्भवतः इस ज्योति-शिखा ने, शत्रु के गुप्तचरों को हमारी उपस्थिति का आभास दे दिया है। चल, भाग चलें।

रूपलेखा : चलिए, महारानी, जल्दी कीजिए।

राज्यश्री : परन्तु क्या भागकर भी हम उनसे बच सकेंगे? हमारी कन्दरा यहाँ से कितनी दूर है, लेखा?

रूपलेखा : कुछ दूर तो अवश्य है, महादेवी! परन्तु हमें प्रयत्न तो करना ही होगा। आइये, झटपट दौड़ चलें।

राज्यश्री : ठहर, लेखा। देख मेरी साड़ी काँटों में उलझ गई।

रूपलेखा : मैं छुड़ाती हूँ। उफ़! कैसे काँटे हैं! एक को छुड़ाओ, तो दूसरा आ उलझता है।

[दूर कहीं सैनिक घोष—महाराज की जय!]

रूपलेखा : अरे! दस्यु के गुप्तचर नहीं, ये तो अपने ही सैनिक हैं। लगता है, महाराज कहीं समीप ही आ पहुँचे हैं।

राज्यश्री : (कम्पित स्वर में) हर्ष? हर्ष आ गया? उसने मेरा पता पा लिया? अब वह अपने साथ मुझे लौटा ले जाने की हठ करेगा, और···और फिर···नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। हर्ष मुझे कदापि जीवित नहीं पा सकता।

रूपलेखा : ठहरिये, महादेवी, एक पल तो ठहरिये। देखिए काँटों

का यह झाड़ आपके संग घिसट रहा है। मुझे इसे छुड़ा तो लेने दीजिए। उफ़! इस तरह अधीर हो, आप किस ओर चलती जा रही हैं! (चीखकर) महादेवी!

राज्यश्री : हट जा, लेखा, मेरी राह छोड़ दे। हर्ष के यहाँ आने से पूर्व ही मुझे समाधि ले लेनी होगी।

रूपलेखा : (रुँधे स्वर में) स्वामिनि!

राज्यश्री : (क्रोध से) हट जा, लेखा। मेरे सामने से दूर हो जा।

रूपलेखा : (दृढ़ स्वर में) नहीं, लेखा नहीं हटेगी। वह आज अपराधिनी है। दण्ड-प्रार्थिनी है। जो भी दण्ड मिलेगा, सहर्ष स्वीकार करेगी, किन्तु स्वामिनी को उलटे पथ पर जाने की राह न दे सकेगी।

राज्यश्री : नहीं हटेगी? जानती है इसका परिणाम?

रूपलेखा : (विनीत स्वर में) अवलम्बहीन भाई का एकमात्र सहारा हो तुम। महादेवी, उस अभागे भाई का यह एकमात्र अवलम्ब न छीनो। उसने अपनी जननी को चिता में क्षार होते देखा है। पिता और अग्रज की असमय ही अकाल मृत्यु वहन की है। क्या अब वह तुम्हें भी चिता में भस्म होते देख सकेगा? तुम्हें भी ज्वाला की भेंट होते देख, हताहत ज्ञान-शून्य हो, क्या वह अपनी देह भी, इसी चिता में अर्पित न कर देगा?

राज्यश्री : (कातर स्वर में) लेखा, लेखा, मेरे कर्तव्य में बाधा न डाल, सखी। मुझे धर्म-संकट में न फँसा। मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ—मुझे छोड़ दे। जाने दे। हर्ष यहाँ आ सके उससे पूर्व ही मैं इस काया को भस्म कर दूं। प्रिय की स्मृति में इसकी आहुति दे दूं।

भिक्षु : (गम्भीर स्वर में) पुत्री, सावधान! कायर न बन। इस शरीर का जन्म, इसे अपने ही हाथों नष्ट कर देने

के लिए नहीं हुआ।

रूपलेखा : आचार्य, मैं विष्णुगुप्त की पुत्री रूपलेखा, आपको प्रणाम करती हूँ। भिक्षुराज, आप तथागत के अनुयायी हैं। मेरी स्वामिनी को सत्य कर्म-पथ की राह सुझा दीजिए।

भिक्षु : कल्याण हो, वत्से! तुम्हारी स्वामिनी तो स्वयं ही बुद्धिमती हैं। जगत् में कौन इतना बुद्धिमान है, जो आज उनका गुरु बन सके?

राज्यश्री : मैं प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री आपको प्रणाम करती हूँ। स्वीकार करें, आचार्य!

भिक्षु : भगवान् बुद्ध सदा तुम्हारा कल्याण करें। शुभे, भिक्षु को कुछ भिक्षा मिलेगी?

राज्यश्री : मेरी असमर्थता को क्षमा करें, देव! यहाँ वन में, मैं आपको क्या भिक्षा दे सकूँगी?

भिक्षु : दाता का दानी मन तत्पर होना चाहिए, दान की कहीं कमी नहीं। वह वन हो या महल, भिक्षु को मनचाही भिक्षा प्रत्येक स्थान पर दी जा सकती है।

राज्यश्री : बोलिये, भिक्षुराज, इस समय, इस स्थान पर मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?

भिक्षु : भिक्षु को सेवा नहीं, भिक्षा चाहिए।

राज्यश्री : वही कहिए, देव!

भिक्षु : देवी, मुझे तुम्हारे जीवन की, तुम्हारे प्राणों की भिक्षा चाहिए।

राज्यश्री : ऐसी असम्भव बात बोलकर, मुझे धर्म-संकट में न फँसाइए, भिक्षुराज!

भिक्षु : धर्म-संकट? हा! हा! हा! (अवज्ञापूर्वक हँसता है)

राज्यश्री : (विस्मित हो) आप हँसते हैं ?

भिक्षु : (एकाएक रुककर) सच है। यह हँसने की नहीं, रोने की बात है। भद्रे, आज तुम्हारा मन, यह किस महा-पातक की ओर उन्मुख हो उठा है ?

राज्यश्री : (विस्मय से) महाराज ! धर्म को आप महापातक के नाम से पुकार रहे हैं ?

भिक्षु : सच्चे धर्म को पहचानो, माँ ! स्वयं जीवित रहो, और दूसरों को जीवित रहने की प्रेरणा प्रदान करो। दया, धर्म, दान की अबाध सरिता में, दीन-दरिद्रों के दुःखों को डुबा दो, बहा दो। इसी में तुम्हारा कल्याण है। यही वास्तव में तुम्हारा सच्चा नारी-धर्म है।

राज्यश्री : (हलके से हँसकर) मुझे इस छलावे में न भुलाइये, भिक्षुराज ! जो समर्थ हैं, शक्तिवान हैं, वे दया, धर्म, दान करें। अनेकानेक शुभ-कर्म सम्पन्न करते हुए पुण्य-लाभ करें। मुझ अभागिनि के पास अब क्या है ? मेरे जीवन में तो अब कुछ भी शेष नहीं। मैं निरी सामर्थ्य-हीन हो चुकी हूं। आपके उपदेश अब मुझे इस संसार में न खींच सकेंगे।

भिक्षु : (हँसकर) मैं तुम्हें संसार में खींचने की कामना क्यों करूँगा, वत्सले ! अग्नि जहाँ होती है, पतंग वहाँ स्वयं ही खिचकर चला आता है। अभी तुम बालिका हो, नव-कलिका हो, अभी तुम्हें खिलना है। जगत् में अपना यश-सौरभ फैलाना है। कौनसी शक्ति है वह, जो तुम्हें खिलने से रोक सकेगी ?

राज्यश्री : आप भ्रम में हैं, भिक्षुराज ! मैं नव-कलिका अवश्य हूँ, किन्तु डाल से टूटी हुई। फूल जब झड़ने लगता है, तो उसकी झरती पंखड़ियों को बिखरने से कौन रोक

सकता है ! सरिता जब सूखने लगती है, तब अंजलि भर-भर जल भरने से उसके प्राण-शुष्क कूल पुनः छलक नहीं उठते। मैं वही सूखी सरिता हूँ, वही गन्धहीन मुरझाया फूल !

भिक्षु : समझ गया, देवी ! तुम जीवन से पलायन करना चाहती हो। तुम्हारी इच्छा है पराजिता बन जाने की।

राज्यश्री : आचार्य, आप ज्ञानी प्रतिष्ठित पुरुष हैं। एक पतिव्रता के प्रति ऐसे वचन आपको शोभा नहीं देते। एक वीर क्षत्राणी को कायर कहने की मूर्खता, आज तक कभी किसी मद्यप ने भी न की होगी।

भिक्षु : क्रोध न करो, भद्रे ! क्रोध में विवेक खो जाता है। मेरी बात ध्यान से सुनो।

राज्यश्री : (लज्जित होकर) मैं क्षमा-प्रार्थिनी हूँ, देव !

भिक्षु : मुझसे नहीं, अपने क्रोध से क्षमा माँगो, आर्ये ! सुनो··· मेरी बात सुनोगी ?

राज्यश्री : कहिये, आचार्य !

भिक्षु : जीवन से पलायन करना कायरता है। स्वयं जीवित रहकर कर्म द्वारा पति की स्मृति को जीवित रखना, उसकी प्राणहीन नश्वरकाम के संग जल मरने से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

राज्यश्री : (विस्मय से) आचार्य !

भिक्षु : मृत्यु द्वारा कर्मबन्धन से त्राण अवश्य मिल जाता है, किन्तु संग-संग जीवित मनुष्य की स्मृतियाँ भी विस्मृति में विलुप्त हो जाती हैं। आत्महनन द्वारा कायर ही इस जग से पलायन करते हैं वीरों का यह मार्ग नहीं।

राज्यश्री : (कातर स्वर में) आचार्य !

भिक्षु : सच्ची शूरवीरता इसी में है कि विपत्ति-बाधाओं को हँस-हँसकर झेलते हुए दिवंगत आत्मा की स्मृति को अमर बना दो। सच्चा पातिव्रत्य इसीमें है कि कुछ ऐसे कार्य कर जाओ जो युग-युग तक तुम्हारे पति का नाम प्रकाश-पुंज नक्षत्रों की आलोकित आभा के समान दिग-दिगन्त में विकीर्ण होता रहे। यही सच्ची पतिभक्ति है। यही सच्चा शौर्य है।

राज्यश्री : (विस्मित होकर) यह कैसा नूतन उपदेश आप दे रहे हैं आचार्य ! जो समस्त धर्म-शास्त्रों के विरुद्ध है। चिर-पुरातन काल से चितारोहण द्वारा ही तो नारियों ने अपनी पति-भक्ति की परीक्षा दी है।

भिक्षु : ठहरो, भद्रे ! पुरातन-काल का नाम ले, उसे यूं कलंकित न करो। दशरथ के स्वर्ग-गमन करने पर, क्या कौशल्यादि रानियों ने भी संग-संग अग्नि-समाधि ली थी ?

राज्यश्री : (थके-से स्वर में) जी नहीं, आचार्य !

भिक्षु : (गम्भीर स्वर में) विचार से काम लो, देवी ! अग्नि-प्रवेश का दृष्टान्त देती जिस क्रिया द्वारा, आत्मशुद्धि का जो मार्ग, ऋषि-मुनियों ने निर्धारित और प्रति-पादित किया था, उसका सहज-सत्य अर्थ समझो! पति की स्मृति में आहुति अवश्य दो, किन्तु अपनी देह की नहीं, अपितु पति द्वारा प्राप्त सुख-जनित कामनाओं की अग्नि को भेंट अवश्य दो, पर अपने प्राणों की नहीं, लक्ष-लक्ष पीड़ितों के दुःख-दैन्य की।

राज्यश्री : (कातर वाणी में) आचार्य !

भिक्षु : समस्त भौतिक व प्राकृतिक जगत् का जो सहज-सरल नियम है, वह भी तुम्हें ज्ञात न हो, इतनी अबोध तुम

कदापि नहीं। भ्रम में फँसकर……

राज्यश्री : आप किस नियम की बात कर रहे हैं, आचार्य ?

भिक्षु : किसी भी वस्तु का विनाश करना अति सहज है, किन्तु निर्माण अति कठिन। स्मरण रहे—ज्ञान-धुरन्धर तुम्हारे मनीषियों ने पुष्पक-विमान की तो कौन कहे, अग्निबाण तक का आविष्कार कर डाला। पर वे किसी ऐसे यंत्र का आविष्कार न कर सके, जो पल भर को भी मृत देह में पुनः श्वासों का संचार कर सके।

[दौड़ते घोड़ों की दूर से आती टापें पास आती जाती हैं।]

हर्ष : बहन, बहन, राज्यश्री !

राज्यश्री : भैया, भैया, हर्ष !

रूपलेखा : प्रणाम करती हूं, सम्राट् !

भिक्षु : तुम सबका कल्याण हो ! तुम जगत् के लिए कल्याणकारी बनो। तथागत सदा तुम्हारी रक्षा करें।

हर्ष : प्रणाम करता हूं, आचार्य !

भिक्षु : उठो वत्स, तुम्हारा गौरव सदा अमर रहेगा। बहन का हाथ थाम लो। भिक्षु भिक्षा पा गया। इस मिलन की बेला, उसके जाने का समय आ गया। बोलो सब—स्थाण्वीश्वर सम्राट् हर्षवर्धन की जय ! मौखरि राज्य अधीश्वरी, तेजस्विनी, विपुल शौर्यशालिनी महादेवी राज्यश्री की जय !

[सैनिकों के सम्मिलित कण्ठों का गम्भीर जयघोष]

साथी, हाथ बढ़ाना

पात्र :

शेखर : मैजिस्ट्रेट मि० कुमार का पुत्र
राधा : मि० कुमार के दिवंगत मित्र की पुत्री
रेखा : शेखर की सहपाठिन
बिन्दु : शेखर की बहन
सरला : शेखर की माँ
दीनू : शेखर का सेवक
श्रीधर : सभी के द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में
पोस्टमैन : मनोनीत साथी

पात्र-परिचय

शेखर

शेखर धनी पिता का एकमात्र पुत्र है, अतः उसकी वेशभूषा साधारण लड़कों से कुछ भिन्न है, घर में भी वह फूलदार मनीला बुश्शर्ट और क्रेपसिल्क की पतलून पहनता है। बालों को उसने यत्न से सँवारना सीखा है, और एक कंघा उस की बुश्शर्ट की जेब में चमकता रहता है। वह अभी डाक्टरी की फ़ोर्थ इयर में पढ़ रहा है, अतः घर और बाहर की सभी प्रकार की समस्याओं से मुक्त है। उसकी समस्या यदि है, तो बस केवल एक—उसकी इच्छा के विरुद्ध माँ और बहन उसे जिस लड़की के साथ बाँध देना चाहती हैं, किस प्रकार उससे मुक्ति पाकर, वह स्वय अपने द्वारा मनोनीत, सब प्रकार से अपने उपर्युक्त अपनी समवयस्का और सहपाठिन लेडी डॉक्टर से विवाह कर सके। उसके युवक हृदय में युवकोचित स्नेह की उद्दाम भावना है और है जीवनसंगिनी के प्रति एक मीठी-सी मनुहार—साथी हाथ बढ़ाना······

रेखा

फ़ैशन को बजाने वाली किसी कठपुतली के हाथों में यदि थर्मामीटर और गले में स्टेथस्कोप लटका दें, तो वही हमारी डॉक्टर रेखा है। कन्धों तक कटे हुए बाल, सूना माथा, गहरी लाल लिपस्टिक, गुलाबी पाउडर से रंजित गाल और तीखे लाल रंग की नेल पालिश उसकी विशेष विशेषताएँ हैं। ऊँची एड़ी के सैण्डिल पहनकर जब वह चलती है, तो किसी चिड़िया के समान फुदकती हुई प्रतीत होती है। उसकी आँखों का चश्मा, हर समय उसकी नाक पर ढुलकता रहता है, जिसे उसे बार-बार ठीक करना पड़ता है। गन्दगी से उसे चिढ है और उसके मन में बस एक ही लगन है,

किस प्रकार उसके चारों ओर सब स्वस्थ और सबल रहे। दिन-रात इसी चिन्ता में डूबी रहने के कारण ही शायद वह इतनी दुबली हो गई है कि दूर से देखने पर वह फूलदार सिल्क में लिपटा एक गोल बाँस-सी प्रतीत होती है। वह सच्चे अर्थों में पूरी लेडी डाक्टर है। यदि उसमें कुछ कमज़ोरी है, तो बस केवल एक—बोलते समय बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किये बिना, वह अपने मनोभाव व्यक्त नहीं कर सकती। वास्तव में यदि उसका वश चले तो वह अपने मुख से प्रत्येक शब्द अंग्रेजी भाषा में ही निकाले, लेकिन हिन्दुस्तानी घरों में हिन्दी बोले बिना काम नहीं चलता, अतः उसे मजबूर होकर हिन्दी बोलनी ही पड़ती है।

उसके युवक हृदय में भी आकांक्षाएं हैं, कामनाएं हैं। वह भी अपने साथी से हाथ बढ़ाने की माँग करती है, किन्तु एक भिन्न 'परपज़' के लिए···

बिन्दु

वह सीधी-सरल भारतीय किशोरी है। उसके लम्बे घने बाल हैं, अतः उसे जूड़ा बनाने का शौक़ है। सुन्दर कला-विभूषित जूड़े में कुन्द कलियों की वेणी सजाकर, और माथे पर कुमकुम की छोटी-सी बिन्दी लगाकर, वह मानो किसी कुशल कलाकार की अद्वितीय कलाकृति-सी दृष्टिगत होती है। उसके सरल मुख पर सदा भोली मुसकान खिली रहती है और उसके चपल पैर, सदा घर में इधर से उधर थिरकते रहते हैं। उसके किशोर मन में जीवन के प्रति उमंग है, कोमल अनुभूतियाँ हैं, अनजाने साथी की चाह है। उसका अन्तर्मन, उस अनजान अपरिचित की खोज है, जो किसी दिन उसके घर के द्वार पर, सेहरा बाँधकर आ खड़ा होगा। वह भी उससे पुकार-पुकारकर कहना चाहती है···आओ···आओ, साथी हाथ बढ़ाना···किन्तु भारतीय संस्कृति में पली होने के कारण, और माता-पिता की पूर्ण अनुवर्तिनी होने के कारण, उसके मन की यह विकल पुकार, मन में ही दब-सी गई है···

सरला

मैजिस्ट्रेट मिस्टर कुमार की पत्नी सरला, एक कुशल गृहिणी और ममतामयी माँ है। यद्यपि उसकी अवस्था लगभग चालीस वर्ष है, किन्तु वह अभी भी तीस वर्ष की महिला-सी प्रतीत होती है। पति का मान और पद-प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए उसे लिपस्टिक तथा पाउडर आदि का प्रयोग करना पड़ता है, किन्तु वह उसे बिल्कुल पसन्द नहीं। इसीलिए वह उनका इतना हलका प्रयोग करती है कि देखने वाले को पता ही नहीं चलता। सिल्क की हलकी रंगीन साड़ी और उसीमें मेल खाते सुन्दर ब्लाउज़ में लिपटा उसका आकर्षक व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली और भव्य जान पड़ता है। घर का गृहिणी पद सँभालने के लिए जिस कोमल शासन की आवश्यकता है, उसका उसे पूर्ण ज्ञान है, अतः क्रोध में भी उसके मुख से कटु बात नहीं निकलती, जीवन में इतने मीठे-कड़वे अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद उसके हृदय में यह भावना विश्वास बनकर जम गई है कि "अन्त में भगवान् सब-कुछ ठीक कर देगा।" अतः यदि कोई बात उसकी इच्छानुसार नहीं भी होती, तो वह सहज प्रसन्नता से उसे स्वीकार कर लेती है। किन्तु अपने घर के शासन में किसी का हस्तक्षेप वह सहन नहीं कर सकती। ऐसा होने पर उसका क्रोध, उग्र रूप रख, मचल उठने को व्यग्र हो उठता है।

उसका उद्दाम यौवन बीत चुका है, शायद इसीलिए कैशोर-यौवन की भावनाओं को वह भली-भाँति पहचानती है। वे ही चंचल-चपल भावनाएं उसके लिए आज चिन्ता का विषय बनी हुई हैं। उसका विकल मन भी, आँसू भरी आँखों से, बार-बार पुकार उठता है—'साथी हाथ बढ़ाना'। अपने लिए नहीं, अपनी दिवंगता-बाल- संगिनी की बेटी राधा के लिए, जिसे उन्होंने शैशव से ही अपनी कन्या के समान पाला है···

श्रीधर

सुन्दर, हँसमुख नवयुवक है। काली बरौनियों से घिरी उसकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों से सदा चापल्य बरसता रहता है। उसकी मधुर वाणी

राधा

भोली-भाली सरल-सी बालिका, जिसकी बड़ी-बड़ी काली-कजरारी आँखों में उदासी मानो समाकर रह गई है। घने काले बालों की दो लम्बी-लम्बी चोटियाँ उसकी पीठ पर झूमती रहती हैं। श्वेत-स्वच्छ परिधान में वह वियोग-पाप से शापित कोई तापस-कन्या-सी प्रतीत होती है। मानो वह कोई शकुन्तला हो, जिसका दुष्यन्त छोड़कर चला गया हो, और लौटकर आना भूल गया हो। किन्तु थोड़ा-सा शृंगार कर रंगीन रेशमी परिधान पहन लेने पर, वह स्वर्ग की अलौकिक सुन्दरी-सी प्रतीत होने लगती है। उसके गोरे-गोरें हाथों में झूलती, लाल-हरी चूड़ियाँ, उस के व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देती हैं।

मेघदूत के यक्ष केप्रेयसी, गगन पर दूर से छाते बादलों को इस आशा से देखा करती होगी कि वे उसके लिए प्रिय का सन्देशा लाते होंगे, किन्तु राधा उनकी ओर इसी एकाकिनी आशा से देखती है कि वे उसके लिए कभी भूले-भटके भी कोई सन्देशा न लायेंगे। वह भली-भाँति जानती है कि उसका प्रिय, दूसरे के पाश में बँध चुका है। उसके विकल मन की आशा, इस जीवन में अब कभी भी पूरी ने हो सकेगी, फिर भी उसके निगूढ अन्तरतम में एक अव्यक्त आकुल संगीतमय पुकार समा-सी गई है, और उसके मूक अधर विकल हो मौन-अव्यक्त स्वरों में, बरबस पुकार उठते हैं—साथी, हाथ बढ़ाना......

[शेखर का कमरा। कोने में ऊँचे दर्पणयुक्त, सुन्दर, आधुनिक ड्रेसिंग टेबिल है, जिस पर शेविंग का सामान तथा कंघा, ब्रश आदि युवकोचित शृंगार की सभी वस्तुएँ यथास्थान रखी हैं। बाईं ओर की दीवार के सहारे एक छोटा-सा बुकशैल्फ है। उसके समीप ही पढ़ने की मेज़ है। मेज़ पर टेबिल लैम्प के अतिरिक्त, टेलीफोन भी है। कापी पर पैन खुला पड़ा है, जैसे अभी कोई पढ़ते-पढ़ते उठ गया है।

मेज़ के आगे दीवार में एक दरवाज़ा है, जो घर के अन्दर

खुलता है। उसके ठीक सामने दाईं ओर की दीवार में दूसरा दरवाज़ा है, जो बाहर के कमरे में खुलता है। सामने की दीवार में एक खिड़की है, जिससे सामने के लॉन में लहराते पेड़-पौधों की झलक दिखाई दे रही है।

पलंग पर मेज़पोश के रंगों से मेल खाता पलंगपोश बिछा है। खिड़की-दरवाज़ों पर हलके रंग के परदे हैं। कमरे की कोई भी वस्तु अस्त-व्यस्त नहीं। सभी पर सुरुचिपूर्ण हाथों से, यत्नकौशल-पूर्वक संवारे जाने की स्पष्ट छाप है।

पर्दा उठने पर, राधा बुकशैल्फ पर झुकी किताबें संवार रही है। शेखर का गुनगुनाते हुए प्रवेश। वह ड्रेसिंग टेबिल के सामने खड़े हो, कंघे से बाल सँवारता है। दर्पण में बुकशैल्फ पर रखे गुलदस्ते की प्रतिच्छवि पड़ती है। वह चौंककर मुड़ता है। गुलदस्ते की ओर तेज़ी से बढ़ता है, और क्रोध भरे स्वर में नौकर को पुकारता है।]

साथी, हाथ बढ़ाना

शेखर : (क्रोधपूर्वक) दीनू···अरे ओ दीनू···

दीनू : (भागते हुए आकर, घबराया-सा) जी सरकार !

शेखर : (धमकाकर) यह गुलदस्ता यहाँ क्यों रखा है ? लाख बार तुझ से कहा···

दीनू : (हाथ जोड़कर) जी सरकार, मैंने नहीं रखा।

शेखर : (और अधिक क्रोध से) फिर किसने रखा ?

[दीनू सकपकाकर, राधा की ओर देखता है, और फिर घबराकर बिना कुछ उत्तर दिए, दृष्टि झुका लेता है।]

शेखर : बेईमान, नमकहराम ! कभी कोई बात याद भी रहती है तुझे ! लाख बार तुझे बताया कि रेखा देवी को बैडरूम में फूल रखना बिल्कुल पसन्द नहीं। ऐसा करना हैल्थ के लिए इन्जूरियस है। तन्दुरुस्ती को बेहद नुकसान पहुँचाता है। अभी वे आने वाली हैं। यदि देख लेतीं, तो आज तेरी खोपड़ी पर ये बाल न रहते।

[दीनू अपनी गंजी खोपड़ी सहलाते, गुलदस्ता उठा, चुपचाप अन्दर चला जाता है। शेखर खिड़की के समीप खड़े हो, बाहर झाँकने लगता है। राधा धीरे-से उसके निकट आ खड़ी होती है।]

राधा : (हौले से) क्षमा करना, शेखर। मुझे नहीं मालूम था

कि रेखाजी को···

शेखर : (बाहर देखते हुए) खैर ! अब तो मालूम हो गया !

[राधा सकपकाकर चुप हो जाती है। जाने को मुड़ती है। फिर लौटकर खड़ी हो जाती है।]

राधा : (धीमे स्वर में) शेखर ?

शेखर : हुँ !

राधा : एक बात कहूँ ? मानोगे ?

शेखर : जो कुछ कहना है, जल्दी कहो। मुझे फुरसत नहीं है।

राधा : मैंने तुम्हारे लिए दस्ताने बनाए हैं। (आगे बढ़ाते हुए) ज़रा पहनकर तो देखो, ठीक बने हैं।

शेखर : (उपेक्षापूर्वक) रख दो उधर।

राधा : पहनकर भी नहीं देखोगे ?

शेखर : (क्रोध से) कहा न कि रख दो उधर।

[तेज़ी से मुड़कर बाहर निकल जाता है। राधा दस्तानों में मुख छिपा रो पड़ती है। बिन्दु का प्रवेश।]

बिन्दु : राधा···तू रो रही हे ! अरी, क्या हुआ ?

राधा : (सिसककर) कुछ नहीं, दीदी !

बिन्दु : कुछ कैसे नहीं ! क्या बात है, बोल !

[राधा कुछ उत्तर न दे केवल सिसकती है।]

बिन्दु : (सोचकर) समझी। आज फिर भैया ने कुछ कह दिया है। क्यों तू बार-बार उनके पास डाँट खाने के लिए जाती है !

[राधा बिन्दु के वक्ष में मुख छिपा सिसक उठती है।]

बिन्दु : (राधा का मुख ऊपर उठाने की कोशिश करते हुए) राधा, ये आँसू पोंछ दे। मेरी बात सुन। सच कहती

हूँ, यदि तूने मेरी बात न मानी तो जीवन भर आँसू बहाएगी और बदले में कुछ भी न पाएगी।

राधा : (सिसककर) जानती हूँ, दीदी। मेरी किस्मत ऐसी ही खोटी है। मेरे भाग्य में आँसू बहाना ही लिखा है।

बिन्दु : (हंसकर) बावरी! आँसू बहाएँ तेरे दुश्मन। सुन, तू बुद्धि से काम ले। भैया की बात अपने दिल से निकाल दे। जानती तो है—रेखा के रहते, वे कभी तेरी ओर न देख सकेंगे। फिर व्यर्थ ही मोह बढ़ाने से क्या लाभ?

राधा : मोह क्या जान-बूझकर बढ़ाया जाता है, दीदी? वह तो न जाने कैसे स्वयं ही दिल में समा जाता है, और बेबस-सा मन...

बिन्दु : (प्यार से धमकाकर) बस, रहने दे। ये कथा-कहानियों के संवाद मेरे सामने न बोल। पिताजी ने तेरे लिए कैसा सुन्दर-सा दूल्हा खोजा है। अभी आता ही होगा, वह तुझे देखने।

राधा : (क्रोध से) वह कौन होता है मुझे देखने वाला!

बिन्दु : अच्छा, न सही। उसकी आँखों पर मैं पट्टी बाँध दंगी। तू ही उसे देख लेना।

राधा : (रुष्ट होकर) दीदी!

बिन्दु : (उसके गले में अपने दोनों हाथ डालकर) मेरी रानी बहन! चल, कपड़े बदल ले। माँ, तुझे बुला रही हैं।

राधा : (हठपूर्वक) नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।

बिन्दु : (उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए) जाएगी कैसे नहीं! चल।

[बिन्दु राधा को खींचते हुए अन्दर ले जाती है। दूसरे द्वार से सरला का प्रवेश।]

सरला : राधा···अरी, ओ राधा··· (इधर-उधर देखकर) यहाँ भी नहीं है। सारे घर में खोज आई। निगोड़ी न जाने कहाँ छिपकर जा बैठी है !

[धरती पर पड़े दस्तानों को उठाकर, ड्रेसिंग-टेबिल पर रखती है। शेखर के फोटो की ओर देखती है और उसे हाथ में उठा लेती है।]

सरला : मेरा बेटा है तू, फिर भी जी चाहता है कि तुझे कोठरी में बन्द कर, चार दिन तक दरवाज़ा न खोलूँ। वह लक्ष्मी-सी बिटिया, जो मन ही मन तुझे अपना देवता मानती है, अपने मन की पीड़ा, मन में ही छिपाए, घर के अँधियारे कोने में छिपती घूमती है। और तू उस बलकटी रेखा के जाल में फंसकर, जैसे अपने माता-पिता की बात मानना भी भूल गया है। दीवाने ! तू क्या जाने, अपनी लक्ष्मी को दूसरे के हाथों सौंपते, मेरा हृदय कैसा फटा जा रहा है ! मेरी पीड़ा तू क्या समझेगा !

[शेखर का तेज़ी से प्रवेश]

शेखर : माँ···माँ, मोटर कहाँ गई है ?

सरला : स्टेशन।

शेखर : (प्रसन्न होकर) रेखा को लेने ?

सरला : नहीं। ढाई बजे वाली ट्रेन से श्रीधर आ रहा है। उसी के लिए···

शेखर : परन्तु माँ, तूफान से रेखा आ रही है। मोटर तो उसके लिए भेजनी थी।

सरला : तो घबराता क्यों है ? उसके लिए दोबारा चली जाएगी।

शेखर : (क्रोध से) खाक दोबारा चली जाएगी ! पौने तीन

तो बज रहे हैं। मैं कहता हूँ···

[टेलीफोन की घंटी बजती है।]

शेखर : (फोन उठाकर) हलो···हाँ,···ठहरो···(फोन से मुख हटाकर) माँ, रामसिंह कह रहा है कि पैसेंजर एक घण्टा लेट । वहीं प्रतीक्षा करे, या मोटर लौटा लाए ?

सरला : अब लौटाकर क्या लाएगा, वहीं···

शेखर : ठहरो। मैं उससे कहे देता हूँ। (फोन में) हलो··· रामसिंह ?···देखो पाँच नम्बर प्लेटफार्म पर तूफान आएगा। ठीक तीन बजे। उससे रेखादेवी आ रही हैं। फर्स्ट क्लास में होंगी। उन्हें लेकर, तुम फौरन घर आ जाना। सामान वग़ैरा ठीक से उतरवा लेना। उन्हें कोई कष्ट न हो। समझ गए···अच्छा, ठीक है।

[फोन रख देता है।]

राधा : और अगर तूफान भी लेट हो, तो ?

शेखर : (अनसुनी करके) देखो, माँ ! रेखा को चाय के साथ नमकीन पिस्ते बहुत अच्छे लगते हैं। और हाँ···हाथ पोंछने के लिए, धोबी का धुला नया तौलिया निकाल देना। रेखा को मैले तौलिए से सख्त नफरत है। छूत की बीमारियाँ गन्दे तौलिए से ही फैलती हैं।

सरला : (क्रोध से) तू और तेरी रेखा !

[तेज़ी से अन्दर चली जाती है। शेखर गुनगुनाते हुए, मेज़ पर रखी वस्तुएँ, अपनी रुचि-अनुसार सँवारता है। राधा पर्दा उठाकर झाँकती है, और हौले-हौले पैर बढ़ाते, शेखर के पीछे आ खड़ी होती है।]

राधा : ओहो ! आज बहुत प्रसन्न हैं, आप ?

शेखर : (गम्भीर स्वर में) देखो, राधा···(मुड़कर देखता है, और मुसकराकर) अरे ! वाह ! आज तो आपने बड़ा श्रृंगार किया है।

राधा : (कुछ लजाकर) कैसा लगता है ? अच्छी लग रही हूं ?

शेखर : क्यों नहीं ? क्यों नहीं ? पर सच पूछो तो, लड़कियों का यह लिपस्टिक, पाउडर लगाना मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं।

राधा : (झटपट रूमाल निकालते हुए) मैं अभी सब साफ़ किये देती हूं।

शेखर : (एकदम उसका हाथ पकड़ते हुए) हैं ! हैं ! कहीं ऐसा गज़ब न कर बैठना।

राधा : (घबराकर) क्यों ?

शेखर : माँ से सुना है, तुम्हारे दूल्हे साहब तशरीफ़ ला रहे हैं, और···

राधा : (क्रोध से) जब तक मेरी सगाई न हो जाये, तब तक किसी को मेरा दूल्हा कहकर पुकारने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

शेखर : (मुसकराकर) अभी तक नहीं हुई सगाई, तो क्या हुआ ? अभी घण्टे भर बाद हो जायेगी, और तब···

राधा : (दृढ़ स्वर में) नहीं। यह सगाई नहीं होगी।

शेखर : (अचरज से) होगी कैसे नहीं ? सगाई कराने के लिए ही तो वह आ रहा है।

राधा : जो मुझसे पूछे बिना आ रहा है, उसे मुझसे मिले बिना ही, लौट भी जाना पड़ेगा। उसे रोकने वाला यहाँ कोई नहीं है।

शेखर : है कैसे नहीं ? तुम जो हो।

राधा : (क्रोध से) तुम सब-कुछ कह सकते हो ? तुम्हें सब-कुछ कहने का अधिकार है ? आखिर तुम अपने को समझते क्या हो, शेखर !

[तेज़ी से जाने को मुड़ती है। शेखर मुसकरा कर, हाथ में एक पुस्तक उठा, इज़ी चेयर पर लुढ़क जाता है। राधा धीरे-धीरे लौटकर, उसके पीछे आ खड़ी होती है। नेपथ्य से रह-रहकर, हलके गीत की ध्वनि आती है—"साथी हाथ बढ़ाना। बिरही मन का प्यार पुकारे—साथी हाथ बढ़ाना···"]

राधा : (हौले से) शेखर ?

शेखर : (घूमकर, कृत्रिम विस्मय से) अरे ! तुम अभी तक गईं नहीं ?

राधा : इस समय भी, इस पुस्तक में, तुम्हारा मन कैसे लग रहा है, शेखर ! ज़रा बाहर तो देखो—मौसम कैसा सुहावना है ! जी चाहता है इन बादलों के संग हम भी उड़ जायें।

शेखर : क्या बेकार की बातें करती हो !

राधा : सुनो, शेखर, माली की बिटिया कितना मीठा गीत गा रही है। कितने दिन से, हमने, साथ-साथ झूला नहीं झूला। चलो, आज हम मिलकर झूला झूलें।

शेखर : जाओ, राधा। तंग न करो।

राधा : आज बचपन की एक बात मुझे याद आ रही है—वह भी एक ऐसी ही बादलों भरी सन्ध्या थी। तुम बगिया में बैठे, कागज़ की नाव बना रहे थे। मैं तुम्हारे पास ही बैठी, कच्ची अमिया खा रही थी। तभी उधर से माँ आ निकली थीं। मेरे हाथ में कच्ची अमिया

देखते ही, वे क्रुद्ध हो उठी थीं। किन्तु वे मुझे धमका पातीं, इससे पहले ही तुमने झटपट मेरे हाथ से अमिया छीनकर कहा था, "नहीं, माँ! नहीं! अमिया तो मैं खा रहा था। राधा ने बिल्कुल नहीं खाई। वह तो सिर्फ़ देख रही थी कि यह खट्टी है या मीठी।"

शेखर : बचपन की बातें, बचपन के साथ गईं, राधा। अब हम बड़े हो गये हैं। अब हमें बड़प्पन सीखना चाहिए।

राधा : (अनसुनी करके) शेखर, कितने सुखमय थे, वे दिन! न किसी बात की चिन्ता थी, न परवाह। बस खेलना, और खाना। याद है—एक दिन मैंने तुम्हारे हाथ से आइसक्रीम छीनकर खा ली थी। तुमने कसकर मेरी कमर में घूँसा जमा दिया था। धक्के से, आइसक्रीम छूटकर, नीचे गिर पड़ी थी। मेरी आँखों में आँसू देखते ही, तुम ठेले वाले को पुकारते हुए, दूसरी आइसक्रीम लाने के लिए, दौड़ गए थे।

शेखर : अतीत के मोह में भूले रहना, तुम्हें शोभा नहीं देता, राधा। तुम पढ़ी-लिखी हो, बुद्धिमान हो। तुम्हारे पिता···

राधा : (रोषपूर्वक) बार-बार वही एक बात न कहो। मेरे पिता बड़े आदमी थे, यशस्वी थे, लाखों के स्वामी थे। अपनी इकलौती कन्या को वे अपने बाल-साथी के संरक्षण में इसीलिए छोड़ गए थे कि वे उसका हाथ किसी सुयोग्य राजकुमार के हाथों में सौंप दें। यह सब मैं स्वयं जानती हूँ।

शेखर : और तुम यह भी जानती हो कि मैं राजकुमार नहीं हूँ।

राधा : (हँसकर) तो क्या तुम समझते हो कि मैं तुम्हें अपना

राजकुमार समझती हूँ ? इस धोखे में न रहना, श्रीमान्! राधा केमन का चोर-कन्हैया, भूले से, न जाने किस कूँज गली में भटक गया है। जिस दिन वह सामने आ खड़ा होगा, वह आगे बढ़, उसका हाथ पकड़ लेगी। पथ पर पलकें बिछाए, अनन्त काल तक उसकी प्रतीक्षा कर लेगी, किन्तु वह किसी अन्य की ओर, आँख उठाकर भी न देख सकेगी।

शेखर : हुँ! ऐसी बात है? परन्तु सामने आ जाने पर उसे पहचानोगी कैसे?

राधा : शेखर! यह तुम पूछ रहे हो···? तुम!

शेखर : क्यों? प्रश्न क्या अनुचित है?

राधा : (हँसकर) और तुम प्यार का दम्भ भरते हो? कहते हो कि तुम्हें रेखा से सच्चा स्नेह है?

शेखर : तो क्या तुम्हें मेरे प्रेम पर विश्वास नहीं?

राधा : नहीं। विश्वास क्यों नहीं होगा? ओह, शेखर! तुम कितने भोले हो, कितने नादान!

शेखर : (विस्मित होकर) बड़ी प्रसन्न हो रही हो! ऐसी मैंने क्या नादानी की, जो आप इस तरह पुलक उठीं!

राधा : (हर्षप्लावित स्वर में) ओह! भाग्य भी कितना विचित्र है! शेखर, आज मैं बता सकती हूँ, बदली में छिपे चन्द्रमा को देखकर, क्यों चकोर का मन-मयूर नृत्य कर उठता है, क्यों गगन में गमकते सूर्य की लाली, सूरजमुखी के अंग-अग में नये रंग भर जाती है।

शेखर : (विस्मित-सा) राधा!

राधा : शेखर, कब तुम बड़े होगे! कब तुम अपने को पहचानना सीखोगे!

शेखर : (हँसकर) तुम्हारी समझ में, क्या मैं अपने को भी

नहीं पहचानता ?

राधा : (दृढ़ स्वर में) हाँ, नहीं पहचानते। आज मैं दावे के साथ कह सकती हूँ, शेखर, कि तुम्हें वास्तव में रेखा से प्रेम नहीं है। उसके प्रति तुम्हारा मोह, तुम्हारे हृदय का नहीं, केवल तुम्हारी आँखों का धोखा है।

शेखर : (कुछ रोष से) राधा !

राधा : रोष करने से सत्य मिथ्या नहीं हो जायेगा, शेखर ! तनिक शान्त हृदय से सोचकर देखोगे, तो तुम पाओगे कि केवल उसकी दिखावटी चमक-दमक से अन्धी होकर ही, तुम्हारी आँखों ने, तुम्हारे मन पर, मोह का यह जाल बिछा दिया है। बनावटी प्रसाधनों से बना, उसका वह ढलता रूप···

[दीनू का भागते हुए प्रवेश]

दीनू : सरकार···सरकार, मुरारी बाबू आये हैं।

शेखर : (अचरज से एकदम उठकर खड़े होते हुए) कौन ? मुरारी बाबू ! अलीगढ़ वाले ?

दीनू : जी हाँ, सरकार !

राधा : (घबराकर) मुरारी बाबू ! दीदी के होने वाले श्वसुर ? मैं माँ को खबर कर दूँ।

[राधा शीघ्रतापूर्वक अन्दर चली जाती है]

शेखर : (व्यस्त भाव से) चल, दीनू। उन्हें ड्राइंगरूम में बैठा। मैं आता हूँ। उनके आने की तो कोई बात नहीं थी। अचानक आ कैसे गये !

मुरारी : (नेपथ्य से पुकारते हैं) शेखर···बेटा शेखर···

[शेखर घबराकर आगे बढ़ता है। मुरारी बाबू का प्रवेश]

शेखर : प्रणाम, वकील साहब।

मुरारी : सुखी रहो, बेटा ! जीते रहो। कहो, सब कुशल-मंगल तो है ?

शेखर : जी, आपकी कृपा से सब आनन्द है। आइये, बैठिये। पिताजी तो अभी दफ्तरसे लौटे नहीं। आते ही होंगे।

मुरारी : तुम्हारे पिताजी से मुझे कुछ काम नहीं, बेटा। बात कुछ तुमसे ही कहनी थी। इधर आया था। सोचा, तुम लोगों से ही मिलता चलूँ।

शेखर : जी, बड़ी कृपा की आपने।

मुरारी : शेखर, बेटा, बात छोटी-सी है, और बड़ी मामूली-सी है। पर तुम्हारी बहन ठहरी, आजकल के फ़ैशन की लड़की। तुम उसे अच्छी तरह समझा देना। आपसी सम्बन्धों में ऐसा होता ही रहता है। मैं जो कुछ भी कहूँगा, उसके भले के लिए ही कहूँगा।

शेखर : आपसे ऐसी ही आशा है, वकील साहब। विश्वास मानिए, मेरी बहन आधुनिका होने पर भी, भारतीय परम्परा की प्रेमी है। वह कदापि आपकी मान्यताओं का उल्लंघन न करेगी।

मुरारी : यह क्या मैं जानता नहीं, बेटा ! तुम्हारे पिताजी भी मेरे समान ही प्राचीन आर्य संस्कृति के प्रेमी हैं। तभी तो मैंने यह सम्बन्ध जोड़ा है। हमारे शरीर में अपने पूर्वजों का रक्त है। एक बार नाता जोड़ लेने पर, हम सहज में उसे टूटने नहीं देते। परन्तु यदि···

शेखर : किन्तु वकील साहब, यदि आप विवाह के सम्बन्ध में कुछ बातें करना चाहते हैं, तो आपका पिताजी से बात करना ही ठीक रहेगा। वे अभी आते ही होंगे। आप बैठिए।

मुरारी : (एकदम खड़े होकर) नहीं, बेटा, नहीं ! मुझे अभी

वापस लौट जाना है। ठहरने का समय नहीं। कुमार बाबू से तुम ही समझाकर कह देना।

शेखर : अच्छा, तो फिर कहिये।

[राधा ट्रे में शर्बत के गिलास और मिठाई, फल आदि की प्लेट लिए आती है, और रखकर चुप-चाप लौट जाती है। बाहर वाले द्वार के पर्दे के पीछे से बिन्दु झाँकती है। मुरारी बाबू एक साँस में शर्बत पी जाते हैं, और जल्दी-जल्दी एक केला छीलकर खाते हैं।]

मुरारी : सच बात तो यह है बेटा, कि इस अँग्रेज़ी पढ़ाई ने आजकल के लड़कों का दिमाग़ ख़राब कर दिया है। माँ-बाप की बात मान लेने में तो वे जैसे अपनी मान-हानि समझते हैं। और किसी को क्या कहूँ! मेरा बेटा ही मेरे हाथ से निकल गया। अभी कल की ही तो बात है। अब तुमसे क्या कहूँ, बेटा···

शेखर : अच्छा, तो फिर पिताजी से कह दीजियेगा।

मुरारी : (घबराकर) नहीं, बेटा! उन्हें कष्ट क्यों दूँगा! तुमसे कहा, या उनसे, बात तो एक ही है। मेरे लिए तो तुम दोनों एक ही समान हो।

शेखर : जी, फिर कहिए।

मुरारी : शेखर, बेटा, अब क्या कहूँ तुमसे! इस नालायक चन्द्रन ने मेरा मुंह काला कर दिया। दुनिया में मुझे किसी के सामने मुंह दिखाने योग्य न रखा।

शेखर : आप यह क्या कह रहे हैं, वकील साहब! चन्द्रन ऐसा कभी नहीं कर सकता।

मुरारी : (क्रोध से) कर कैसे नहीं सकता! कल ही उसने कचहरी जाकर, चुपके से उस मद्रासी छोकरी से

सिविल मैरिज कर ली।

शेखर : (घबराकर) जी···

मुरारी : (शान्तिपूर्वक) तभी तो मैं कहता हूँ, बेटा···आजकल के लड़कों में धर्म-कर्म कुछ नहीं रह गया है। पर तुम कुछ चिन्ता मत करना। मेरे रहते तुम्हारी बहन मंझ-धार में नहीं डूबने पाएगी। अब मैं ही उससे विवाह कर लूँगा।

शेखर : (घबराकर, एकदम उठकर खड़े होते हुए) जी···

मुरारी : ठीक है, बेटा, ठीक है। मैं पहले ही जानता था कि तुम सब समझ जाओगे। आखिर तुम्हारी बहन के पूरे जीवन का प्रश्न है। दुनिया भी देख ले कि हम अपनी बात निभाना जानते हैं। हमारे रहते उसके विवाह की लगन नहीं बीत सकेगी।

शेखर : (हतबुद्धि हो) वकील साहब···!

मुरारी : बस, बस, अब तुम्हें कुछ कहने की जरूरत नहीं। बेटा, अपने पिताजी को भी तुम समझा देना। हम अपने धर्म पर डटे रहें, तो दो-चार मनचलों के आवारगी करने से, धरती नहीं काँपेगी। धर्म को रसातल में डूबने से बचाना, हमारा-तुम्हारा सबका कर्तव्य है।

शेखर : सुनिए, वकील साहब···

मुरारी : जानता हूँ, बेटा! मैं सब समझता हूँ। तुम समझदार हो। अपने पिताजी को भी समझा देना। अच्छा, मैं चला।

[मुरारी बाबू शीघ्रतापूर्वक चले जाते हैं।]

शेखर : उफ! ये नीच, नराधम, पापी! इनके बोझ से धरती रसातल में क्यों नहीं डूब जाती! किसके पुण्य से, ये खुली हवा में साँस ले रहे हैं! बाल खिचड़ी हो गए

हैं। मुँह में दाँत नहीं। विवाह करेंगे, एक अठारह वर्ष की कुमारी कन्या से ? ये वासना के कीड़े···

[राधा बर्तन उठाने आती है। मुरारी बाबू को न देख चौंककर ठिठक जाती है।]

राधा : अरे ! क्या मुरारी बाबू चले गए ?

शेखर : हाँ।

राधा : पिताजी से मिले बिना ही ? क्या कहते थे ?

शेखर : कह रहे थे कि बिन्दु का विवाह चन्द्रन से नहीं होगा, मुझसे होगा।

[राधा के हाथ से बर्तनों की ट्रे छूट पड़ती है। सरला और बिन्दु भागती हुई आती हैं।]

सरला : क्या हुआ, राधा ? क्या है, शेखर ?

शेखर : मुरारी बाबू के सुपुत्र ने लव मैरिज कर ली है, माँ। किन्तु तुम्हें अपनी बेटी के भविष्य की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मुरारी बाबू स्वयं उसका उद्धार करने को तैयार हैं। बिन्दु का विवाह, अब मुरारी बाबू से करना होगा।

सरला : (हतबुद्धि हो) कह क्या रहा है, तू !

शेखर : (हंसकर) ठीक ही कह रहा हूँ, माँ ! धर्म की ध्वजा तो ऊँची रखनी ही होगी। विवाह की लगन नहीं बदलेगी। दुलहिन नहीं बदलेगी। सिर्फ दूल्हा बदल गया है।

राधा : (रोष-भरे स्वर में) शेखर ! यह असम्भव है। ऐसा कदापि नहीं हो सकेगा।

शेखर : (मुसकराकर) क्यों नहीं हो सकेगा ? इस धरती पर, इससे भी बढ़कर 'धर्म के काम' हुए हैं। तभी तो यह आज तक रसातल में डूबने से बची हुई है। इस विवाह

का विरोध कर, क्या तुम समाज को अधर्म और पाप के अतल-तल में डुबो देना चाहती हो, राधा ?

सरला : तब क्या मुरारी बाबू की बात मान लेने में ही भलाई है, शेखर ?

राधा : माँ ! कसाई के सामने सिर झुका रही हो। फिर म कहना कि बलि के बकरे के समान हमारा वध किया जाता है।

सरला : यह रोष का समय नहीं, राधा ! शान्ति से विचार कर···

राधा : जब अपने वस्त्रों से आग लिपट रही हो, तो शान्ति से विचार करने का समय नहीं रह जाता। उन्हें झटपट उतार डालना पड़ता है। क्या तुम अपने हाथों, अपनी बेटी के शेष जीवन में आग लगा देना चाहती हो, माँ ?

सरला : राधा, मैंने भी नारी बनकर जन्म लिया है। मेरे हृदय में भी प्रतिशोध की भीषण लपटें लपकती रहती हैं। किन्तु···

राधा : किन्तु तुम केवल नारी ही नहीं, माँ भी हो। तुम शेखर की जननी हो, माँ ! तुम्हारा कर्तव्य, उसकी आज्ञा मानना नहीं, उसे आदेश देना है। जिस शिशु को दूध पिलाकर सिंह बना दिया है, यदि उसका उचित पथ-प्रदर्शन न करोगी, तो शक्ति के मद में अन्धा हो, वह तुम्हारे ही कन्धों पर चढ़ बैठेगा। मत भूलो—उसे वह सिंह-शक्ति प्रदान करने वाली, तुम ही हो।

शेखर : (मुस्कराकर) खूब ! क्या गर्व है अपनी शक्ति का !

राधा : क्यों न हो! अपनी शक्ति का उपयोग कर, हमारी आँखों पर बरबस पट्टी बांध दो, पर जीवन पाने के

लिए, तुम्हें हमारे पास ही आना होगा। यह न भूलना—हमें अंधकार में वन्दी बना दोगे, तो तुम्हारा अन्धकूप में गिरना भी निश्चित है। हाथ बढ़ाकर साथी बन जाने पर, दोनों के भाग्य स्वयं ही साथ बंध जाते हैं।

शेखर : केवल तर्क? बिन्दु का मुरारी बाबू से विवाह कर देने से, मुरारी बाबू की क्या हानि होगी?

बिन्दु : (चीखकर) भैया!

[बिन्दु के पैर लड़खड़ा जाते हैं, किन्तु वह धरती पर गिर सके इससे पूर्व ही शेखर दौड़-कर, उसे बाँहों में संभाल लेता है।]

शेखर : (ममता-भरे स्वर में) बावरी! झूठ-मूठ की बहस को सच मान गई, तू! भैया के रहते, तुझे घबराने की ज़रूरत नहीं, बहन! वह बुड्ढा तेरी ओर आँख उठाकर देख सके, इससे पहले ही, मैं उसकी दोनों आँखें फोड़ दूँगा। माँ, ज़रा, तुम इधर आओ।

[तेज़ी से बाहर चला जाता है। सरला भी जाती है।]

बिन्दु : (गहरी साँस भरकर) चलो, अच्छा ही हुआ।

राधा : (अचरज से) दीदी!

बिन्दु : वह लड़का मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं था, राधा। दाँत निकालकर जब यह हंसता था, तो ऐसा लगता था मानो कोई गिद्ध मुझे खाने को, दाँत खोल आगे बढ़ा आ रहा हो।

राधा : दीदी! फिर भी तुमने···

बिन्दु : (उसके दोनों हाथ पकड़, एकदम से फिरकनी खाते हुए) ओह! आज मैं कितनी खुश हूँ?

[हाथ छोड़ अन्दर भाग जाती है ।]

राधा : (झुककर काँच के टुकड़े समेटते हुए) तुम आज खुश हो। शेखर भी आज खुश है···और मैं···काँच के इन टुकड़ों की तरह, मेरा दिल भी टूट गया है। इनके टूटने की आवाज़ सबने सुनी। क्या किसीने मेरे दिल की आवाज़ भी सुनी है ?

शेखर : (लौटकर) राधा, आज घड़ी में चाबी दी थी ? कहीं यह ग़लत तो नहीं है !

राधा : नहीं, शेखर ! घड़ी तो ठीक है। शायद ट्रेन ही कुछ लेट होगी।

[बिन्दु एकदम भागी-भागी आती है।]

बिन्दु : (राधा का हाथ पकड़कर) अरी ! तू यहाँ बैठी है ? श्रीधर आ गया।

राधा : कह दो उनसे—जैसे आए हैं, वैसे ही लौट जाएँ।

बिन्दु : पागल न बन। चल।

राधा : दीदी, मैं···

बिन्दु : अब तू मार खाएगी मेरे हाथ से !

[राधा का हाथ पकड़,उसे घसीटते हुए ले जाती है। शेखर मुस्कराकर, हाथ में पुस्तक उठा, आरामकुर्सी पर लुढ़क जाता है। दीनू का प्रवेश।]

दीनू : (टूटे बर्तन समेटते हुए) आप यहीं बैठे हैं, सरकार ! जमाई बाबू आए हैं।

शेखर : उनका स्वागत करने को, वहाँ बहुत लोग हैं, दीनू।

दीनू : आहा ! क्या चन्दा-सा रूप पाया है, जमाई बाबू ने ! मानो साक्षात् भगवान् के अवतार हों। मुखड़े से ऐसा तेज बरसता है कि बस आँखें देखती ही रह जाएँ।

शेखर : (मुस्कराकर) पसन्द आ गए तुझे, जमाई बाबू ?

दीनू : उन्हें कौन मूरख पसन्द नहीं करेगा, छोटे सरकार। भाग जाग गए अपनी राधा बिटिया के। सदा सुख-सुहाग के झूलों पर राज करेगी।

शेखर : (ईर्ष्या से) शकल-सूरत अच्छी हो जाने से ही क्या सब-कुछ हो जाता है, दीनू ? उसका स्वभाव खोटा भी तो हो सकता है।

दीनू : छिः ! छोटे सरकार ! हँसी में भी आपको ऐसा बात न बोलनी चाहिए।

शेखर : (हंसकर) मैं झूठ तो नहीं कहता, दीनू।

दीनू : (मुस्कराकर) अभी जमाई बाबू को देखा नहीं है, न; इसीसे ऐसी बात। मैं कहता हूँ एक बार उन्हें देख लोगे, तो देखते ही रह जाओगे। उनकी बानी से जैसे मधु बरसता है। ऐसे मीठे बोल, ऐसी सरल हंसी, मैंने तो और किसी की सुनी नहीं, सरकार !

[नेपथ्य में हँसी। बोलने की आवाज़ें। राधा, बिन्दु, श्रीधर का हँसते-खिलखिलाते प्रवेश]

राधा : शेखर, देखो, मेरे भैया आ गए। आओ, इनसे तुम्हारा परिचय करा दूँ।

शेखर : (अचरज से) तेरे भैया ?

राधा : हाँ, मेरे धीरू भैया, याद नहीं ? पारसाल से अपने हर पत्र में, मैं तुम्हें इन्हीं के विषय में तो लिखती रही हूँ।

शेखर : (विस्मित हो) धीरू भैया ? यही हैं, तेरी सहेली हेमा के भाई ? इन्हीं को पारसाल तूने राखी बाँधी थी ?

श्रीधर : (हँसकर) इसने नहीं बाँधी थी, भाई साहब। मैं ने ज़बर्दस्ती इससे बँधवा ली थी।

बिन्दु : (हँसकर) सो कैसे ?

श्रीधर : रक्षाबन्धन के दिन, जब मैं होस्टल गया, तो हेमा के साथ, यह मिलने के लिए कमरे में तो आई, पर आई खाली हाथ। हेमा राखी बाँध चुकी, तो मैंने इसकी ओर हाथ बढ़ा दिया। यह घबराकर बोली, 'मैंने तो कभी किसी को राखी बाँधी नहीं। मैं तो राखी लाना भूल गई, भैया !"

राधा : और तब ये हँसकर बोले, "कोई बात नहीं, तू अपनी चोटी का यह लाल रिब्बन निकालकर बाँध दे।" ऐसी अनुपम राखी आज तक किसी बहन ने अपने भाई को न बाँधी होगी।

श्रीधर : तो क्या मैंने झूठ कहा था ? समीप ही पौधे में महकते, गुलाब के फूलों में से, एक फूल चुनकर, और उसे रिब्बन के फन्दे में फँसाकर, तूने मेरे हाथ में जो राखी बाँध दी थी, उसे मेरे कितने साथियों ने ईर्ष्या की दृष्टि से देखा था, यह भी कुछ मालूम है।

राधा : नहीं, जी ! हमें क्यों मालूम होगा ? हमने तो इतनी अनुपम राखी भेंट की श्रीमान को, और आपने हमें क्या दिया ?

बिन्दु : क्या ?

राधा : लैमनड्राप्स और चाकलेट का डिब्बा।

श्रीधर : बच्चों को और क्या दिया जाता है ?

[सब एक साथ हँस पड़ते हैं।]

राधा : मेरी आँखों से, कितने आँसू तुमने ढुलकाये हैं, भैया ! यदि मुझे पता होता कि तुम आ रहे हो, तो पथ में फूल बिछा, दोनों हाथ बढ़ा, पलक पाँवड़ों से मैं तुम्हारा स्वागत करती। दूर भागकर, ऐसा निरादर न करती।

श्रीधर : अच्छा, जी ! तो आप हमसे दूर भागना चाहती थीं।

राधा : बिल्कुल ! मुझे तो तुम्हारी सूरत से भी नफ़रत हो गई थी।

श्रीधर : (पूर्ण गम्भीरता से) मुझे देखे बिना ही, तुझे मेरी सूरत से नफ़रत हो गई थी।

[सब हँस पड़ते हैं।]

राधा : चलो, भैया ! तुम्हें अपनी बगिया दिखाऊँ। दीदी, माँ से कहना, रात को आलू की कचौड़ी बनेंगी, और कटहल के कोफ़्ते। बूंदी का रायता, मैं खुद बनाऊँगी।

श्रीधर : आम की खीर भी बनाना, बहन! नहीं तो मैं भूखा ही रह जाऊंगा।

शेखर : बहनों से यह बात आज ही कह लो, बन्धु ! कल से तुम्हें कुछ और ही बात कहनी पड़ेगी।

श्रीधर : वह क्या ?

शेखर : मेरे सामने तुमने जिन चटपटी चीजों का ढेर लगा दिया है, उनमें से कुछ कम कर दो, बहन ! कहीं ऐसा न हो, कि अधिक खा लेने से, मेरे शरीर की टंकी बर्स्ट हो जाये।

बिन्दु : (नाराज़ होकर) तुम इनकी बात न सुनो, भैया इन्हें तो बस हमारी बुराई करना आता है। तुम चलो हमारे साथ।

[दोनों श्रीधर को खींच ले जाती हैं।]

शेखर : (अनमने भाव से) दीनू सच कहता था—वास्तव में श्रीधर ने चन्दा का-सा रूप पाया है। वैसी ही मीठी उसकी बोली है, और उससे कहीं अधिक वह प्रतिभावान है। कोई भी लड़की उसे पाकर अपने को धन्य मानती। फिर भी राधा ने उससे प्रेम की ज्योति नहीं माँगी, बहन की ममता ही उसे सौंप दी। ऐसा क्यों ?

क्या वास्तव में, राधा के अन्तर्मन में, मेरे प्रति कुछ मोह है? ऐसी क्या बात है मुझमें, जो श्रीधर में नहीं है? सभी ओर से तो, वह मुझसे कहीं अधिक योग्य है। फिर भी राधा···

[एक हाथ में अटैची तथा दूसरे हाथ में छाता लटकाये, रेखा का प्रवेश]

रेखा : अकेले बैठे किससे बातें कर रहे हैं, शेखर जी?

शेखर : हलो, रेखा, तुम आ गईं? मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। आओ, आओ, इधर आओ।

रेखा : ठहरिये, ठहरिये। आपकी आँखें क्यों छलछला रही हैं?

[बैग खोल स्टेथस्कोप निकालती है। साथ ही बोलती जाती है।]

अभी आप अकेले खड़े, अपने से ही बातें कर रहे थे। ये सिम्पटम्स अच्छे नहीं। कहीं आपको कोई रोग···

शेखर : हाँ। रोग तो है ही। और मेरे इस रोग की दवा, बस केवल तुम्हारे ही पास है, रेखा। तुम्हारी प्रेम-परिचर्या पाकर···

रेखा : घबराइये नहीं। मैं अवश्य आपका इलाज करूँगी। पहले मुझे डिज़ीज़ के सिम्पटम्स तो देखने दीजिए— आँखें लाल हैं, माथा हलका गर्म है। हथेलियों पर पसीना है। अकेले खड़े बातें करना···

[बैग में से एक पुस्तक निकाल, जल्दी-जल्दी पन्ने पलटती है।]

शेखर : अरे! यह क्या! तुमने मुझे सच ही रोगी समझ लिया? इतनी भोली हो तुम! (हँसकर) हटाओ

इस मनहूस पुस्तक को। फेंको उधर।

[रेखा के हाथ से पुस्तक छीनकर, दूर कोने में फेंक देता है। रेखा दौड़कर उसे उठा लाती है।]

शेखर : रेखा ! मैं कहता हूँ, हटाओ इस किताब को। इतने दिन बाद मिली हो। दो बात भी नहीं कीं ! आते ही अपनी डाक्टरी के पन्ने पलटने लगीं !

रेखा : ठहरिये, बीच में मत बोलिये। इन्फ्लुएँज़ा···यैलो फ़ीवर···डिप्थीरिया···हूँ ! मिल गया। अवश्य यही है। आई फ़ील क्वाइट श्योर। ज़रूर यही होना चाहिये। रात आपको नींद ठीक से आई थी ?

शेखर : नींद कैसे आती, रेखा ! पलक मूँदते ही तुम्हारे स्वप्न नयनों में घिर-घिरकर छा जाते थे। करवट बदल-बदल कर और पानी पी-पीकर, मैंने सारी रात काट दी।

रेखा : सीरियस, क्वाइट सीरियस ! देखिये, आपको भूख तो खूब अच्छी तरह लगती है, पर जब आप भोजन करने बैठते हैं, तो आपसे खाया नहीं जाता, है न यही बात ?

शेखर : ठीक कहती हो, रेखा ! सामने भोजन देखकर, मुझे लगता है कि यदि पास में तुम भी होती···

रेखा : ओह ! मेरा अनुमान ठीक ही निकला। आपको ऐक्यूट मैन्डोराइज़ हो गया है, शेखर जी। बड़ी भयंकर बीमारी है। शीघ्र ही ट्रीटमैन्ट न किया गया, तो केस सीरियस हो जाने का भय है। देखूँ तो आपके लँग्स···

[स्टेथस्कोप लगाकर देखने का यत्न करती है।

परेशान-सा शेखर अपने को बचाने का प्रयास करता है।]

शेखर : अरे! रे! यह क्या करती हो! माफ़ करो तुम। मुझे कोई रोग नहीं है। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। हटाओ यह स्टेथस्कोप।

रेखा : ठहरिये, ठहरिये! ऐसा न कीजिए। यू आर नौट ए चाइल्ड! देखिये, पेशेन्ट यदि ऐसा करने लगे, तो डॉक्टर डिज़ीज़ का ठीक डायगनॉसिस कैसे कर सकता है!

शेखर : पर तुम कुछ मेरी भी तो सुनो। मुझे कोई रोग नहीं है। मैं सारी रात गहरी नींद सोता हूँ। मैं दिन में छः बार ठूँस-ठूँसकर भोजन करता हूँ। मैं···

[भागता है। पीछे-पीछे रेखा जाती है। दूसरी ओर से श्रीधर तथा राधा का प्रवेश]

श्रीधर : यहाँ तो दोनों में से कोई भी नहीं है।

राधा : (मुसकराकर) दोनों मिलकर, कहीं मलेरिया के जर्म्स मारने की दवा छिड़क रहे होंगे।

श्रीधर : (हँसकर) जब से मैंने सुना है, मैं तो एक ही बात सोच रहा हूँ, बहन।

राधा : वह क्या ?

श्रीधर : मधुयामिनी की मधुरिमा में विभोर हो, जब शेखर भाई चाँद और सितारों की बातें करेंगे तब रेखा देवी···

राधा : चाँद पर इन्फ्लुएंज़ा फैलने का डर तो नहीं है, इस चिन्ता में व्याकुल होंगी।

श्रीधर : सीरियस, क्वाइट सीरियस!

[दोनों हँसते हुए अन्दर चले जाते हैं। बिन्दु

हाथ में सूटकेस लिए आती है और कोने में पटक देती है।]

बिन्दु : ओह! प्रेम करेंगे भैया, और मुसीबत आयेगी घर भर की। फ़ैमिली डॉक्टर आयेगी घर में, फ़ैमिली डॉक्टर···

[सामने से रेखा जल्दी-जल्दी आती है]

रेखा : बिन्दु जी, आपने अपने भाई साहब को कहीं देखा है?

बिन्दु : जी नहीं। आजकल मुझे कुछ कम दिखाई देने लगा है।

रेखा : व्हाट!

बिन्दु : सुना नहीं आपने?

रेखा : परन्तु यह तो बड़ी सीरियस बात है, बिन्दु जी। आई टैल यू, इट इज़ क्वाइट सीरियस।

बिन्दु : (मुसकराकर) होने लगा आपका हार्ट फ़ेल?

रेखा : सुनिए मिस कुमार—आपकी आइज़, आपकी बॉडी का मोस्ट ऐसेन्शल ऑरगन है—ज़िन्दगी की सबसे बड़ी नियामत हैं वे। आपको उन्हें हरगिज़ नैगलैक्ट नहीं करना चाहिए।

बिन्दु : (मुड़कर जाते हुए) जी, मशविरे के लिए धन्यवाद।

रेखा : ठहरिए, ठहरिए! ज़रा मुझे सिम्पटम्स देखने दीजिए, मिस कुमार···हूँ! आपकी आँखों के कोये भी लाल हैं? आपको आज ही किसी आई स्पैशलिस्ट के पास ले चलना पड़ेगा।

बिन्दु : धन्यवाद। मैं स्वयं ही चली जाऊँगी। आपको कष्ट करने की ज़रूरत नहीं।

रेखा : वाह! इसमें कष्ट की क्या बात है! ठहरिए, ज़रा। मैं देखूँ तो आपको ऐप्रोक्सीमेटली किस नम्बर के चश्मे की ज़रूरत पड़ेगी। मैं यह चार्ट दीवार पर टाँगती हूँ। आप ज़रा पढ़िए तो। यह पहली लाइन···

बिन्दु : (मुसकराकर) मैं तो इसका एक भी अक्षर नहीं पढ़ सकती।

रेखा : सीरियस, क्वाइट सीरियस ! आपको अभी डॉक्टर के पास चलना होगा, मिस कुमार।

बिन्दु : अभी ? इसी समय ?

रेखा : जी हाँ। अभी, इसी समय।

बिन्दु : पर यह कैसे सम्भव है ? अभी तो मुझे आपके लिए नमकीन पिस्ते तलने हैं। भैया ने कहा था···

रेखा : आपके भैया का केस भी कुछ कम सीरियस नहीं है, मिस कुमार। पर वे न जाने कहाँ जा छिपे हैं। उनका ट्रीटमेंट तुरन्त शुरू हो जाना चाहिए। लेकिन आपका केस और अधिक सीरियस है। इसलिए मैं पहले आपको···

बिन्दु : नहीं, डॉक्टर ! पहले भैया का ट्रीटमेंट करना ही अधिक उचित रहेगा। मुझे तो दूसरे डॉक्टर के पास ले जाना होगा, पर भैया का इलाज तो केवल आप ही कर सकेंगी। आप यहीं ठहरिए। मैं अभी उन्हें खोज लाती हूँ।

[तेज़ी से अन्दर चली जाती है]

रेखा : (परेशान-सी) अजब मुसीबत है ! न जाने लोग डॉक्टर से इतना क्यों घबराते हैं ! जितना हम उनकी हैल्थ की केयर करने की कोशिश करते हैं, उतना ही वे हमसे दूर भागना चाहते हैं। कहाँ छिपे होंगे शेखर जी ? उस अलमारी के अन्दर ? नहीं, इस पलंग के नीचे देखूँ···

[पलंग के नीचे झाँकती है। सरला का प्रवेश]

सरला : क्या कुछ खो गया है, बेटी ?

रेखा : (झटपट सीधे खड़े होकर) जी, हाँ। मिस्टर कुमार को खोज रही थी।

सरला : (विस्मय से) पलंग के नीचे ?

रेखा : जी, बात यह है कि···अरे! आपके पैर में यह पट्टी कैसी बँधी है ?

सरला : कुछ नहीं। ज़रा ठोकर लग गई थी। राधा ने उस पर पट्टी बाँध दी।

रेखा : सीरियस, क्वाइट सीरियस! देखूं? उफ़! पट्टी भी कितनी अनहाईजीनिक बाँधी है!

सरला : अच्छा, तू हट। मैं अभी जाकर दूसरी पट्टी बँधवाए लेती हूँ।

रेखा : नहीं, मिसेज़ कुमार। केवल पट्टी बदलने से ही काम नहीं चलेगा। आप अपने केस को इतनी लाइटली मत ट्रीट कीजिए। आपको अभी ऐन्टिटिटैनस इंजैक्शन ले लेना चाहिए: नहीं तो सारे बॉडी में पॉयज़न फैल जाने का ख़तरा है।

सरला : बस, बस! रहने दे! ज़हर कभी मेरे दुश्मनों के भी नहीं फैला। मुझे तो क्या फैलेगा। हट तू अलग। मुझे जाने दे।

रेखा : ठहरिये, ठहरिये, मिसेज़ कुमार। मैं अभी सिरिंज निकालती हूँ। बात की बात में इंजैक्शन लगा दूंगी। आपको पता भी नहीं चलेगा। सूई चुभने में जितना दर्द होता है, आपको उतना भी फ़ील नहीं होगा।

सरला : मान जा, रेखा। बचपना न कर। मेरा हाथ छोड़ दे।

रेखा : हठ आप कर रही हैं, मिसेज़ कुमार। आई एम क्वाइट सीरियस। मैं आपके भले के लिए ही कह रही हूँ। आपको इंजैक्शन लेना ही होगा।

सरला : (क्रोधपूर्वक) इंजैक्शन देना, अपने मरीज़ों को। मैं तेरी मरीज नहीं हूँ। हट अलग। मुझे देर हो रही है।

रेखा : व्हाट् नॉनसैन्स! घर में डॉक्टर होते हुए भी, आप लोग उसका फ़ायदा नहीं उठाना चाहते! आपकी जगह मेरी मम्मी होतीं तो···

सरला : तेरी मम्मी ने ही तो लाड़ लड़ाकर, तेरा दिमाग़ ख़राब कर दिया है।

[तेज़ी से आगे चली जाती है]

रेखा : चलीं गईं? मेरा क्या बिगड़ता है! जब बीमार पड़ेंगी, तब याद आयेगा, कि हाँ—डॉक्टर रेखा ने कभी कुछ कहा था। लेकिन शेखर जी का इलाज तो मुझे करना ही चाहिए। देखूँ, कहीं वे छत पर छिपकर तो नहीं बैठे हैं।

[जाती है]

[शेखर का दबे पैरों प्रवेश]

शेखर : तीन वर्ष बाद रेखा को देखा है। मैंने तो सोचा था कि डॉक्टरी सीख लेने के बाद, नये-नये मरीज़ों का इलाज करने का, उसका यह शौक़ मिट गया होगा। पर देखता हूँ, उसका यह मर्ज़ तो पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। एक बार घर में आ गई है, तो अब वह जाने का नाम नहीं लेगी। उससे छुटकारा पाने का, अब तो बस एक ही उपाय है। मैं कुछ दिन कानपुर घूम आऊँ। मौसी कब से बुला रही हैं। किधर गया मेरा सूटकेस?

[पलंग के नीचे से सूटकेस खींचकर निकालता है]

शेखर : शेविंग का सामान रख लूँ। आठ कमीज़ें, छः पाजामे,

आठ पतलून···

श्रीधर : यह क्या, शेखर भाई ? कहाँ जाने की तैयारियाँ होने लगीं ?

शेखर : मौसी के घर जा रहा हूँ। बहुत दिनों से वे मुझे बुला रही हैं।

श्रीधर : परन्तु क्या दो-चार दिन बाद जाना ठीक नहीं रहेगा ? आज ही तो रेखा जी आई हैं···

शेखर : नहीं। मुझे आज ही जाना होगा। मौसी ने लिखा था कि···

[रेखा का प्रवेश। उसे देखते ही, शेखर सूटकेस झटपट पलंग के नीचे खिसका देता है]

रेखा : शेखर जी, आप यहाँ बैठे हैं ? मैं सारे घर में आपको खोज आई। देखिए, अब आप इधर-उधर मत घूमिए। मैं आपका बैड ठीक किए देती हूँ। आप चादर ओढ़-कर, आराम से लेट जाइए।

शेखर : तुम अच्छे-भले आदमी को रोगी बना रही हो, रेखा। मैं···मैं सच कहता हूँ—मुझे कोई रोग नहीं है। मैं बिल्कुल भला-चंगा हूँ।

रेखा : ईच पेशेन्ट, एव्री डे यही कहा करता है। आइए, लेट जाइए। मैं इंजेक्शन तैयार करती हूँ। आपको अभी नींद आ जाएगी।

शेखर : ओह ! तब से तुम एक अपनी ही बात कहे जा रही हो ! रेखा, तुम्हें मेरी बात पर भी तो कुछ ध्यान देना चाहिए। मैं कहता हूँ···

रेखा : अवश्य कहिए। पर मैं सुनूँगी नहीं।

शेखर : (रोषपूर्वक) रेखा ?

रेखा : डॉक्टर यदि ऐसे ही मरीजों की बात सुनने लगे, तब

तो वह कर चुका डॉक्टरी ! श्रीधर जी, आप ही मुझे थोड़ा हैल्प कीजिए । इन्हें पकड़कर, यहाँ लिटा दीजिए ।

श्रीधर : जब वे इतना कह रही हैं, तब थोड़ी देर को लेट जाइए न, शेखर भाई ।

शेखर : (रोषपूर्वक) यूँ ही लेट जाऊँ ? कुछ बात भी ! रेखा, तुम···

रेखा : इस समय मुझे अपनी रेखा नहीं, डॉक्टर रेखा समझिए, शेखर जी । विश्वास मानिए, जो कुछ भी मैं कह रही हूँ, आपके भले के लिए ही कह रही हूँ । आपका इस तरह बैठना ठीक नहीं ।

शेखर : ठीक है । अगर तुम्हें मेरा यहाँ बैठना भी बुरा लग रहा है, तो मैं यहाँ से चला जाता हूँ ।

[उठकर जाने लगता है । रेखा लपककर उसका हाथ पकड़ लेती है ।]

रेखा : मान जाइए, शेखर जी । आई एम क्वाइट सीरियस । इस समय आप पेशेन्ट हैं । पेशेन्ट को डाक्टर का कहना मानना ही चाहिए ।

श्रीधर : अवश्य । विशेषकर जबकि वह फैमिली डॉक्टर हो । आइए, शेखर भाई । लेट जाइए । कुछ देर आराम किए बिना आपको छुटकारा न मिलेगा ।

शेखर : (व्यंग से) छुटकारा !

श्रीधर : प्लीज़, शेखर भाई !

शेखर : अच्छा है, ठीक है, मैं लेट ही जाता हूँ । अब कहोगे भी, तो भी नहीं उठूँगा ।

रेखा : श्रीधर जी, ज़रा यह सिरिंज पकड़िएगा । अरे ! यह क्या ! आपके हाथ इतने पीले क्यों हैं ? ज़रा देखूँ

आपकी आँखें।

श्रीधर : (घबराकर पीछे हटते हुए) नहीं, नहीं,मेरी आँखें एकदम ठीक हैं। राधा अपनी साड़ी पीले रंग में रंग रही थी, मेरे हाथों पर उसीका रंग चढ़ गया है।

रेखा : (हंसकर) बहाने और किसीके सामने बनाइएगा, श्रीधर जी। डॉक्टर ऐसे बहानों पर विश्वास करने लगे, तब तो वह कर चुका डाक्टरी। घबराइए नहीं, मैं कुछ करूँगी नहीं। सिर्फ आपकी पलकें ज़रा-सा ऊपर उठाकर···

[बारी-बारी से उसकी दोनों आँखों की पलकें उठाकर देखती है।]

रेखा : सीरियस, क्वाइट सीरियस! जो सोचती थी, वही हुआ। आपको तो एनीमिया है, श्रीधर जी !

श्रीधर : (हंसकर) एनीमिया ? मुझको ? मेरे ये टमाटर जैसे लाल-लाल गाल नहीं देखे आपने ?

रेखा : डोन्ट बी फुलिश। इट्स नौट ए जोक। अभी तो ऐलिमेन्टरी स्टेज है। अभी से प्रीकॉशन लेने से आप शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएँगे। नैगलैक्ट करने से, केस सीरियस हो सकता है।

श्रीधर : मेरा इलाज बाद में कर लीजिएगा, रेखा जी। आपका पेशेन्ट इधर लेटा है। प्रायर्टी उसकी है। पहले आप उसका इलाज तो कर लीजिए।

रेखा : डॉक्टर कभी किसीको प्रायर्टी नहीं देता ! उसके लिए सब पेशेन्ट समान हैं। देखिए, मैं आपके लिए टॉनिक प्रैस्क्राइब किए देती हूँ। अभी सर्वेन्टको बाज़ार भेजकर मंगवा लीजिए। ये इंजैक्शन भी मंगवा लीजिएगा। हफ्ते में तीन लगवाने होंगे।

श्रीधर : धन्यवाद। लाइए, दीजिए प्रैस्क्रिप्शन। मैं सब-कुछ अभी मंगवाए लेता हूँ।

रेखा : (कागज़ देते हुए) सच तो यह है, श्रीधर जी, कि यहाँ घर भर में, बस केवल आप ही एक समझदार व्यक्ति हैं। यू आर द ओनली इन्टैलीजैन्ट परसन हियर। आई एम सो ग्लैड टु मीट यू।

श्रीधर : जी, मुझे भी आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।

रेखा : सुनिए, मुझे यह सिरिंज बॉयल करनी थी। कोई स्टोव होगा ?

श्रीधर : लाइए। मैं रसोई में बॉयल कराकर ला देता हूँ।

रेखा : लीजिए। ज़रा जल्दी लाइएगा। इंजैक्शन देने को बड़ी देर हो रही है।

श्रीधर : जी, अभी लाया। बस गया और आया।

[जाता है।]

रेखा : तब तक मैं और सामान तैयार कर लूँ।

[बैग में से इंजैक्शन आदि निकालती है।]

शेखर : रेखा···

रेखा : शोर न मचाइए, शेखर जी। शोर मचाने से···

शेखर : बस केवल एक बात पूछना चाहता हूँ।

रेखा : पूछिए,। जल्दी पूछिए।

शेखर : तुम्हारा यहाँ से कब तक जाने का प्रोग्राम है ?

रेखा : अभी आज ही तो मैं आई हूँ। अभी तो मेरी सारी छुट्टियाँ शेष हैं।

शेखर : बड़ी गर्मी पड़ती है, लखनऊ में। छुट्टियों में तुम्हारा कहीं नैनीताल, शिमला, वगैरा जाने का प्रोग्राम तो होगा ही।

रेखा : नहीं, शेखर जी। मैं तो सारी छुट्टियाँ आपके ही पास

बिताने के लिए आई हूँ। डाक्टर के लिए क्या सर्दी और क्या गर्मी! ऐसे सर्दी-गर्मी की परवाह करने लगे, तब तो वह कर चुका डाक्टरी!

शेखर : समझा! इन छुट्टियों में तुम यहाँ प्रैक्टिस प्रारम्भ कर देना चाहती हो। किधर खोलनी है डिस्पैन्सरी? हज़रतगंज, चौक या अमीनाबाद? मैं आज ही जाकर जगह का पता लगाता हूँ।

रेखा : ओहो! आप लेटे रहिए। इसी तरह लेटे रहिए। देखती हूँ, आपकी बेचैनी अधिक बढ़ती जा रही है सीरियस, क्वाइट सीरियस। ये सिम्पटम्स साफ बताते हैं कि···

शेखर : तुम्हें किसी माइन्ड स्पैशलिस्ट के पास जाने की ज़रूरत है। देना वह टेलीफोन डाइरैक्टरी। देखूँ किसी डॉक्टर का नाम।

रेखा : अच्छा, अच्छा, देखिएगा। पहले मैं आपको इंजैक्शन तो लगा दूं। वह सिरिंज···किसे पुकारूँ···राधा जी, राधा जी···

[नेपथ्य से···जी आई। राधा का प्रवेश।]

रेखा : राधा जी, मैंने एक सिरिंज बॉयल करने के लिए···

राधा : जी, यह रही वह।

शेखर : (एकदम उठकर बैठते हुए) रेखा, बहुत हो चुका। बन्द करो अब यह पागलपन।

रेखा : पहले आप लेट तो जाइए। जब तक आप शान्ति से नहीं लेटेंगे, तब तक कुछ नहीं होगा।

शेखर : मैं कहता हूँ। बन्द करो अपनी यह डाक्टरी, नहीं तो···

रेखा : राधा जी, आप ज़रा मुझे हैल्प करेंगी।

राधा : जी, कहिए।

रेखा : देखिए, इनके दोनों हाथ पकड़ लीजिए। हाँ, इस तरह। और इन्हें इस तरह सीधा लिटा रखिए। बस, आपको दो मिनट कष्ट करना होगा। मैं अभी इंजैक्शन तैयार कर लाती हूँ।

राधा : आप आराम से अपना काम कीजिए, रेखाजी। दो मिनट नहीं, मैं दो दिन इन्हें ऐसे ही लिटाए रख सकती हूँ। लाइए, दीजिए, इनके दोनों हाथ मेरे हाथों में।

शेखर : (रोषपूर्वक) राधा !

राधा : देखो, शेखर। तुम नन्हे-से शिशु नहीं हो। क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि रोगी के चीखने-चिल्लाने का डाक्टर पर कुछ भी असर नहीं पड़ता ?

रेखा : शाबाश, राधा जी। रियली, आप अच्छी नर्स बन सकती हैं। रोग को वश में लाना तो आपको खूब आता है।

शेखर : राधा, क्या तुम्हें भी विश्वास है कि मुझे कोई रोग है ? एक बार मेरे स्वस्थ शरीर की ओर देखो, और तब कहो कि···

राधा : चुप रहो, शेखर। तुम क्या डॉक्टर से भी अधिक जानते हो ?

शेखर : उफ़ ! मेरा तो सिर दुखने लगा।

राधा : सिर तो दुखेगा ही। शोर क्या तुमने कुछ कम मचाया है ! लो, आँखें बन्द कर लो अब। मैं तुम्हारा माथा दबा दूं।

रेखा : बाथरूम में लाइफ़बॉय सोप होगा, राधाजी ?

राधा : जी हाँ, है। साफ़ तौलिया भी है।

रेखा : तो ज़रा मैं हाथ धो आऊँ।

[जाती है]

खर : (एकदम उठकर बैठते हुए) राधा, इस आफ़त से मुझे किसी तरह बचाओ।

राधा : आफ़त ! (मुसकराकर) अपनी होनेवाली पत्नी से इस तरह नहीं घबराया करते, शेखर।

ोखर : इस तरह हँसी न उड़ाओ, राधा। मैं कहे देता हूँ—अच्छा न होगा।

राधा : क्यों ? क्या कर लोगे तुम मेरा ?

शेखर : बताऊँ ?

राधा : बताना अपनी श्रीमतीजी को। मुझे क्या बताओगे !

शेखर : नहीं मानोगी तुम !

राधा : उहूँ !

[शेखर राधा की चोटी पकड़कर खींचता है। तभी रेखा लौट आती है।]

रेखा : ओह ! बाथरूम कितना गन्दा हो रहा है ! जब तक विम से पॉलिश न की जाये, बेसिन साफ़ रह ही नहीं सकते। आज ही विम मँगाना होगा।

राधा : मैं अब जा सकती हूँ, रेखाजी ?

रेखा : ठहरिये, मैं यह इंक्जैक्शन लगा दूं।

शेखर : (क्रोध से) मैं इंजैक्शन नहीं लगवाऊँगा, नहीं लगवाऊँगा, नहीं···

राधा : अब चुप भी रहो। अभी तो एक इंजैक्शन से ही छुटकारा मिल जायेगा। यदि नहीं लगवाया तो···

रेखा : रियली, मिस्टर कुमार, यू आर मोर नौयज़ी दैन ए स्मॉल चाइल्ड। बच्चे भी इतना परेशान नहीं करते। लाइए, इधर अपना हाथ।

शेखर : उंह !

राधा : क्या बच्चों की तरह से ऊ-ऊ करते हो! चलो, अब पलकें मूँदकर सो जाओ चुपचाप।

रेखा : आप इनके पास बैठी रहेंगी, राधाजी ? मैं मिसेज़ कुमार को भी एक इंजैक्शन लगा आऊँ।

राधा : जाइये, पर जल्दी आइयेगा। आपका पेशेन्ट मुझसे नहीं सँभलेगा।

रेखा : देर नहीं लगेगी। मैं अभी आई।

[जाती है।]

राधा : (मुंह बनाकर) सीरियस ! क्वाइट सीरियस !

[दोनों हँस पड़ते हैं।]

शेखर : राधा ?

राधा : बात मत करो। सो जाओ चुपचाप।

शेखर : अब तुम्हें भी मुझसे बात करना बुरा लगने लगा ?

राधा : फिर क्या करूँ ? तुम्हारी मैडम की आज्ञा नहीं मानूंगी, तो क्या वे मुझे तुम्हारे घर में रहने देंगी ?

शेखर : देखो, राधा ! मैं कहे देता हूँ, झूठमूठ बहुत मत चिढ़ाओ।

राधा : झूठमूठ ! सच बात कहना भी क्या झूठमूठ चिढ़ाना है ? सच, शेखर। तुम्हारी श्रीमतीजी हैं मजेदार।

शेखर : नहीं मानोगी, तुम !

राधा : अच्छा ! आपसे धमकी देना भी आता है ! हम तो समझे थे कि···

शेखर : अभी समझता हूँ मैं तुमको···

राधा : अजी, नवाब साहब, यह धौंस जमाइएगा अपनी बेगम साहिबा पर। हम पर रौब गाँठने वाले आप होते कौन हैं ? आपको अधिकार ही क्या है, हमें कुछ कहने का ?

शेखर : भूल गई अभी से ? बचपन से जैसे तुम्हारे कान खींचता

श्रीधर : मुझे ऐक्यूट एनीमिया हो गया है। टॉनिक पीने पड़ेंगे। इंजैक्शन लगवाने होंगे।

शेखर : बस, सिर्फ़ इंजैक्शन ? बड़े सस्ते छूट गए तुम !

[तीनों हँसते हैं।]

राधा : भैया, इतनी देर से तुम थे कहाँ ?

श्रीधर : बस, राधा। यह मत पूछो।

राधा : (विस्मय से) क्यों ?

श्रीधर : मेरी पीठ इतनी मज़बूत नहीं कि शेखर भाई के फ़ौलादी घूंसों की चोट सह सके।

शेखर : (मुसकराकर) रोगी हूँ, भाई। रोगी के हाथों में इतनी शक्ति कहाँ, कि किसी को ठोक-पीट सकें। तुम्हें कोई भय नहीं। निर्भय होकर सब-कुछ कह दो।

श्रीधर : नहीं। मैं न कहूँगा। अपराध क्या मेरा साधारण है ! सुनते ही यदि तुम्हारी रगों में दौड़ते रक्त में उबाल आने लगे तो ?

शेखर : नहीं, ऐसा न होगा। तुम मानो तो सही।

श्रीधर : यों ही मान लूँ ? नहीं, भाई। श्रीधर इतना सीधा नहीं कि बिना प्रमाण पाए किसी बात पर विश्वास कर ले।

शेखर : देखो, बता दो चुपके से। वरना ऐसी ठुकाई करूँगा कि सात जनम याद रखोगे।

श्रीधर : सुन लिया, राधा ? मिल गया न प्रमाण ? अपनी बात के कितने पक्के हैं, हमारे शेखर भाई !

[तीनों हँस पड़ते हैं।]

शेखर : तो तुम नहीं बताओगे ?

राधा : अजी ! ये क्या बतायेंगे ! मैं सब समझ गई।

श्रीधर : क्या समझी, बोल ?

राधा : तुमने दीनू से कहा है कि यहाँ मैन्टलपीस पर गुलदस्ता लाकर रख दे।

श्रीधर : रेखा जी को नाराज़ कर दूँ ? और वह भी तब, जब कि इस घर में केवल मैं ही एक इन्टैलिजैन्ट परसन हूँ ? हरगिज़ नहीं।

शेखर : (हँसकर) न बताओ। मैं समझ गया।

श्रीधर : क्या समझे ?

शेखर : तुम चुपके से रेखा का सन्दूक उठाकर कुएँ में डाल आए हो।

राधा : अजी, रहने दो। ऐसा बुद्ध् समझ लिया है, मेरे भैया को ! सुनो भैया, तुम मेरे कान में सब-कुछ बता दो। तुम तो मेरे बड़े अच्छे-से भैया हो। राजा भैया, अपनी बहन को सदा, सब-कुछ बता देते हैं।

शेखर : नहीं, श्रीधर, इस म्याऊँ की बातों में न आना। तुम मुझे सब-कुछ बता दो। मेरी बात दूसरी है। हम-तुम ठहरे पक्के दोस्त। दोस्त से कभी कोई बात नहीं छिपाई जाती।

श्रीधर : (मुस्कराकर) तुम दोनों कितना ही मक्खन क्यों न लगा लो, पर मैं तुम दोनों में से किसी को भी नहीं बताऊँगा कि मैं अभी एक टेलिग्राम देकर आया हूं।

शेखर, राधा : (एक साथ) टेलिग्राम ! कैसा टेलिग्राम ?

[खिड़की पर खटखटाहट]

पोस्टमैन : टेलिग्राम। टेलिग्राम है, सा'ब।

श्रीधर : अरे ! बाप रे ! यह तो बड़ी जल्दी आ गया !

शेखर : तो क्या तुम्हें मालूम था कि यह आ रहा है ?

श्रीधर : सुनो इनकी बात ? मुझे भला कैसे मालूम हो सकता

था कि यह आएगा ? उठो, राधा। तार ले लो। और रेखा देवी से कह आओ कि उनकी माताजी को जुकाम हो गया है। नैगलैक्ट करने से, केस खतरनाक हो सकता है।

शेखर : (विस्मय से) टेलिग्राम अभी पोस्टमैन के हाथ में ही है, और तुम्हें यह भी पता लग गया कि उसमें क्या लिखा है !

श्रीधर : (मुस्कराकर) सीरियस ! क्वाइट सीरियस !

राधा : यह बड़े आदमियों की बातें हैं, शेखर। तुम्हारी समझ में नहीं आएँगी। लो भाई, पोस्टमैन। यह तुम्हारा इनाम।

पोस्टमेन : हम सरकारी नौकर हैं, बीबीजी। सरकारी काम करने के लिए इनाम नहीं लेते।

श्रीधर : सरकारी काम के लिए तुम्हें इनाम कौन दे रहा है, जी ! आज पहली बार भैया घर आया है, इस खुशी में बहन मिठाई बाँट रही है। तुम भी अपने बाल-बच्चों का मुँह मीठा करा देना।

पोस्टमैन : बहन का प्यार ऐसा ही होता है। मेरी बहन भी मुझे देखकर, चन्द्रा-तारों-सी खिल उठा करती है, सरकार। आपकी बहन भी सदा-सुख-[illegible] भरी रहें। सलाम, साब।

[पोस्टमैन जाता है। रेखा का छींकते हुए प्रवेश।]

रेखा : रियली, शेखर ! तुम्हारा किचिन एबस्लूयट्ली अन-हाईजीनिक है। उसमें सब-कुछ चेंज कराना पड़ेगा। इस गन्दे मिट्टी के चूल्हे के बदले, एक गैस का स्टोव···

[छींकती है।]

श्रीधर : आपकी आँखें तो एकदम लाल हो गई हैं, रेखा जी ! नाक से बराबर पानी निकल रहा है। छींकें भी आ रही हैं। कहीं आपको इन्फ्लुएंजा का इन्फ़ैक्शन···

शेखर : (सिर हिलाकर) सीरियस ! क्वाइट सीरियस ! यह तो बड़ा बुरा हुआ। आपको अपनी पूरी केयर रखनी चाहिए थी, रेखा जी।

रेखा : नहीं। ऐसी कोई बात नहीं। यह तो धुएँ की वजह से ज़रा···

[छींकती है।]

शेखर : नहीं, नहीं, नैगलैक्ट करने से काम नहीं चलेगा, रेखा। तुम्हें अलग कमरे में रहना चाहिए। मैं अभी सब इन्तज़ाम···

[सरला का तेज़ी से प्रवेश]

सरला : मैं कहती हूँ, शेखर, मेरे घर में यह सब-कुछ नहीं चलेगा। मैं पूछती हूँ। इस घर की मालकिन यह डाक्टरनी है, या मैं ?

शेखर : कैसी बात बोलती हो, माँ ! तुम्हारे सामने रेखा भला क्या बोलेगी ?

[illegible] : बोले तो यह बहुत-कुछ, पर मैं क्या उसकी सुनने वाली हूँ ! जब से जनम लिया है, तब से मैंने इसी मिट्टी के चूल्हे पर खाना बनते देखा है। आज यह चूल्हा अन-हाईजीनिक हो गया ! अनहाईजीनिक ? हुँह !

शेखर : भूल से कह दिया होगा, माँ। बचपने की भूल···

सरला : हूँ ! बच्ची है यह ? मेरी राधा और बिन्दु तो कभी बच्ची थीं ही नहीं ? तू तो जनम लेते ही इतना बड़ा हो गया था ? यह क्यों नहीं कहता कि इस चतुरा की चक्करदार बातों में फंसकर, तू अपना भला-बुरा

समझना भी भूल गया है!

शेखर : ऐसी बात नहीं है, माँ। मैं···

राधा : (भागती हुई आती है) रेखाजी···रेखाजी यहाँ है? रेखाजी, आपके घर से तार आया है।

रेखा : टेलिग्राम! मेरे घर से? कहाँ है? किसने दिया है? क्या लिखा है?

[झटपट लिफ़ाफ़ा ले कर फाड़ती है। जल्दी से पढ़ती है।]

शेखर : क्या बात है, रेखा? घर पर सब कुशल तो है?

रेखा : मम्मी को ज़ुकाम हो गया है। पर इतनी-सी बात के लिए तार देने की क्या ज़रूरत थी?

शेखर : इतनी-सी बात! तुम डॉक्टर होकर, इसे इतनी-सी बात कह रही हो? ज़ुकाम ही तो सब बीमारियों की जड़ है। इन्फ्लुएंज़ा, निमोनिया, प्लूरिसी···

राधा : (सिर हिलाकर) सीरियस! क्वाइट सीरियस!

श्रीधर : यस! आपको तुरन्त अपनी मम्मी के पास जाना चाहिए, डॉक्टर। इस समय उन्हें आपकी बड़ी ज़रूरत है। नेगलैक्ट करने से···

शेखर : तार में सब सिम्पटम्स तो लिखे नहीं जा सकते थे। वह तो तुम आँख से देखकर ही समझ सकोगी।

रेखा : हाँ, मैं भी यही सोचती हूँ। केस सीरियस न होता, तो मम्मी तार न देतीं। मिसेज़ कुमार, मुझे जाना ही होगा। फिर कभी मैं आपकी सेवा में···

सरला : कोई बात नहीं, बेटी! कोई बात नहीं। जब तुम्हारी मम्मी बीमार हैं, तब तुम्हें जाना ही चाहिए। तुम्हारा पहला कर्तव्य यही है।

रेखा : शेखर जी, आपके लिए, मैं इंजैक्शन···